सिरिनाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण पुव्वहरेण विमलायरियेण
विरइयं सक्कयछायासमलंकियं

पउमचरियं

(पद्मचरित्रम्)

: छायाकार-संशोधक-संपादकश्च :

मुनि पार्श्वरत्नविजयः

तृतीय विभागः

: प्रकाशक :

आ. ॐकारसूरी आराधना भवन,
गोपीपुरा, सुरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली - ६७

सिरिनाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण पुव्वहरेण विमलायरियेण
विरइयं सक्कयछयासमलंकियं

पउमचरियं

(पद्मचरित्रम्)

तृतीय विभागः

पूर्व सम्पादकः
डॉ. हर्मन जेकोबी

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च
मुनिपुण्यविजयः

छायाकार-संशोधक-संपादकश्च
मुनि पार्श्वरत्नविजयः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भवन
आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम : **पउमचरियं (संस्कृत छाया सह)**

भाग : **३**

आवृत्ति : **प्रथम सं. २०६८**

प्रकाशक : **आ. ॐकारसूरी आराधना भवन**
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : **३०० रूपये**

प्रत : **५००**

प्राप्तिस्थान :

- **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
  आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
  सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
  फोन : ९८२४१५२७२७

- **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
  वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
  पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
  फोन : ०७९-२६५८६२९३
  E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

- **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
  पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
  भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
  फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

- **सरस्वती पुस्तक भंडार**
  हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

'आख्यानक मणिकोश' संस्कृत छाया के साथ ४ भाग में आगामी दिनो में प्रकाशित होंगा ।

मुद्रक : किरीट ग्राफीक्स
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : ९८९८४९००९१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ समर्पण...

मेवाड देशोद्धारक,

परमतपस्वी

प.पू.आ.भ.श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी

म.सा.ना करकमलमां

सुमन समर्पण...

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

पू.आ.भ.श्री अरविंदसूरी म.सा., पू.आ.भ.श्री यशोविजयसूरि म.सा. आदिनी प्रेरणा-मार्गदर्शनपूर्वक आ ग्रंथमाळामां अनेकविध ग्रंथरत्नो प्रगट थई रह्या छे.

'पउमचरियं' ग्रंथना **४ भाग**ना प्रकाशन माटे पू.आ.भ.श्री **मुनिचन्द्रसूरि** म.सा.अे प.पू.मुनिराजश्री **पार्श्वरत्नविजयजी** म.सा.ने प्रेरणा अने मार्गदर्शन आप्युं अने अमारी ग्रंथमाळामां आ महाकाय ग्रंथ प्रगट करवा भलामण करी अे प्रमाणे आ ग्रंथ अमारी संस्था द्वारा प्रकट करता अमो आनंद अनुभवीअे छीअे.

प्रस्तुत ग्रंथ प्रगट करवा माटे पू. मुनिराज श्री**पार्श्वरत्नविजयजी** म.सा. तेमज साध्वीश्री **महायशाश्रीजी**अे आ ग्रंथमां प्रुफ संशोधनादि कार्योमां श्रुतभक्तिथी प्रेराई भारे जहेमत उठावी छे. तेनी अमो भूरी भूरी अनुमोदना करीअे छीअे.

आ साहित्यनो स्वाध्याय करी सहु आत्मकल्याणने वरे अे ज अभिलाषा.

लि.

प्रकाशक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमचरियं

भाग-३

ग्रंथ प्रकाशनना संपूर्ण लाभ

श्री जूना डीसा

जैन संघनी

श्राविका बहेनोऐ

ज्ञान द्रव्यमांथी लीधो छे.

अनुमोदना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

'पउमचरिय' प्राकृतभाषानो अनूठो ग्रंथ छे. पउम = पद्म एटले राम. आ रामचरित्र छे. सौथी जुनुं जैनरामायण आ छे. आ ग्रंथनुं सहु पहेला संपादन जर्मन विद्वान हर्मन जेकोबीए करेलुं. ई.स. १९१४मां भावनगरनी आत्मानंद सभाए आनुं प्रकाशन करेलुं.

पुनः संपादन आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजय म.ए कर्युं. शांतिलाल वोराना हिंदी अनुवाद साथे प्राकृत ग्रंथ परिषद द्वारा ई.स. १९६२ अने १९६८मां बे भागमां प्रकाशित थयुं.

आ.भ. नरचन्द्रसूरि म.सा.ना प्रयासथी उपरोक्त ग्रंथनुं पुनर्मुद्रण आ ज संस्थाए ई.स. २००५मां कर्युं छे.

प्राकृत ग्रंथ परिषद प्रकाशित भाग-१मां V. M. Kulkarni लिखित Introduction मां अने Dr. K. R. Chandra ए एमना Ph.D. माटेना महानिबंध A Critical Study of Paumacariyam (रीसर्च ईन्स्टीटयूट ओफ प्राकृत जैनोलोजी एन्ड अहिंसा वैशाली मुझफरपुर बिहार द्वारा प्रकाशित)मां 'पउमचरियं' विशे विगते पोतानी रीते चर्चा करी छे. अमे केटलीक वात मूळ ग्रंथ अने आ बे ग्रंथोना आधारे अहीं करीए छीए.

ग्रंथकारनो समय अने शाखा

सामान्य रीते मोटाभागना ग्रंथकारो पोताना कुल विषे, गुरुपरंपरा विषे अने रचना संवत विषे कशुं लखता नथी होता. सद्भाग्ये पूर्वधर ग्रंथकार श्री विमलसूरिजीए आवी बधी विगतो असंदिग्ध रीते आपी छे. छतां कमनसीबे आधुनिक विद्वानोए एमना समय विषे अने तेओश्री श्वेतांबर शाखाना दिगंबर शाखाना के यापनीय शाखाना होवा विषे भिन्न भिन्न मतो प्रगट कर्या छे.

ग्रंथकारे आपेली विगतो आ प्रमाणे छे.

"पंचेव य वाससया दुसमाए तीसवरिससंजुत्ता ।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥ ११८-१०३ ॥

राहु नामायरिओ ससमयपरसमयगहियसहभावो ।
विजओ य तस्स सीसो नाइलकुलवंसनंदियरो ॥ ११८-११७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीसेण तस्स रइयं, राहवचरियं तु सूरिविमलेण ।
सोऊणं पुव्वगए नारायण-[1]सीरिचरियाइं ॥ ११८-११८ ॥

सुत्ताणुसारसरसं रइयं गाहाहि पायडफुडत्थं ।
विमलेण पउमचरियं संखेवेण निसामेह ॥ १-३१ ॥"

अंते : "इइ नाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण महप्पेण पुव्वहरेण ।
विमलायरिएण विरइयं सम्मत्तं पउमचरियं ॥ ११८ ॥"

'पउमचरियं'नो उल्लेख आ.उद्योतनसूरिजीए ई.स. ७७८मां रचेला कुवलयमाळा ग्रंथमां (पेज ३:११ २७-२९) कर्यो छे. केटलाक विद्वानोनुं मानवुं छे के ई.स. ६७७मां रचायेलुं 'पद्मचरित' प्रस्तुत 'पउमचरिय'नो ज विस्तार छे. एटले पउमचरियं विक्रमना सातमा सैका पहेलाथी ज जाणीतुं बन्युं छे ए निश्चित छे.

ग्रंथकारे आपेली माहिति प्रमाणे नाईलवंशमां सूर्यसमान आचार्य 'राहुसूरि' स्वसमय अने परसमयना विशेषज्ञ हता. तेमना शिष्य नाईलवंशने आनंद करावनार 'विजय' थया. तेमना शिष्य पूर्वधर आ. विमलसूरिए 'पूर्व'मां रहेला नारायण (वासुदेव) अने बळदेवना चरित्र सांभळीने वीरप्रभुना निर्वाणने ५३० [2]वर्ष पसार थया त्यारे संक्षेपमां 'पउमचरिय' रच्युं छे.

उद्योतनसूरिए करेला उल्लेख 'बुहयणसहस्सदइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढ़मं ।' मुजब विमलसूरिए हरिवंसनुं वर्णन करतुं कोई काव्य रच्युं होय तेम जणाय छे. जो के अत्यारे ते मळतुं नथी.

ग्रंथकार श्वेतांबर शाखाना ज होवाना अनेक स्पष्ट प्रमाणो ग्रंथमां उपलब्ध थाय छे. कोइ कोइ बाबतो दिगंबर संमत पण आमां जोवा मले छे एनुं कारण एवुं पण होय के कोइए संप्रदायव्यामोहथी ग्रंथमां फेरफार कर्यो होय. आवुं अनुमान करवानुं कारण ए छे के-

पउमचरिय २०:९५मां पूर्वमुद्रित संस्करणमां आ प्रमाणे पाठ छे.

अट्ठारस तेर अट्ठ य सयाणि सेसेसु पञ्चधणुवीसं ।
पडिहायन्तो कमसो उस्सेहो कुलकराण इमो ॥ २०-९५ ॥

जेसलमेरनी प्राचीन ताडपत्रीय प्रतनो पाठ पउमचरियं भाग-२ परिशिष्ट ७ 'पाठान्तराणि' पृ. ८४मां आ प्रमाणे छे.

नव अट्ठ सत्त सड्ढा छच्छच्च धणू अद्धछट्ठा य ।
पंच सया पणुवीसा उस्सेहो कुलकराण इमो ॥

पूर्वसंस्करणना पाठ मुजब कुलकरोनी ऊंचाई क्रमशः १८०० १३०० ८०० धनुष्य पछी क्रमशः २५-२५ धनुष घटाडवी एवो अर्थ अभिप्रेत छे. आवो सुधारो कागळनी प्रतोमां दिगंबरग्रंथ तिलोयपन्नत्ति ४२१:४९५ प्रमाणे

---

१. केटलाक विद्वानोए 'सिरि'नो अर्थ बळदेव करवाना बदले 'श्री' कर्यो छे.

२. एक प्रतना पाठ प्रमाणे ५२० वर्ष अने पं.कल्याणविजयजी गणिना मते 'तिसयवरिससंजुत्ता' पाठ होवो जोईए. ए प्रमाणे गणतां ई.स. २७४ पउमचरियंनो रचना संवत आवे. मुनि मौर्यरत्नविजयजीना अनुमान मुजब जो दूसमाए तिवरिससंजुत्ता पाठ होय तो वी.नि.सं. ५०३मां रचना थई एवो अर्थ थाय.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुधार्यो छे तेवुं स्पष्ट जणाय छे. ज्यारे जेसलमेरनी ताडपत्रीय प्रतनो पाठ प्राचीन अने स्वीकारवा योग्य होवा छतां ए प्रत मळी त्यारे ग्रंथनुं मुद्रण शरू थयुं होवाथी एना पाठो ७मा परिशिष्टमां अपाया छे. जे प्रतना पाठ मुजब कुलकरोनी क्रमशः ऊंचाई ९०० ८०० ७०० ६५० ६०० ५५० ५२५ धनुष्य होवानुं जणाय छे. अने आ प्रमाण आवश्यक निर्युक्ति गाथा[१] **१५६** प्रमाणेनुं छे.

आथी स्पष्ट समजाय छे के पाछळथी कागळनी प्रतो उपर प्रतिलेखन करती वखते दिगंबर संप्रदायना अभिनिवेशथी कोईके मनस्वी फेरफारो कर्या छे. आ कारणे प्रस्तुत ग्रंथमां केटलीक वातो दिगंबरसंप्रदायानुसारी जोवा मळे छे.

श्री कुलकर्णी अने चंद्रए नोंधेली केटलीक विगतो

१. पउमच. २:२८-२९मां भ. महावीरप्रभुना लग्ननो उल्लेख नथी.

२ पउमच. २:२२ मां भ. महावीरना देवानंदानी कुक्षीमां च्यवननी वात नथी.
(जो के ग्रंथकार अतिसंक्षेपमां वर्णन करता होय त्यारे अमुक घटनानो उल्लेख छोडी दे एनो अर्थ एमने ए मान्य नथी एवो करी न शकाय. जेमके त्रिशष्ठि १०मा पर्वमां देवनंदानी कुक्षीमां च्यवननो उल्लेख करनार क.स. हेमचन्द्रसूरि म.सा.ए योगशास्त्रनी टीकामां देवानंदानो उल्लेख नथी कर्यो.)

३. आवी रीते कुलकरनी संख्या १४ (३ : ५०-५६)
समाधिमरणनुं चोथा शिक्षापदमां स्थान (१४ : ११५) वगेरे केटलीक बाबतो विद्वानोए नोंधी छे.

कुलकर्णी अने चंद्रए पउमचरियंमां मात्र श्वेतांबर संप्रदायने ज स्वीकार्य थई शके एवी बाबतोनी नोंध आपी छे.

केटलीक आ प्रमाणे छे.

१. जिणवरमुहाओ अत्थो जो पुव्विं निग्गओ बहुवियप्पो ।
सो गणहरेहिं धरिउं संखेवमिणो य उवइट्टो ॥ १ : १० ॥

पउमचरियंनी शरूआतमां ज जिनेश्वरना मुखथी निकळेलो अर्थ गणधरोए धारण करी उपदेश आप्यानुं जणावे छे.

दिगंबरमत मुजब भगवान देशनामां कोई शब्द बोलता नथी. मात्र दिव्यध्वनि ज प्रगटतो होय छे. पं.श्री कल्यागविजयजीना मते आ मुद्दो ग्रंथकारना श्वेतांबर होवा माटे अगत्यनो छे.

२. २ : २६मां मेरूकंपननी वात छे.

३. २ : ३६, ३७मां महावीरप्रभु ठेर ठेर देशना आपतां विपुलगिरि पहोंच्या.

४. ३ : ६२, २१ : १२-१४ मरूदेवा माता अने पद्मावती माताने आवेला १४ स्वप्न. (पद्मचरितमां दि. रविषेणाचार्ये १६ स्वप्न बताव्या छे.) १४ स्वप्न माटेनी गाथा गयवसह... अक्षरशः कल्पसूत्र अने ज्ञाताधर्मकथा जोडे मळती आवे छे.

---

१. णव धणुसया य पढमो अट्ठ य सत्तद्ध-सत्तमारं च । छच्चेव अद्धछट्ठा पंचसया पण्णवीसं तु ॥ १५६ ॥

२. जो के कहेवाता विद्वानो क्यारेक साव वाहियात दलीलो करता होय छे. जेमके पउमच.मां स्थावरना पांच प्रकारो बताव्या छे माटे आ ग्रंथ दिगंबर छे एवुं पंडित प्रेमी जणावे छे. (जुओ कुलकर्णीनी Introduction पेज १९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. ८३:१२ कैकयीनुं मोक्षगमन. (दिगंबरो स्त्रीओनी मुक्ति मानता नथी.)

६. ७५ : ३५-३६ बार देवलोकनुं वर्णन. (दि. १६ देवलोक माने छे.)

७. १७ : ४२ 'धर्मलाभ' शब्दनो प्रयोग. (दि. 'धर्मवृद्धि' शब्द प्रयोग करे छे.)

८. २ : ८२ वीसस्थानक वर्णन ज्ञाताधर्मकथा ८ : ६९ने मळतुं छे.

९. ४ : ५८, ५ : १६८ चक्रवर्तीनी ६४००० राणीओ (दि.मां ९६००० बतावी छे.)

१०. २ : ५० समवसरणना ३ गढनुं वर्णन.
(दि.मां माटीना गढ साथे ४ गढ होय छे. तिलोयपन्नत्ति ४ : ७३३)

जुदा जुदा विद्वानोना अभिप्रायोनी चर्चा कर्या पछी श्रीकुलकर्णी एवा तारण उपर आवे छे के - ग्रंथकार आ.विमलसूरि श्वेतांबर संप्रदायना हता. आ निर्णय उपर आववा माटे तेओ मुख्य त्रण मुद्दाओ आ प्रमाणे जणावे छे.

१. नाईलकुलवंशने नाईलीशाखा अथवा नागेन्द्रगच्छ तरीके ओळखवामां आवे छे. नंदिसूत्रमां श्वेतांबराचार्य भूतदिन्ननुं विशेषण 'नाइलकुलवंशनंदिकर' अपायुं छे. आ ज विशेषण आ. विमलसूरिए (११८ : ११७मां) पोताना गुरु माटे प्रयोज्युं छे.

२. पउमचरियंमां चारथी पांच वखत 'सेयंबर' शब्दप्रयोग सहज रीते थयो छे.

३. पउमचरियंनी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत छे. श्वेतांबर संप्रदायनुं मोटाभागनुं प्रकरणादि साहित्य महाराष्ट्रीय प्राकृतमां मळे छे. दिगंबरोनुं साहित्य महाराष्ट्री प्राकृतमां मळतुं नथी. मुख्यतया दि. साहित्य शौरसेनीमां मळे छे.)

ग्रंथकारश्रीए आपेलो रचना संवत अमान्य करी केटलाक विद्वानोए जुदी मान्यता रजू करी छे.

१. हर्मन जेकोबीना मते वीरनिर्वाण संवत नहीं पण विक्रमसंवत ५३०मां रचना थई हशे.

२. डो. के. एच. ध्रुवना मते ई.स. ६७८ थी ७७८ वच्चे रचना थई छे. (जैनयुग वो.-१ भाग-२ वि.सं. १९८१ पेज ६८-६९)

३. पं. परमानंद जैन शास्त्रीना मते आ. विमलसूरि कुंदकुंदाचार्य पछी थया छे. (अनेकांत कि. १०-११ ई.स. १९४२)

४. पं. कल्याणविजयजीना मते ई.स. २७४ (डो. कुलकर्णी उपरना पत्रमां, जुओ डो. कुलकर्णिनी प्रस्तावना)

ग्रंथकारे असंदिग्ध शब्दोमां जणावेल रचना संवतने न मानवा माटे विद्वानो केटलाक कारणो आपे छे. ते आवा छे.

१. शक, सुरंग, यवन, दिनार जेवा शब्दोनो उपयोग पउमचरियंमां आवे छे ते शब्दोनो प्रयोग भारतमां मोडेथी शरू थयो छे.

२. ग्रहोना नाम ग्रीक असरवाळा छे.

३. केटलाक छंदो अर्वाचीन ग्रंथमां ज जोवा मळे तेवा अहीं छे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो के विद्वानोए आ कारणोने वजूद वगरना जणावी आना उत्तरो पण आप्या छे.

१. 'यवन' शब्दनो उल्लेख महाभारत १२-२०७-४३ मां अने पाणिनी अष्टाध्यायी अने अशोकना शिलालेखमां पण छे. 'सुरंग' शब्द अर्थशास्त्रमां पण प्रयुक्त छे.

२. ग्रीक शब्दोनो परिचय ई.पूर्वे पांच-छ सदीमां पण होवाना पुरावा छे. वगेरे.

समग्रतया जोईए तो ग्रंथकारो पोतानी गुरुपरंपरा रचना संवत विषे भाग्ये ज उल्लेख करता होय छे. क्यारेक रचना संवत आप्यो होय तो पण ए शक संवत के विक्रमसंवत गणवो एवा प्रश्नो थाय छे. ज्यारे अहीं तो प्रभुवीरना मोक्षगमनथी ५३० वर्ष गये छते रचना कर्यानुं लख्युं छे त्यारे एने अमान्य करवानुं कोई व्याजबी कारण जणातुं नथी.

वर्तमानकाळमां संस्कृतनुं अध्ययन जेटलुं व्यापक बन्युं छे एटलुं प्राकृत भाषाओनुं बन्युं नथी.

संस्कृत छाया

संस्कृत अध्ययन माटे विपुल प्रमाणमां साधनग्रंथो रचाया छे. रचाय छे. कमनसीबे प्राकृत अध्ययन माटे प्रमाणमां ओछुं साहित्य मळे छे.

अभ्यासीओए पण प्राकृत भाषाना अध्ययन माटे विशेष प्रयत्न करवो जरूरी छे एम लागे छे.

ज्यारे आपणां बधा आगमग्रंथो अने अनेक प्रकरणादि ग्रंथो अर्धमागधी वगेरे प्राकृत भाषाओमां रचाया छे त्यारे साधु-साध्वीजीओए ए माटे विशेष लक्ष्य आपवुं जरूरी छे.

आवा विशिष्ट अभ्यासीओनी अल्पताने कारणे घणां प्राकृत भाषाओना अमूल्य ग्रंथोनो अभ्यास घटतो रह्यो छे.

आ संजोगोमां आवा प्राकृत ग्रंथोनी संस्कृत छाया बनाववानो प्रयोग शरू थयो.

ताजेतरमां आ. धनेश्वरसूरिकृत सुरसुंदरी चरियंनी संस्कृत छाया साध्वी श्री महायशाश्रीए अने संवेगरंगसाळानी मुनि मुक्तिश्रमणविजयजीए करी छे. भूतकाळमां पण सुपासनाहचरियं वगेरेनी संस्कृत छायाओ प्रगट थई छे.

प्रस्तुत पउमचरियंनी पण संस्कृत छाया आ ग्रंथनो वधु अभ्यास थाय ए लक्ष्यथी करवामां आवी छे.

अभ्यासीओ मूळ पउमचरियं ग्रंथने ज वांचवा प्रयत्न करे अने संस्कृत छायाने क्लिष्ट स्थळो समजवा माटे उपयोगमां ले तेवी अपेक्षा छे.

मुनिश्री **पार्श्वरत्नविजयजीए** आ ग्रंथरत्नी संस्कृतछाया घणा उत्साहथी बनावी ने अभ्यासीओ उपर उपकार कर्यो छे. **आख्यानकमणिकोशनी** प्राकृतकथाओनी संस्कृतछाया पण तेओ बनावी रह्या छे. प्राकृतसाहित्यने लोकभोग्य बनाववानो आ प्रयत्न सफळ रहे एज आशा आशीर्वाद.

पू.आ.भ.श्री **अरविन्दसूरीश्वरजी** म.सा.ना आज्ञावर्तिनी स्व.सा.श्री **सत्यरेखाश्रीजी**ना शिष्या विदुषी साध्वीश्री **महायशाश्रीजीए** ग्रंथना आदिथी अंत सुधीना प्रुफो जोया छे अने संस्कृत छायामां जरुरी परिमार्जन वगेरे कर्युं छे. खूब खूब आशीर्वाद.

पू. आ. विजयभद्रसुरीश्वरजीना शिष्यरत्न
पू. मुनिराजश्री जिनचंद्रविजयजी म.सा.ना विनेय
आ. विजयमुनिचंद्रसूरि

• • •

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थानुक्रमः

[तृतीय विभाग]

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
४७.	सुग्गीवपहाणवक्खाणं नाम सत्तचत्ताल पव्वं	३८५-३८९
४८.	कोडिसिलाउद्धरणं नाम अट्ठचत्तालं पव्वं	३९०-३९९
४९.	हणुयपत्थाणं नाम एगूणपन्नासं पव्वं	४००-४०२
५०.	महिन्ददुहियासमागमविहाणं नाम पन्नासइमं पव्वं	४०३-४०४
५१.	राघवगन्धव्वकन्नालाभविहाणं नाम एगपन्नासइमं पव्वं	४०५-४०७
५२.	हणुवकन्नालाभलङ्काविहाणं नाम बावन्नं पव्वं	४०८-४१०
५३.	हणुवलङ्कानिग्गमणं नामं तिपञ्चासइमं पव्वं	४११-४२२
५४.	लङ्कापत्थाणाभिहाणं नामं चउपन्नासइमं पव्वं	४२३-४२६
५५.	विभीसणसमागमविहाणं नाम पञ्चावन्नं पव्वं	४२७-४३१
५६.	रावणबलनिग्गमणं नाम छप्पन्नं पव्वं	४३२-४३५
५७.	हत्थ-पहत्थवहणं नाम सत्तावन्नं पव्वं	४३६-४३८

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
५८.	नल-नील-हत्थ-पहत्थपुव्वभवाणु-कित्तणं नाम अट्ठावन्नं पव्वं	४३९-४४०
५९.	विज्जासन्निहाणं नाम एगूणसट्ठं पव्वं	४४१-४४७
६०.	सुग्गीवभामण्डलसमागमं नाम सट्ठिमं पव्वं	४४८
६१.	सत्तिसंपायं नाम एगसट्ठं पव्वं	४४९-४५४
६२.	राविप्पलावं नाम बासट्ठं पव्वं	४५५-४५७
६३.	विसल्लापुव्वभवाणुकित्तणं नाम तिसट्ठं पव्वं	४५८-४६३
	लक्ष्मणस्य विशल्यायाश्च चरितम् -	४६०
	वायुरोगोत्पत्तिकारणम् -	४६३
६४.	विसल्लाआगमणं नामं चउसट्ठिमं पव्वं	४६४-४६७
	अमोघविजयाशक्तिः-	४६६
६५.	रावणदूयाभिगमणं नाम पञ्चसट्ठं पव्वं	४६८-४७१
६६.	फग्गुणट्ठाहियामहलोगनियमकरणं नाम छासट्ठं पव्वं	४७२-४७४
	फाल्गुनमासे अष्टाह्निकामहोत्सवः—	४७३
६७.	सम्मदिट्ठिदेवकित्तणं नाम सत्तसट्ठं पव्वं	४७५-४७८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
६८.	बहुरूवासाहणं नाम अडसट्ठिमं पव्वं	४७९-४८२
६९.	रावणचिंताविहाणं एगूणसत्तरं पव्वं	४८३-४८७
७०.	उज्जोयविहाणं नाम सत्तरं पव्वं	४८८-४९३
७१.	लक्खण-रावणजुज्झं नाम एगसत्तरं पव्वं	४९४-४९८
७२.	चक्करयणुप्पत्ती नाम बावत्तरं पव्वं	४९९-५०१
७३.	दहवयणवहविहाणं नाम तिहत्तरं पव्वं	५०२-५०४
७४.	पीयंकरउवक्खाणयं नाम चउहत्तरं पव्वं	५०५-५०८
७५.	इन्दइआदिनिक्खमणं नाम पञ्चहत्तरं पव्वं	५०९-५१५
७६.	सीयासमागमविहाणं नाम छहत्तरं पव्वं	५१६-५१७
७७.	मयवक्खाणं नाम सत्तहत्तरं पव्वं	५१८-५२६
७८.	साएयपुरीवण्णणं नाम अट्ठहत्तरं पव्वं	५२७-५३१
७९.	राम-लक्खणसमागमविहाणं नाम एगूणासीयं पव्वं	५३२-५३४
८०.	तिहुयणालंकारसंखोभविहाणं नाम आसीइमं पव्वं	५३५-५४०
८१.	(ति)भुवणालंकारसल्लविहाणं नाम एक्कासीयं पव्वं	५४१-५४२
८२.	तिहुयणालंकारपुव्वभवाणुकित्तणं नाम बासीइमं पव्वं	५४३-५५२
८३.	भरह-केगईदिक्खाभिहाणं तेयासीइमं पव्वं	५५३
८४.	भरहनिव्वाणगमणं नाम चउरासीइमं पव्वं	५५४
८५.	रज्जाभिसेयं नाम पञ्चासीइमं पव्वं	५५५-५५७
८६.	महुसुन्दरवहाभिहाणं नाम छासीइमं पव्वं	५५८-५६३
८७.	महुराउवसग्गविहाणं नाम सत्तासीयं पव्वं	५६४-५६५
८८.	सत्तुग्घकयन्तमुहभवाणुकित्तणं नाम अट्ठासीयं पव्वं	५६६-५६९

● ● ●

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४७. सुग्गीवक्खाणपव्व

एत्तो किक्किन्धवई, कन्ताविरहम्मि दुक्खिओ सन्तो । पत्तो परिब्भमन्तो, तं चेव रणं जहिं वत्तं ॥१॥
पेच्छइ तुरय-गइन्दे, विवाइए रहवरे य परिभग्गे । सुहडे विमुक्कजीए, अवरे सत्थाहयसरीरे ॥२॥
परिपुच्छिओ य साहइ, सुग्गीवनराहिवस्स तत्थेगो । सीयाहरणम्मि इमे, निहया खरदूसण-जडागी ॥३॥
चिन्तेइ वाणरवई, निहओ खरदूसणो रणे जेणं । वच्चामि तस्स सरणं, सो वि हु सन्तीकरो होउ ॥४॥
तुल्लावत्थाण जए, होइ सिणेहो नराण निययं पि । कारणवसेण सो मे, काही पक्खं न संदेहो ॥५॥
नाऊण वाणरवई, ठाणं पउमस्स निययबलसहिओ । पडिहारसमक्खाओ, पायालपुरं अह पविट्ठो ॥६॥
संभासिएक्कमेक्का, उवविट्ठा आसणेसु रइएसु । पुच्छन्ति देहकुसलं, सुग्गीवं राम-सोमित्ती ॥७॥
एत्थन्तरे पवुत्तो, मन्ती जम्बूनओ निसामेहि । कत्तो सरीरकुसलं, इमस्स अम्हं नरेन्दस्स ? ॥८॥
आइच्चरयस्स सुया, सहोयरा नाम वालि-सुग्गीवा । किक्किन्धिपुराहिवई, वाणरकेऊ महासत्ता ॥९॥
वाली विक्खायजसो, सुग्गीवं ठाविऊण रज्जम्मि । अहिमाणेण विउद्धो, पव्वज्जमुवागओ धीरो ॥१०॥
सुग्गीवो वि य रज्जं, कुणइ सुताराए संजुओ निययं । किक्किन्धिमहानयरे, गयं पि कालं अयाणन्तो ॥११॥

---

४७. सुग्रीवाख्यानपर्वम्

इतः किष्किन्धिपतिः कान्ताविरहे दुःखितस्सन् । प्राप्तः परिभ्रमंस्तदेवारण्यं यत्र वृत्तम् ॥१॥
पश्यति तुरग-गजेन्द्रान्व्यापादितान्रथवरांश्च परिभग्नान् । सुभटान्विमुक्तजीवानपरान्शस्त्राहतशरीरान् ॥२॥
परिपृष्टश्च कथयति सुग्रीवनराधिपस्य तत्रैकः । सीताहरण इमो निहतौ खरदूषण-जटाकिनौ ॥३॥
चिन्तयति वानरपति र्निहतः खरदूषणो रणे येन । गच्छामि तस्य शरणं सोऽपि खलु शान्तिकरो भवतु ॥४॥
तुल्यावस्थानां जगति भवति स्नेहो नराणां नित्यमपि । कारणवशेन स मे करिष्यति पक्षं न संदेहः ॥५॥
ज्ञात्वा वानरपतिः स्थानं पद्मस्य निजबलसहितः । प्रतिहारसमाख्यातः पातालपुरमथ प्रविष्टः ॥६॥
संभाषितैकैकावुपविष्टावासनेषु रचितेषु । पृच्छतो देहकुशलं सुग्रीवं रामसौमित्री ॥७॥
अत्रान्तरे प्रोक्तो मन्त्री जाम्बुनदो निशामय । कुतः शरीरकुशलमेतस्यास्माकं नरेन्द्रस्य ? ॥८॥
आदित्यरजसः सुतौ सहोदरौ नाम बाली-सुग्रिवौ । किष्किन्धिपुराधिपती वानरकेतू महासत्त्वौ ॥९॥
वाली विख्यातयशाः सुग्रीवं स्थापयित्वा राज्ये । अभिमानेन विबुद्धः प्रव्रज्यामुपागतो धीरः ॥१०॥
सुग्रीवोऽपि च राज्यं करोति सुताराया: संयुक्तो नित्यम् । किष्किन्धिमहानगरे गतमपि कालमजानन् ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुणरवि य वित्थरेणं, जंपइ जम्बूणओ कयपणामो । दुक्खस्स कारणमिणं, एयस्स पहू ! निसामेह ॥१२॥
अह देव ! को वि दुट्ठो, मायावी दाणवो बलुम्मत्तो । वाणरवइस्स रूवं, काऊण पुरं समल्लीणो ॥१३॥
मन्तीहिं नमुणिओ सो, पविसइ सुग्गीवसन्तियं भवणं । वरजुवइकयसणाहं, जत्थ सुतारा सयं वसइ ॥१४॥
दट्ठूण तं सुतारा, लक्खणरहियं मणेण उव्विग्गा । अवसरइ तत्थ सिग्घं, मन्तिजणं चेव अल्लीणा ॥१५॥
सो वि य लीलायन्तो, सुग्गीवस्साऽऽसणे सुहनिविट्ठो । ताव य वालिकणिट्ठो, निययं भवणं समणुपत्तो ॥१६॥
तं निययरूवसरिसं, दट्ठूणं भवणमज्झयारम्मि । रुट्ठो वाणरनाहो, अह गज्जइ गरुयगम्भीरं ॥१७॥
मोत्तूण सीहनायं, अवइण्णो तत्थ अलियसुग्गीवो । अह जुज्झिउं पवत्तो, समयं चिय वाणरिन्देणं ॥१८॥
सिरिचन्दमाइयाणं, मन्तीणं तत्थ सा महादेवी । साहइ लक्खणरहिओ, कोइ इमो खेयरो दुट्ठो ॥१९॥
सोऊण तीए वयणं, एगन्ते मन्तिणो उ मन्तेउं । साहन्ति पत्थिवाणं, रक्खह अन्तेउरं एयं ॥२०॥
अक्खोहिणीसु सत्तसु, सहिओ च्चिय अङ्गओ स सुग्गीवं । परिगिण्हइ अङ्गो पुण, कित्तिमई तत्तियबलेणं ॥२१॥
नयरस्स दक्खिणेणं, ठविओ मन्तीहि अलियसुग्गीवो । फुडसुग्गीवो वि लहुं, उत्तरपासे परिट्ठविओ ॥२२॥
नामेण चन्दरस्सी, पुत्तो वालिस्स असिवरं घेत्तुं । रक्खइ साहणसहिओ, भवणदुवारं सुताराए ॥२३॥
अह ते दो वि कइवरा, अलहन्ता दरिसणं सुताराए । जाया समुस्सुयमणा, मयणाणलदीवियसरीरा ॥२४॥
कन्ताविओयदुहिओ, चिन्तेउं तत्थ सच्चसुग्गीवो । हणुवस्स गओ पासं, कहेइ सव्वं निययदुक्खं ॥२५॥

पुनरपि च विस्तरेण जल्पति जम्बुनदः कृतप्रणामः । दुःखस्य कारणमिदमेतस्य प्रभो !निशामय ॥१२॥
अथ देव ! कोऽपि दुष्टो मायावी दानवो बलोन्मत्त । वानर पत्तेः रुपं, कृत्वापुरं समालीनः ॥१३॥
मन्त्रिणाज्ञातः सः प्रयिशति सुग्रीवसत्क भवनं । वच्युवतिकृत सनाथ यत्र सुतारा स्वयं वसति ॥१४॥
दृष्ट्वा तं सुतारा लक्षणरहितं मनसोद्विग्ना । अपसरति तत्र शीघ्रं मन्त्रिजनमेवालीना ॥१५॥
सोऽपि च लीलायन्सुग्रीवस्याऽसनेसुखनिविष्टः । तावच्चवालिकनिष्ठो निजं भवनं समनुप्राप्तः ॥१६॥
तं निजरुपसदृशं दृष्ट्वा भवनमध्ये । रुष्टो वानरनाथोऽथ गर्जति गुरुकगम्भीरम् ॥१७॥
मुक्त्वा सिंहनादमवतीर्णस्तत्रालिकसुग्रीवः । अथ योद्धुं प्रवृत्तः समकमेव वानरेन्द्रेण ॥१८॥
श्रीचन्द्रादीनां मन्त्रीणां तत्र सा महादेवी । कथयति लक्षणरहितः कोऽप्ययंखेचरो दुष्टः ॥१९॥
श्रुत्वा तस्या वचनमेकान्ते मन्त्रिणस्तु मन्त्रयित्वा । कथयन्ति पार्थिवानां रक्षयतान्तपुरमेतत् ॥२०॥
अक्षोहिणभिः सप्तभिः सहित एवाङ्गदः स सुग्रीवम् । परिगृहृणात्यङ्गः पुनः कृत्रिमं तावताबलेन ॥२१॥
नगरस्य दक्षिणे स्थापितो मन्त्रिभिरलिकसुग्रीवः । स्फुटसुग्रीवोऽपि लघूत्तरपार्श्वे परिस्थापितः ॥२२॥
नाम्ना चन्द्ररश्मिः पुत्रो वालेरसिवरं गृहीत्वा । रक्षति साधनसहितो भवनद्वारं सुतारायाः ॥२३॥
अथ तौ द्वावपि कपिवरावलभन्तौ दर्शनं सुतारायाः । जातौ समुत्सुकमनसौ मदनानलदीप्तशरीरौ ॥२४॥
कान्तावियोगदुःखितश्चिन्तयित्वा तत्र सत्यसुग्रीवः । हनुमतो गतः पार्श्वं कथयति सर्वं निजदुःखम् ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण तस्स वयणं, अप्पडिघाएण वरविमाणेणं । हणुओ किक्किन्धिपुरं, गओ य सिग्घं सह बलेणं ॥२६॥
सोऊण पवणपुत्तं, समागयं अलियवाणराहिवई । निप्फिडइ गयारूढो, बलेण समयं महन्तेणं ॥२७॥
दोण्हं पि ताण रूवं, सरिसं दट्ठूण अञ्जणातणओ । अमुणियविसेसनिहसो, निययपुरं पत्थिओ सिग्घं ॥२८॥
हणुए निययपुरगए, सुग्गीवो भयसमाउलो एत्तो । राघव ! तुमं पवन्नो, एयस्स करेहि सामत्थं ॥२९॥
भणइ तओ पउमभो, अहयं साहेमि कारणं तुज्झं । सुग्गीव ! मज्झ वि तुमं, सीयाए लभसु पडिवत्तिं ॥३०॥
सुग्गीवो भणइ पहू !, जइ तुह महिलाए सत्तमे दिवसे । न लभामिऽह पडिवत्तिं, पविसामि हुयासणं तो हं ॥३१॥
सुणिऊण वयणमेयं, अहियं आसासिओ पउमनाहो । पप्फुल्लकमलनेत्तो, जाओ रोमञ्चियसरीरो ॥३२॥
अह ते जिणभवणस्था, समयं काउं अदोहबुद्धीया । नीया वाणरवइणा, किक्किन्धी[1] राम-सोमित्ती ॥३३॥
पुणरवि य आगओ सो, कूडो नाऊण सच्चसुग्गीवं । नियबलसंपरिवुडो, अहिमुहिहूओ रहारूढो ॥३४॥
आलग्गो संगामो, उभयभडाडोवसंकडुत्तासो । सुग्गीवो सुग्गीवं, पहणइ गाढप्पहारेसु ॥३५॥
असि-कणय-चक्क-तोमर-संघट्टुट्ठन्तसत्थसंघाए । रामो सरं न मुञ्चइ, ताण विसेसं अयाणन्तो ॥३६॥
ताहे गयाए पहओ, कूडेणं तत्थ सच्चसुग्गीवो । मुच्छानिमीलियच्छो, पडिओ महिमण्डले सिग्घं ॥३७॥
पडियं दट्ठूण रणे, किक्किन्धी[2] रियइ अलियसुग्गीवो । बन्धवजणेण निययं, सुग्गीवो आणिओ सिबिरं ॥३८॥

श्रुत्वा तस्य वचनमप्रतिघातेन वरविमानेन । हनुमान्किष्किन्धिपुरं गतश्च शीघ्रं सह बलेन ॥२६॥
श्रुत्वा पवनपुत्रं समागतमलिकवानराधिपतिः । निस्फेटति गजारुढो बलेन समकं महता ॥२७॥
द्वयोरपि तयो रुपं सदृशं दृष्ट्वाऽञ्जनातनयः । अज्ञातविशेषनिकषो निजपुरं प्रस्थितः शीघ्रम् ॥२८॥
हनुमति निजपुरगते सुग्रीवो भयसमाकुल इतः । राघव ! त्वां प्रपन्न एतस्य कुरु सामर्थ्यम् ॥२९॥
भणति ततः पद्मभोऽहं कथयामि कारणं तव । सुग्रीव ! ममाऽपि त्वं सीताया लभस्व प्रतिपत्तिम् ॥३०॥
सुग्रीवो भणति प्रभो ! यदि तव महिलायाः सप्तमे दिवसे । न लभेऽहं प्रतिपत्तिः प्रविशामि हुताशनं तदाहम् ॥३१॥
श्रुत्वा वचनमेतदधिकमाश्वस्तः पद्मनाभः । प्रफुल्लकमलनेत्रो जातो रोमाञ्चितशरीरः ॥३२॥
अथ तौ जिनभवनस्थौ समयं कृत्वाऽद्रोहबुद्धिकौ । नीतौ वानरपतिना किष्किन्धि राम-सौमित्री ॥३३॥
पुनरपि चागतः स कूटो ज्ञात्वा सत्यसुग्रीवम् । निजबलसंपरिवृत्तो ऽभिमुखीभूतो रथारूढः ॥३४॥
आलग्नःसंग्राम उभयभटाटोपसंकटोत्त्रासः । सुग्रीवः सुग्रीवं प्रहन्ति गाढप्रहारैः ॥३५॥
असि-कनक-चक्र-तोमर संघट्टोत्तिष्ठशस्त्रसंघाते । रामः शरं न मुञ्चति तयोरविशेषमजानन् ॥३६॥
तदा गदया प्रहतः कूटेन तत्र सत्यसुग्रीवः । मूर्च्छानिमिलिताक्षः पतितो महीमण्डले शीघ्रम् ॥३७॥
पतितं दृष्ट्वा रणे किष्किन्धिमिर्यत्यलिकसुग्रीवः । बन्धवजनेन निजः सुग्रीव आनीतः शिबिरम् ॥३८॥

१-२. किक्किन्धि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ समासत्थो, सुग्गीवो सामि ! वेरिओ इहइं । आगन्तूण पुण गओ, किं न तुमे सो हओ पावो ? ॥३९॥
भणइ तओ पउमाभो, तुब्भं चिय एत्थ जुज्झमाणाणं । न य जाणिओ विसेसो, तेण मए नाहओ सरिसो ॥४०॥
सुग्गीव ! पुणरपि तुमं, तं दुट्ठं दिट्ठिगोयरे मज्झं । ठावेहि जेण पेच्छसु, अचिरा भिन्नं सरसएसु ॥४१॥
सुग्गीवेणाऽऽहूओ, समागओ दुट्ठवाणराहिवई । रामेण समरमज्झे, रुद्धो मेहो इव नगेणं ॥४२॥
दट्ठूण रामदेवं, वेयाली निग्गया महाविज्जा । साहसगई वि जाओ, साहावियरूवसंठाणो ॥४३॥
सुग्गीवरूवरहियं, दट्ठूणं साहसं मरगयाभं । रुट्ठा वाणरसुहडा, मिलिया सव्वे वि एगट्ठं ॥४४॥
संगाममम्मि पवत्ते, धरिओ च्चिय लक्खणेण सुग्गीवो । साहसगईण वि तओ, भग्गं तं वाणराणीयं ॥४५॥
भग्गं दट्ठूण रणे, कइसेन्नं राघवो सरसएसु । आहणइ [1]साहसगई, सुइरं काऊण रणलीलं ॥४६॥
तिक्खसरभिन्नदेहो, पडिओ च्चिय साहसो धरणिपट्ठे । दिट्ठो विमुक्कजीओ, वाणरसुहडेहि सव्वेहिं ॥४७॥
निहयं दट्ठूण अरिं, सुग्गीवो राघवं [2]ससोमित्ती । पूएइ पययमणसो, पेसेइ य पट्टणं नियय ॥४८॥
ठविऊण वरुज्जाणे, पउमाभं वाणराहिवो एत्तो । पविसरइ सिरिहिरं सो, दइयाउक्कण्ठिओ सिग्घं ॥४९॥
जाओ ताराए समं, समागमो तत्थ वाणरेन्दस्स । रइसागरमोगाढस्स तस्स दियहा य वच्चन्ति ॥५०॥
सुहडा विराहियाई, तत्थेवाऽऽणन्दकाणणे सव्वे । आवासिया ससेन्ना, रामो चन्दप्पहहरम्मि ॥५१॥

अथ भणति समाश्वस्तः सुग्रीवः स्वामिन् ! वैरीह । आगत्य पुन र्गतः किं न त्वया स हतः पापः ? ॥३९॥
भणति ततः पद्मनाभो युवयोरेवात्र युद्ध्यमानयोः । न च ज्ञातो विशेषस्तेन मया नाहतः सदृशः ॥४०॥
सुग्रीव ! पुनरपि त्वं तं दुष्टं दृष्टिगोचरे मम । स्थापय येन पश्याचिराद्भिन्नं शरशतैः ॥४१॥
सुग्रीवेणाहूतः समागतो दुष्टवानराधिपतिः । रामेण समरमध्ये रुद्धो मेघ इव नगेन ॥४२॥
दृष्ट्वा रामदेवं वैताली निर्गता महाविद्या । साहसगतिरपि जातः स्वाभाविकरुपसंस्थानः ॥४३॥
सुग्रीवरुपरहितं दृष्ट्वा साहसं मरकताभम् । रुष्य वानरसुभटा मिलिताः सर्वेऽप्येकत्रम् ॥४४॥
संग्रामे प्रवृत्ते धृत एव लक्ष्मणेन सुग्रीवः । साहसगतिनाऽपि ततो भग्नं तद्वानरानीकम् ॥४५॥
भग्नं दृष्ट्वा रणे कपिसैन्यं राघवः शरशतैः । आहन्ति साहसगतिं सुचिरं कृत्वा रणलीलाम् ॥४६॥
तीक्ष्णशरभिन्नदेहः पतित एव साहसो धरणिपृष्टे । दृष्टे विमुक्तजीवो वानरसुभटैः सर्वैः ॥४७॥
निहतं दृष्ट्वाऽरिं सुग्रीवो राघवं ससौमित्रिम् । पूजयति प्रयतमनाः प्रेषयति च पत्तनं निजम् ॥४८॥
स्थापयित्वा वरोद्याने पद्मनाभं वानराधिप इतः । प्रविशति श्रीगृहं स दयितोत्कण्ठितः शीघ्रम् ॥४९॥
ज्ञातस्तारायास्समं समागमस्तत्र वानरेन्द्रस्य । रतिसागरमवगाढस्य तस्य दिवसाश्च गच्छन्ति ॥५०॥
सुभटा विराधितादयस्तत्रैवानन्दकानने सर्वे । आवासिताः ससैन्या रामश्चन्द्रप्रभागृहे ॥५१॥

---

१. साहसगइं-प्रत्य० । २. ससोमित्ति-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वङ्गसुन्दरीओ, तेरस कन्नाउ वाणरवइस्स । गन्तूण पउमनाहं, भणन्ति अम्हं वरो तुहयं ॥५२॥

पढमा वि य चन्दाभा, अन्ना हिययावली हिययधम्मा । एत्तो अणुद्धरी पुण, सिरिकन्ता सुन्दरी चेव ॥५३॥

कन्ना सुरमइनामा, हवइ मणोवाहिणी य चारुसिरी । मयणूसवा गुणवई, पउमावइ जिणमई चेव ॥५४॥

जोव्वणरूवधरीओ, इमाउ कन्नाउ पेच्छिउं पउमो । उक्कातडीसमाओ, मन्नइ सीयाविओयम्मि ॥५५॥

रामस्स सन्नियासे, तत्थ निविट्ठाउ ताउ कन्नाओ । मण-नयणहारिणीओ, विणओणयवयणकमलाओ ॥५६॥

कन्नाण जोव्वणधरीण वि रामदेवो, ताणं च सो न य उवेइ मणाभिलासं ।
नेहेण पुव्वभवसंचियनिच्छिएणं, सीयं सया विमलतिव्वगुणं मुणेइ ॥५७॥

॥ इय पउमचरिए सुग्गीवपहाणवक्खाणं नाम सत्तचत्ताल पव्वं समत्तं ॥

सवाङ्गसुन्दर्यस्त्र्योदश कन्या वानराधिपस्य । गत्वा पद्मनाभं भणन्त्यस्माकं वरस्त्वम् ॥५२॥

प्रथमाऽपि च चन्द्राभाऽन्या हृदयावली हृदयधर्मा । इतोऽनुद्धरी पुनः श्रीकान्ता सुन्दर्येव ॥५३॥

कन्या सुरमतिनामा भवति मनोवाहिनी च चारुश्रीः । मदनोत्सवा गुणवती पद्मावती जिनमत्येव ॥५४॥

यौवनरुपधर्य इमाः कन्या दृष्ट्वा पद्मः । उल्कातडित्समा मन्यते सीतावियोगे ॥५५॥

रामस्य सन्निकाशे तत्र निविष्टास्ताः कन्याः । मनोनयनहारिण्यो विनयावनतवदनकमलाः ॥५६॥

कन्यानां यौवनधारीणामपि रामदेवस्तासां च स न चोपैति मनोऽभिलाषम् ॥
स्नेहेन पूर्वभवसंचितनिश्चितेन सीतां सदा विमलतीव्रगुणां जानाति ॥५७॥

॥ इति पद्मचरित्रे सुग्रीवप्रहाणव्याख्यानं नाम सप्तचत्वारिंशतमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४८. कोडिसिलुद्धरणपव्वं

अह तस्स धिइनिमित्तं, कुणन्ति कन्नाउ विविहविणिओगे । नच्चन्ति य गायन्ति य, लीलासु मणोहरं कुहरं ॥१॥
विभवो वि तस्स सयलो, समाणिओ ण्हाण-भोयणाईओ । न य कुणइ निव्वुइसुहं, कन्ताहिययस्स रामस्स ॥२॥
न य सुणइ गीयसद्दं, न य पेच्छइ मणहरं पि सो रूवं । सीयाएगग्गमणो, झायइ सिद्धिं जहा जोगी ॥३॥
न कुणइ कहं पि अन्नं, मोत्तुं सीयासमागमुल्लावं । पासट्ठिया वि सद्दइ, एहेहि लहु जणयधूए ! ॥४॥
देवी व माणुसी वा, नागवहू जक्खिणी व महिला हं । इह सयलजीवलोए, सीयासरिसी न पेच्छामि ॥५॥
एयाणि य अन्नाणि य, पलवन्तो बहुविहाणि अमुणिन्तो । भणइ कणिट्ठं पउमो, सो वि चिरावेइ सुग्गीवो ॥६॥
राहववयणेण गओ, सोमित्ती पविसिऊण सुग्गीवं । भणइ भवणोयरत्थं, किं पम्हुट्ठं तुमं सव्वं ? ॥७॥
महिलासोगसमुद्दे, पडिए परमेसरे तुमं एत्थं । कह रमसि विसयसोक्खं, अदीहपेही महापावो ? ॥८॥
अकयग्घ ! खेयराधम !, पावमई ! तत्थ नेमि सिग्घं ते । पउमेण जत्थ नीओ, तुह सरिसो दुट्ठचारित्तो ॥९॥
एव परितज्जयन्तं, सोमित्ती[१] वाणराहिवो नमिउं । भणइ य पम्हुट्ठं मे, एक्कवराहं खमसु मज्झं ॥१०॥
संभारिउं पइण्णं, तस्स सुमित्ती कहेइ संबन्धं । जह जोगी उवयारं, कुणइ च्चिय जक्खदत्तस्स ॥११॥

---

४८. कोटिशिलोद्धरणपर्वम्

अथ तस्य धृतिनिमित्तं कुर्वन्ति कन्या विविधविनियोगान् । नृत्यन्ति च गायन्ति च लीलाभिर्मनोहरं कुहरम् ॥१॥
विभवोऽपि तस्य सकलः समानीतः स्नानभोजनादिकः । न च करोति निवृतिसुखं कान्ताहृदयस्य रामस्य ॥२॥
न च श्रुणोति गीतशब्दं न च पश्यति मनोहरमपि स रुपम् । सीतैकाग्रमना ध्यायति सिद्धिं यथा योगी ॥३॥
न करोति कथमप्यन्यन्मुक्तवा सीतासमागमोल्लापम् । पार्श्वस्थितेऽपि शब्दयत्येहयेहि लघु जनकदुहिते ॥४॥
देवीं वा मानुषीं वा नागवधुं र्यक्षिणीं वा महिलामहम् । इह सकलजीवलोके सीतासदृशीं न पश्यामि ॥५॥
एतानि चान्यानि च प्रलपन्बहुविधान्यजानन् । भणति कनिष्ठं पद्मः सोऽपि चिरयति सुग्रीवः ॥६॥
राघववचनेन गतः सौमित्रिः प्रविश्य सुग्रीवम् । भणति भवनोदरस्थं किं प्रमृष्टं त्वया सर्वम् ? ॥७॥
महिलाशोकसमुद्रे पतिते परमेश्वरे त्वमत्र । कथं रमसे विषयसुखमदीर्घप्रेक्षी महापापः ? ॥८॥
अकृतज्ञ ! खेचराधम ! पापगते ! तत्र नयामि शीघ्रं तम् । पद्मेन यत्र नीतस्तव सदृशो दुष्टचारित्रः ॥९॥
एवं परितर्जयन्तं सौमित्रिं वानराधिपो नत्वा । भणति च विस्मृतं ममैकापराधं क्षमस्व मम ॥१०॥
स्मारित्वा प्रतिज्ञां तस्य सौमित्रिः कथयति संबन्धम् । यथा योग्युपचारं करोत्येव यक्षदत्तस्य ॥११॥

---

१. सोमित्ति-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिपुच्छइ मगहवई, गणाहिवं जक्खदत्तवित्तन्तं । भयवं ! फुडवियत्थं, कहेहि इच्छामि नाउं जे ॥१२॥

भणइ तओ गणणाहो, सेणिय ! निसुणेहि जोगिणा सिट्ठे । जाओ जणणीए समं, समागमो जक्खदत्तस्स ॥१३॥

इह कुञ्चपुरे नयरे, राया परिवसइ निग्गयपयावो । नामेण जक्खसेणो, राइल्ला गेहिणी तस्स ॥१४॥

पुत्तो य जक्खदत्तो, सो विहरन्तो कयाइ [1]वरजुवई । दट्ठूण पायडत्थं, विद्धो कुसुमाउहसरेहिं ॥१५॥

तीए कए कुमारो, असिवरहत्थो निसासु वच्चन्तो । मुणिणा अवहिपरेणं, तरुमूलत्थेण पडिरुद्धो ॥१६॥

दट्ठूणुवयाररयं, साहुं परिपुच्छई कुमारवरो । साहेहि कोउयं, किं वच्चन्तो तए रुद्धो ? ॥१७॥

सो भणइ तुज्झ जणणी, सा जुवई जीए वच्चसे पासं । तेण वि य पुच्छिओ सो, भयवं ! साहेहि परमत्थं ॥१८॥

अह मत्तियावईए, कणगो नामेण तत्थ वाणियओ । धन्ना तस्स महिलिया, पुत्तो वि य बन्धुदत्तो से ॥१९॥

तत्थ लयादत्तसुया, मित्तमई बन्धुदत्तवणिएणं । परिणेऊण कओ से, गब्भो न य केण[2]ई नाओ ॥२०॥

पोएण पत्थिओ सो, सा वि य ससुरेण दुट्ठचारित्ता । काऊण य निच्छूढा, उप्पलियाए सह सहीए ॥२१॥

अणुमग्गेण रियन्ती, दइयस्स य अन्नमन्नसत्थेणं । बालसही उप्पलिया, अहीणा दट्ठा मया रण्णे ॥२२॥

काऊण विप्पलावं, सीलसहाई तओ य संपत्ता । एयं कुञ्चवरपुरं, पवरुज्जाणे पसूया सा ॥२३॥

कम्बलरयणेण सुयं, परिवेढेऊण पत्थिया सलिलं । अङ्गाणि जाव धोवइ, सुणएण हिओ तओ बालो ॥२४॥

परिपृच्छति मगधपति र्गणाधिपं यक्षदत्तवृत्तान्तम् । भगवन् ! स्फुटविकटार्थं कथयेच्छामि ज्ञातुं ये ॥१२॥

भणति ततो गणनाथः श्रेणिक ! निश्रुणु योगिना शिष्टे । जातो जनन्याः समं समागमो यक्षदत्तस्य ॥१३॥

इह कुञ्चपुरे नगरे राजा परिवसति निर्गतप्रतापः । नाम्ना यक्षसेनो रागिला गृहिणी तस्य ॥१४॥

पुत्रश्च यक्षदत्तः स विहरन्कदाचिद्वरयुवतिम् । दृष्ट्वा प्रकटार्थं विद्धः कुसुमायुधशरैः ॥१५॥

तस्याः कृते कुमारोऽसिवरहस्तो निशासु गच्छन् । मुनिनाऽवधिपरेण तरुमूलस्थेन प्रतिरुद्धः ॥१६॥

दृष्ट्वोपकारस्तं साधुं परिपृच्छति कुमारवरः । कथयति कौतुकं मम किं व्रजंस्त्वया रुद्धः ? ॥१७॥

स भणति तव जननी सा युवतिर्यस्या व्रजसि पार्श्वम् । तेनापि च पृष्टः स भगवन् ! कथय परमार्थम् ॥१८॥

अथ मृत्तिकावत्यां कनको नाम्ना तत्र वणिग् । धन्या तस्य महिला पुत्रोऽपि च बन्धुदत्तस्तस्याः ॥१९॥

तत्र लत्तादत्तसुता मित्रमती बन्धुदत्तवणिजा । परिणीय कृतस्तस्या गर्भो न च केनचिज्ज्ञातः ॥२०॥

पोतेन प्रस्थितः स साऽपि च श्वसुरेण दुष्टचारित्रा । कृत्वा च निष्काषितोत्पलायाः सह सख्याः ॥२१॥

अनुमार्गेण गच्छन्ती दयितस्य चान्यान्यसार्थेन । बालसख्युत्पलिकाऽहिना दृष्टा मृताऽरण्ये ॥२२॥

कृत्वा विप्रलापं शीलसहाया ततश्च संप्राप्ता । एतत्कुञ्चवरपुरं प्रवरोद्याने प्रसूता सा ॥२३॥

कम्बलरत्नेन सुतं परिवेष्ट्य प्रस्थिता सलिलम् । अङ्गानि यावत्क्षालयति शुनकेन हृतस्ततो बालः ॥२४॥

---

१. वरजुवइं-प्रत्य० । २. केणई मुणिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मित्तेण बालओ सो, घेत्तूण समप्पिओ नरिन्दस्स । तेण वि राइल्लाए, दिन्नो च्चिय निययभज्जाए ॥२५॥

नामेण जक्खदत्तो, सो हु तुमं नत्थि एत्थ संदेहो । पडियागया न पेच्छइ, सा वि तहिं काणणे बालं ॥२६॥

देवच्चएण दिट्ठा, मित्तमई पगलियंसुनयणजुया । बहिणी-पभासिऊणं, नीया सा अत्तणो गेहं ॥२७॥

लज्जाए पिइहरं सा, न गाय जिणधम्मसीलसंपन्ना । इह नयरबाहिरत्था, विहरन्तेणं तुमे दिट्ठा ॥२८॥

कम्बलरयणेण तुमं, जेणं चिय वेढिओ सिसू तइया । तं अच्छइ अहिनाणं, कुमार ! जक्खस्स भवणम्मि ॥२९॥

तं पणमिऊण साहुं, गेहं संपत्थिओ नियकण्ठे । लाएइ असिवरं सो, पुच्छइ य कहेहि जम्मं मे ॥३०॥

सव्वं पि तेण सिट्ठं, नरवइणा तस्स कम्बलाईयं । जाओ समागमो पुण, माया-वित्तेहि से समयं ॥३१॥

जाओ य महाणन्दो, परमविभूईए कुञ्चवरनयरे । सेणिय ! कमागओ तुह, संबन्धो सो समक्खाओ ॥३२॥

एत्तो सो कइवसभो, पुरओ काऊण लक्खणं तुरिओ । संपत्तो पउमाभं, पणमइ विहियञ्जली सिरसा ॥३३॥

सुग्गीवनरवईणं, आहूया तत्थ वाणरा सव्वे । भणिया पच्चुवयारं, करेह सिग्घं रहुवइस्स ॥३४॥

सीया गवेसह लहुं, पायाले जल-थले तहाऽऽगासे । लवणे धायइसण्डे, अड्ढतईएसु दीवेसु ॥३५॥

[1]आणा पडिच्छिऊणं, वाणरसुहडा तओ समन्तेणं । उप्पइया गयणयले, सहसा वच्चन्ति मणवेगा ॥३६॥

पउमाणत्तो य गओ, लेहं घेत्तूण वाणरजुवाणो । भामण्डलस्स सिग्घं, अप्पेइ सिरञ्जलिं काउं ॥३७॥

मित्रेण बालकः स गृहीत्वा समर्पितो नरेन्द्रस्य । तेनापि रागिलायै दत्त एव निजभार्यायै ॥२५॥

नाम्ना यक्षदत्तः स खलु त्वं नास्त्यत्र संदेहः । प्रत्यागता न पश्यति साऽपि तत्र कानने बालम् ॥२६॥

देवार्चकेन दृष्टा मित्रमती प्रगलिताश्रुनयनयुग्मा । भगिनी प्रभाष्य नीता साऽऽत्मनो गृहम् ॥२७॥

लज्जया पितृगृहं सा न गता जिनधर्मशीलसंपन्ना । इह नगरबाह्यस्था विहरता त्वया दृष्टा ॥२८॥

कम्बलरत्नेन त्वं येनैव वेष्टितः शिशुस्तदा । तदास्तेऽभिज्ञानं कुमार ! यक्षस्य भवने ॥२९॥

तं प्रणम्य साधुं गृहं संप्रस्थितो निजकण्ठे । लगयत्यसिवरं स पृच्छति च कथय जन्म मे ॥३०॥

स्वमपि तेन शिष्टं नरपतिना तस्य कम्बलादिकम् । जातः समागमः पुन माता-पितृभ्यां तस्य समकम् ॥३१॥

जातश्च महानन्दः परमविभूत्या कुञ्चवरनगरे । श्रेणिक ! क्रमागतस्तव संबन्धः स समाख्यातः ॥३२॥

इतः स कपिवृषभः पुरतः कृत्वा लक्ष्मणं त्वरितः । संप्राप्तः पद्मनाभं प्रणमति विहिताञ्जलिः शिरसा ॥३३॥

सुग्रीवनरपतिना ऽऽहूता तत्र वानराः सर्वे । भणिताः प्रत्युपकारं कुरुत शीघ्रं रघुपतेः ॥३४॥

सीतां गवेषयत लघु पाताले जल-स्थले तथाऽऽकाशे । लवणे घातकीखण्डे ऽर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु ॥३५॥

आज्ञां प्रतीच्छ्य वानरसुभटास्ततः समस्तेन । उत्पतिता गगनतले सहसा व्रजन्ति मनोवेगाः ॥३६॥

पद्माज्ञप्तश्च गतो लेखं गृहीत्वा वानरयुवानः । भामण्डलस्य शीघ्रमर्पयति शिर्षाञ्जलिं कृत्वा ॥३७॥

---

१. आणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं वाइऊण लेहं, असेसवित्तन्तमुणियपरमत्थो । बहिणीसोगापुण्णो, रामस्स हिओज्जओ जाओ ॥३८॥
सयमेव वाणरवई, खेयरपरिवेढिओ विमाणत्थो । [1]सीया गवेसयन्तो, कम्बुद्दीवं समणुपत्तो ॥३९॥
अवइण्णो च्चिय सहसा, दीवे पेच्छइ तहिं रयणकेसी । गाढभउव्विग्गमणो, पुच्छइ किं दुक्खिओ सि तुमं? ॥४०॥
भणइ तओ रयणजडी, सीयाहरणुज्जयाउलमणेणं । अहयं तु छिन्नविज्जो, रक्खसवइणा कओ पडिओ ॥४१॥
उवलभिऊणमसेसं, वित्तन्तं कइवरो रयणकेसी । निययविमाणारूढं, पउमसयासं तओ नेइ ॥४२॥
अवइण्णो रयणजडी, रामं नमिऊण तत्थ उवविट्ठो । साहेइ अपरिसेसं, सीयाहरणं जहावत्तं ॥४३॥
लङ्काहिवेण सामिय !, हरिया तुह गेहिणी अइबलेणं । जुज्झन्तो तीए कए, तेण कओ छिन्नविज्जो हं ॥४४॥
तं सुणिऊण रहुवई, हरिसवसुब्भिन्नजणियरोमञ्चो । सयलं च अङ्गछिन्नं, देइ तओ रयणकेसिस्स ॥४५॥
नयरे सुरसंगीए, कुलोचिए परिवसामि तत्थाहं । नामेणं रयणजडी, तुज्झ य सरणं समल्लीणो ॥४६॥
रामो समुस्सुयमणो, परिपुच्छइ खेयरा महं सिग्घं । साहेइ फुडं एत्तो, केदूरे सा पुरी लङ्का ॥४७॥
ते एव भणियमेत्ता, अहोमुहा लज्जिया गया मोहं । कज्जे अणायरमणा, निरिक्खिया रामदेवेणं ॥४८॥
कत्तो अम्ह महाजस !, सत्ती लङ्काहिवं जिणेऊणं । सोयव्वएण निसुणसु, को दोसो जइह अणुबन्धो ? ॥४९॥
अत्थि इहं लवणजले, रक्खसदीवो त्ति नाम विक्खाओ । सत्तेव जोयणसया, वित्थिण्णो तिगुणपरिवेढो ॥५०॥

तं वाचयित्वा लेखमशेषवृत्तान्तज्ञातपरमार्थः । भगिनीशोकापूर्णो रामस्य हितोद्यतो जातः ॥३८॥
स्वयमेव वानरपतिः खेचरपरिवेष्टितो विमानस्थः । सीतां गवेषयन्कम्बुद्वीपं समनुप्राप्तः ॥३९॥
अवतीर्ण एव सहसा द्वीपे पश्यति तत्र रत्नकेशिनम् । गाढभयोद्विग्नमनाः पृच्छति किं दुःखितोऽसि त्वम् ? ॥४०॥
भणति ततो रत्नजटी सीताहरणोद्यताकुलमनसा । अहं तु छिन्नविद्यो राक्षसपतिना कृतः पतितः ॥४१॥
उपलभ्याशेषं वृत्तान्तं कपिवरो रत्नकेशिनम् । निजविमानारूढं पद्मसकाशं ततो नयति ॥४२॥
अवतीर्णो रत्नजटी रामं नत्वा तत्रोपविष्टः । कथयत्यपरिशेषं सीताहरणं यथावृत्तम् ॥४३॥
लङ्काधिपेन स्वामिन् ! हृता तव गृहिण्यतिबलेन । युध्यमानस्तस्याः कृते तेन कृतश्छिन्नविद्योऽहम् ॥४४॥
तच्छ्रुत्वा रघुपतिर्हर्षवशोद्भिन्नजनितरोमाञ्चः । सकलं चाङ्गछिन्नं ददाति ततो रत्नकेशिनः ॥४५॥
नगरे सुरसंगीते कुलोचिते परिवसामि तत्राहम् । नाम्ना रत्नजटी तव च शरणं समालीनः ॥४६॥
रामः समुत्सुकमनाः परिपृच्छति खेचरा मम शीघ्रम् । कथयत स्फुटमितः कियद्दूरे सा पुरी लङ्का ॥४७॥
त एवं भणितमात्रा अधोमुखा लज्जिता गता मोहम् । कार्येऽनादरमनसो निरीक्षिता रामदेवेन ॥४८॥
कुतोऽस्माकं महायशः ! शक्ति र्लङ्काधिपं जेतुम् । श्रोतव्येन निश्रुणु को दोषो यदीहानुबन्धः ? ॥४९॥
अस्तीह लवणजले राक्षसद्वीप इति नाम विख्यातः । सप्तै योंजनशतानि विस्तीर्णस्त्रिगुणपरिवेष्टः ॥५०॥

---

१. सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्स य मज्झम्मि ठिओ, मेरु व्व तिकूडपव्वओ रम्मो । नव जोयणाणि तुङ्गो, पन्नासं चेव वित्थिण्णो ॥५१॥

तस्सुवरिं सा नयरी, लङ्का नामेण रयणपायारा । तीसं च जोयणाइं, वित्थिण्णा सा समन्तेणं ॥५२॥

लङ्कापुरीए सामिय !, पासेसु अहिट्ठिया महादीवा । अन्ने वि सग्गसरिसा, वसन्ति विज्जाहरजणेणं ॥५३॥

दीवो सञ्झायारो, तह य सुवेलो य कञ्चणो चेव । पल्हाओ य अजोहो, हंसरवो उवहिनिग्घोसो ॥५४॥

अन्ने वि अद्धसग्गादओ य दीवा अणेयपरियन्ता । बल-पुत्त-दारसहिओ, कीलइ लङ्काहिवो जेसु ॥५५॥

नामेण भाणुकण्णो, जस्स कणिट्ठो महाबलो सूरो । बिईओ बिहीसणो से, दढसत्ती बुद्धिसंपन्नो ॥५६॥

समरे अणिज्जियभड, पुत्तो से इन्दई महासत्तो । घणवाहणो त्ति नामं, बिओ सो तेण पडितुल्लो ॥५७॥

सो एवमाइएहिं, भडेहि तिसमुद्दमेइणीनाहो । पहु ! अम्हेहि न जिप्पइ, राघव ! छड्डेहि एस कहा ॥५८॥

अह भणइ लच्छिनिलओ, जइ दढसत्ती दसाणणो भणिओ ।
तो किं व इह समक्खं, परमहिलातक्करो जाओ ? ॥५९॥

पउमो वि भणइ निसुणह, किं व इहं जंपिएहि बहुएहिं ? ।
जइ कुणह मज्झ पीई[1], तो दरिसह जणयनिवतणया[2] ॥६०॥

तो भणइ जम्बवन्तो, इमाओ विज्जाहराण धूयाओ । परिणेऊण महाजस !, विसयसुहं चेव माणेहि ॥६१॥

अहवा छड्डेहि इमं, सीयाए कारणे अग्गाहं । मा होहि नाह ! दुहिओ, मऊरमूढो जहा पुरिसो ॥६२॥

तस्य च मध्ये स्थितो मेरुरिव त्रिकुटपर्वतो रम्यः । नवयोजनानितुङ्गः पञ्चाशदेव विस्तीर्णः ॥५१॥

तस्योपरि सा नगरी लङ्का नाम्ना रत्नप्राकारा । त्रिंशच्च योजनानि विस्तीर्णा सा समन्ततः ॥५२॥

लङ्कापुर्याः स्वामिन् ! पार्श्वेष्वधिष्ठिता महाद्वीपाः । अन्येऽपि स्वर्गसदृशा उच्यन्ते विद्याधरजनेन ॥५३॥

द्वीपः सन्ध्याकारस्तथा सुवेलश्च काञ्चन एव । प्रह्लादश्चायोधो हंसरव उदधिनिर्घोषः ॥५४॥

अन्येऽप्यर्द्धस्वर्गादयश्च द्वीपा अनेकपर्यन्ताः । बल-पुत्र दारासहितः क्रीडति लङ्काधिपो येषु ॥५५॥

नाम्ना भानुकर्णो यस्य कनिष्ठो महाबलः शूरः । द्वितीयो बिभीषणस्तस्य दृढशक्तिर्बुद्धिसंपन्नः ॥५६॥

समरेऽनिर्जितभटः पुत्रस्तस्येन्द्रजिन्महासत्त्वः । घनवाहन इति नाम द्वितीयः स तेन प्रतितुल्यः ॥५७॥

स एवमादिभिर्भटैस्त्रिसमुद्रमेदिनीनाथः । प्रभो ! अस्माभिर्न जीयते राघव ! त्यजेषा कथा ॥५८॥

अथ भणति लक्ष्मीनिलयो यदि दृढशक्ति र्दशाननो भणितः । ततः किं वेह समक्षं परमहिलातस्करो जातः ? ॥५९॥

पद्मोऽपि भणति निश्रुणुत किं वेह जल्पितै र्बहुभिः । यदि कुरुत मम प्रीतिं तदा दर्शयत जनकनृपतनया ॥६०॥

तदा भणति जाम्बवन्त इमा विद्याधराणां दुहितरः । परिणीय महायशः ! विषयसुखमेव मानय ॥६१॥

अथवा त्यजेदं सीतायाः कारणेऽसद्ग्राहम् । मा भव नाथ ! दुःखितो मयूरमूढो यथा पुरुषः ॥६२॥

बेन्नातटे नगरे सत्यरुचि र्वसति तत्र गृहपतिः । नाम्ना विनयदत्तस्तस्य सुतो रुपसंपन्नः ॥६३॥

---

१. पीइं-प्रत्य० । २. तणयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेण्णायडम्मि नयरे, सच्चरुई वसइ तत्थ गहवइओ । नामेण विणयदत्तो, तस्स सुओ रूवसंपन्नो ।।६३।।
अह विणयदत्तमित्तो, विसालभूइ त्ति नामओ विप्पो । तस्स घरिणीए समयं, आसत्तो सो तहिं अहियं ।।६४।।
वयणेण तीए नेउं, रण्णं छम्मेण विणयदत्तो सो । आरुहिऊण तरुवरे, बद्धो रज्जूहि विप्पेणं ।।६५।।
तं बन्धिऊण गेहं, पविसइ अलियं च उत्तरं दाउं । अच्छइ तीए समाणं, भुञ्जन्तो रइसुहं विप्पो ।।६६।।
एत्थन्तरम्मि पहिओ, तं देससमागओ कहवि मूढो । उवरिं पलोयमाणो, पेच्छइ पुरिसं तरुनिबद्धं ।।६७।।
आरुहिऊण तरुवरं, मुञ्चइ तं बन्धणाउ सो पहिओ । तुट्ठो य विणयदत्तो, तेण समं पत्थिओ सघरं ।।६८।।
दट्ठूण विणयदत्तं, नट्ठो विप्पो तओ अइतुरन्तो । पहिओ वि परिग्गहिओ, मऊरसहिओ गिहत्थेणं ।।६९।।
अह अन्नया मऊरो, तस्स वि हरिओ नरिन्दपुत्तेणं । सोगाउरो य पहिओ, जाओ मित्तं भणइ एत्तो ।।७०।।
जइ इच्छसि जीवन्तं, तं आणेहिऽह लहु मऊरं मे । बद्धो य तरुवरग्गे, मया विमुक्को वणे तइया ।।७१।।
तस्सुवयारस्स तुमं, पडिउवयारं करेहि नाऊणं । आणेहि मित्त ! सिग्घं, तं पि मऊरं हिययइट्ठं ।।७२।।
तो भणइ विणयदत्तो, गेण्हसु अन्नं सिहिं व रयणं वा । कत्तो सो हु मऊरो, जो गहिओ रायपुत्तेणं ? ।।७३।।
न य सो गेण्हइ अन्नं, मोरं रयणं व कणयदव्वं वा । जंपइ पुणो पुणो च्चिय, निययसिहिं मज्झ आणेहि ।।७४।।
जह सो मऊरमूढो, पहिओ न य मुयइ दढमसग्गाहं । तेण सरिसो नरुत्तम !, तुमं पि जाओ निरुत्तेणं ।।७५।।
अहवा रूवमईणं, खेयरधूयाण गुणकरालाणं । होहि तुमं भत्तारो, मोत्तूण तुमं असग्गाहं ।।७६।।

अथ विनयदत्तमित्रो विसालभूतिरिति नाम विप्रः । तस्य गृहिण्याः समकमासक्तः स तत्राधिकम् ।।६४।।
वचनेन तस्या नीत्वाऽरण्ये छद्मना विनयदत्तः सः । आरुह्यः तरुवरे बद्धो रज्जूभि र्विप्रेण ।।६५।।
तं बद्ध्वा गृहं प्रविशत्यलिकं चोत्तरं दत्वा । आस्ते तया समानं भुञ्जन्रतिसुखं विप्रः।।६६।।
अत्रान्तरे पथिकस्तं देशसमागतः कथमपि मूढः । उपरि प्रलोक्यमानः पश्यति पुरुषं तरुनिबद्धम् ।।६७।।
आरुह्य तरुवरं मुञ्चति तं बन्धनात्स पथिकः । तुष्टश्च विनयदत्तस्तेन सम प्रस्थितः स्वगृहम् ।।६८।।
दृष्ट्वा विनयदत्तं नष्टो विप्रस्ततोऽतित्वरमाणः । पथिकोऽपि परिगृहीतो मयूरसहितो गृहस्थेन ।।६९।।
अथान्यदा मयूरस्तस्यापि हृतो नरेन्द्रपुत्रेण । शोकातुरश्च पथिको जातो मित्रं भणतीतः ।।७०।।
यदीच्छसि जीवन्तं तमानयाथ लघु मयूरं मे । बद्धश्च तरुवराग्रे मया विमुक्तो वने तदा ।।७१।।
तस्योपकारस्य त्वं प्रत्युपकारं कुरु ज्ञात्वा । आनय मित्र ! शीघ्रं तमपि मयूरं हृदयेष्टम् ।।७२।।
तदा भणति विनयदत्तो गृहाणान्यं शिखिनं वा रत्नं वा । कुतः स खलु मयूरो यो गृहीतो राजपुत्रेण ? ।।७३।।
न च स गृह्णात्यन्यं मयूरं रत्नं वा कनकद्रव्यं वा । जल्पति पुनः पुनरेव निजशिखिनं ममानय ।।७४।।
यथा स मयूरमूढः पथिको न च मुञ्चति दृढमसद्ग्राहम् । तेन सदृशो नरोत्तम ! त्वमपि जातो निश्चयेन ।।७५।।
अथवा रुपवतीनां खेचरदुहितॄणां गुणकरालाणाम् । भव त्वं भर्त्ता मुक्त्वा त्वमसद्ग्राहम् ।।७६।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो भणइ लच्छिनिलओ, जम्बूणय ! मह सुणेहि अक्खाणं ।
आसि पुरा गहवइओ, पभवो महिला य से [1] जउणा ॥७७॥

तिण्णि जणा तस्स सुया, अप्पासेओ तहा विहाणो य । अन्नो सिलाधरो पुण, उज्जुत्तो सव्वकज्जेसु ॥७८॥
गिह-पसु-खेत्ताईसु य, इयरो वि तहाविहो कुणइ कम्मं । भोगाइं अप्पसेओ, नवरं पुण पुव्वसुकएणं ॥७९॥
कम्मं अकरेन्तो सो, एवं भाईहिं सपरिवारे । निब्भच्छिओ य सन्तो, गेहाओ निग्गओ माणी ॥८०॥
असमत्थो च्चिय कम्मं, काउं सुकुमालकोमलसरीरो । संवेगसमावन्नो, मरणुच्छाहो तओ जाओ ॥८१॥
अह तम्मि देसकाले, परभवसुकएण तत्थ आणीओ । एक्को पहियजुवाणो, भणइ य वयणं मह सुणेहि ॥८२॥
भाणू नामेण अहं, रायसुओ गोत्तिएहि अक्कन्तो । देसे विणिग्गओ वि य, कुसुमपुरं पाविओ कमसो ॥८३॥
आयरिएण समाणं, संसग्गी मे तओ समुप्पन्ना । दिन्नं च वेज्जकडयं, तेण महं सुप्पसन्नेणं ॥८४॥
एयं ओसहिवलयं, गह-भूओरग-पिसाय-वाहीओ । नासेइ छित्तमेत्तं, भणियं निस्संसयं गुरुणा ॥८५॥
नेमित्तियआइट्ठस्स भद्द ! कालावही मह समत्तो । निययं वच्चामि पुरं, करेमि रज्जं तहिं गन्तुं ॥८६॥
रज्जासत्तस्स इमं, मा मे छड्डिहिति वाउलमणस्स । गिण्ह तुमं वरकडयं, विणासणं सव्वरोगाणं ॥८७॥
तं गेण्हिऊण वलयं, अप्पासेओ गओ निययगेहं । सपुरं च सुभाणू वि य, संपत्तो उत्तमं रज्जं ॥८८॥
ताव य नरिन्दभज्जा, अहीण दट्ठा सरीरनिच्चेट्ठा । [2] पडहियनिरूविया सा, अप्पासेएण तो दिट्ठा ॥८९॥

ततो भणति लक्ष्मीनिलयो जाम्बूनद ! मम श्रुण्वाख्यानम् । आसीत्पुरा गृहपतिः प्रभवो महिला च तस्य यमुना ॥७७॥
त्रयो जना तस्य सुता आत्मश्रेयस्तथा विधानश्च । अन्यः शिलाधरः पुनरुद्युक्तः सर्वकार्येषु ॥७८॥
गृह-पशु-क्षेत्रादिषु चेतरोऽपि तथाविधः करोति कर्म । भोगान्यात्मश्रेयो नवरं पुनः पूर्वसुकृतेन ॥७९॥
कर्माकुर्वन् स एवं भ्रातृभिःसपरिवारैः । निर्भत्सितश्च सन् गृहान्निर्गतो मानी ॥८०॥
असमर्थ एव कर्म कृत्वा सुकुमालकोमलशरीरः । संवेग समापन्नो मरणोत्साहस्ततो जातः ॥८१॥
अथ तस्मिन्देशकाले परभवसुकृतेन तत्रानीतः । एकः पथिकयुवानो भणति च वचनं मम श्रुणु ॥८२॥
भानुर्नाम्नाहं राजसुतो गोत्रिभिराक्रान्तः । देशान्निर्गतोऽपि च कुसुमपुरं प्राप्तः क्रमशः ॥८३॥
आचार्येण समानं संसर्गी मे ततः समुत्पन्नः । दत्ते च वैद्यवकटकं तेन मह्यं सुप्रसन्नेन ॥८४॥
एतदौषधिवलयं ग्रहभूतोरगपिशाचव्याधयः । नश्यन्ति स्पर्शमात्रं भणितं निःशंकितं गुरुणा ॥८५॥
नैमित्तिकादिष्टस्य भद्र ! कालावधि र्मम समाप्तः । निजकं गच्छामि पुरं करोमि राज्यं तत्र गत्वा ॥८६॥
राज्यासक्तस्येदं मा मे त्यक्षति व्याकुलमनसः । गृहाण त्वं वरकटकं विनाशनं सर्वरोगाणाम् ॥८७॥
तद्गृहित्वावलयमात्मश्रेयो गतो निजगृहम् । स्वपुरं च सुभानुरपि च संप्राप्त उत्तमं राज्यम् ॥८८॥
तावच्च नरेन्द्रभार्याऽहिना दृष्या शरीरनिश्चेष्या । पटहनिरुपिता साऽऽत्मश्रेयेन तदा दृष्या ॥८९॥

---

१. जमुणा-प्रत्य० । २. पडुपडहनिरूविया-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कडयस्स पसाएणं, जीवावइ सो हु तं महादेविं । संपाविओ [1] विभूई, तत्थ नरिन्देण तुट्ठेणं ॥९०॥
काऊण उत्तरिज्जे, तं वलयं सरवरं समोइण्णो । गोहेरएण हरियं, तंचिय सुहलक्खणं वलयं ॥९१॥
तरुवरहेट्ठम्मि बिलं, तं पविसिूण घणसिलाछन्नं । गोहेरो कुणइ रवं, पलयमहामेहनिग्घोसं ॥९२॥
सद्देण तेण भीओ नयरजणो पत्थिवो य भटसहिओ । उम्मूलेइ तरुवरं अप्पासेओऽभिमाणेणं ॥९३॥
हन्तूण य गोहेरं, गेण्हइ वलयं निहाणसंजुत्तं । उच्छाहनिच्छियमई, अप्पासेओ [2] जुई पत्तो ॥९४॥
अप्पासेएण समो, रामो सीया य वलयमुत्ति व्व । महइमहानिहिलम्भो, गोहेरो रावणो चेव ॥९५॥
पुरिसा निच्छियहियया, पावन्ति धणं जसं च सोक्खं च । तुम्हे वि होह सत्था, सीया अम्हेहि लहियव्वा ॥९६॥
सोऊण उवक्खाणं, जियजम्बूणयकहासमुल्लावं । बहवे विम्हियहियया, विज्जाहरपत्थिवा जाया ॥९७॥
जम्बूणयमाईया, सव्वे वि य संपहारणं काउं । पुणरवि भणन्ति पउमं, एत्थं सुण सारसब्भावं ॥९८॥
साहू अणन्तविरिओ, मरणं परिपुच्छिओ दहमुहेणं । जंपइ जो कोडिसिलं, उद्धरिही सो तुमं सत्तू ॥९९॥
तो भणइ लच्छिनिलओ, तुब्भे मा कुणह एत्थ विक्खेवं । दावेह मज्झ सिग्घं, तं कोडिसिलं सुरग्घवियं ॥१००॥
सम्मन्तिऊण एत्तो, अरहस्सं वाणरेन्दमाईया । बल-नारायणसहिया, गया य रत्तिं विमाणेहिं ॥१०१॥
पत्ता सिन्धुद्देसं, अवइण्णा तं सिलं तहिं दट्ठुं । सव्वे वि पययमणसा, पणमन्ति पयाहिणावत्तं ॥१०२॥
कुङ्कुमरसेण चन्दण-विच्छुरिया अच्चिय य कुसुमेहिं । आभरणभूसियङ्गी, विभाइ देवि व्व कोडिसिला ॥१०३॥

कटकस्य प्रसादेन जीवायति स खलु तां महादेवीम् । संप्राप्तो विभूति तत्र नरेन्द्रेण तुष्टेन ॥९०॥
कृत्वोत्तरीये, तं वलयं सरोवर समवस्तीर्ण । गोधेरेण हृतं तावच्च शुभलक्षणं कटकम् ॥९१॥
तरुवराधो बिलं तं प्रविश्य घनशिलाच्छन्नम् । गोधेरः कोरति रवं प्रलयमहामेघनिर्घोषम् ॥९२॥
शब्देन तेन भीतो नगरजनः पार्थिवश्च भटसहितः । उत्खनति तरुवरमात्मश्रेयोऽभिमानेन ॥९३॥
हत्वा च गोधेरं गृह्णाति वलयं निधानसंयुक्तम् । उत्साहनिश्चितमतिरात्मश्रेयो द्युतिं प्राप्तः ॥९४॥
आत्मश्रेयेण समो रामः सीता च वलयमूर्तिरिव । महतिमहानिधिलाभो गोधेरो रावणश्चैव ॥९५॥
पुरुषा निश्चितहृदयाः प्राप्नुवन्ति धनं यशश्च सुखं च । यूयमपि भवत स्वस्थाः सीताऽस्माभिर्लब्धव्या ॥९६॥
श्रुत्वोपाख्यानं जितजाम्बूनदकथासमुल्लापम् । बहवो विस्मितहृदया विद्याधरपार्थिवा जाताः ॥९७॥
जाम्बूनदादयः सर्वेऽपि च संप्रधारणं कृत्वा । पुनरपि भणन्ति पद्ममत्र श्रुणु सारसद्भावम् ॥९८॥
साधुरनन्तवीर्यो मरणं परिपृष्टो दशमुखेन । जल्पति यः कोटिशिलामुद्धरिष्यति स तव शत्रुः ॥९९॥
तदा भणति लक्ष्मीनिलयो यूयं मा कुरुतात्र व्याक्षेपम् । दर्शयत मम शीघ्रं ता कोटिशिलां सुराध्र्यायिताम् ॥१००॥
सम्मन्त्र्येतोऽरहस्यं वानरेन्द्रादयः । बलनारायणसहिता गताश्च रात्रिं विमानैः ॥१०१॥
प्राप्ताः सिन्धुदेशमवतीर्णास्तां शिलां तत्र दृष्ट्वा । सर्वेऽपि प्रणतमनसः प्रणमन्ति प्रदक्षिणावर्तम् ॥१०२॥
कुङ्कुमरसेन चन्दनविच्छुरिताऽर्चिता च कुसुमैः । आभरणभूषिताङ्गिनी विभाति देवीव कोटिशिला ॥१०३॥

---

१. विभूइं-प्रत्य० । २. जुइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निम्मज्जियपरिवेढो, करयलमउलञ्जलिं सिरे रइउं । सिद्धाण नमोक्कारं, करेइ लच्छीहरो एत्तो ॥१०४॥
भवजलहिसमुत्तिण्णा, जे सव्वसुहालयं समणुपत्ता । निययं अणन्तदरिसी, ते सिद्धा मङ्गलं मज्झं ॥१०५॥
इह जे सिद्धिमुवगया, निव्वाणसिलाए साहवो धीरा । सव्वे वि कम्मरहिया, ते हं वन्दामि भावेणं ॥१०६॥
पउमो खेयरसहिओ, आसीसं देइ लच्छिनिलयस्स । अरहन्त सिद्ध साहू, धम्मो तुह मङ्गलं होउ ॥१०७॥
सा लक्खणेण एत्तो, नाणाकुसुमच्चिया सुरभिगन्धा । बाहासु समुक्खित्ता, सिद्धिसिला कुलवहू चेव ॥१०८॥
साहु त्ति साहुसद्दं, सुराण सुणिऊण अम्बरे महयं । जाया विम्हियहियया, सुग्गीवाई भडा बहवे ॥१०९॥
सव्वे नमिऊण सिला, सम्मेयं पव्वयं गया सिग्घं । उसभाइजिणवराणं, पडिमाउ थुणन्ति भावेणं ॥११०॥
अह ते पदक्खिणेउं, भरहं वरजाण-वाहणारूढा । सुहकरण-तिहि-मुहुत्ते, किक्किन्धिपुरं गया सिग्घं ॥१११॥
सुत्तुट्ठिया पभाए, सुग्गीवाई कइद्धया सव्वे । गन्तूण रामदेवं, पणमन्ति जहाणुपुव्वीए ॥११२॥
उवविट्ठा भणइ तओ, पउमो सव्वे वि वाणरा तुब्भे । अज्ज व य किं पडिच्छह ?, चिट्ठइ सीया तहिं दुक्खं ॥११३॥
मोत्तूण दीहसुत्तं, लङ्कागमणे मई कुणह सिग्घं । मा विरहेतणुइयङ्गी[1], करिही कालं तहिं सीया ॥११४॥
जंपन्ति वयोविद्धा, राघव ! निसुणेहि अम्ह वयणेक्कं । जइ इच्छसि वइदेही, तेण समं विग्गहो होही ॥११५॥
दुक्खेहि होइ विजओ, रणम्मि असमाणविग्गहो एसो । विज्जासहस्सधारी, न य जिणसि दसाणणं सामि! ॥११६॥

निमज्जितपरिवेष्टः करतलमुकुलाञ्जलिं शीर्षे रचयित्वा । सिद्धेभ्यो नमस्कारं करोति लक्ष्मीधर इतः ॥१०४॥
भवजलधिसमुतीर्णा ये सर्वसुखालयं समनुप्राप्ताः । नित्यमनन्तदर्शिर्णस्ते सिद्धा मङ्गलं मम ॥१०५॥
इह ये सिद्धिमुपागता निर्वाणशिलायां साधवो धीराः । सर्वेऽपि कर्मरहितास्तानहं वन्दे भावेन ॥१०६॥
पद्मः खेचरसहित आशिषं ददाति लक्ष्मीनिलयाय । अर्हन् सिद्धः साधुर्धर्मस्तव मङ्गलं भवतु ॥१०७॥
सा लक्ष्मणेनेतो नानाकुसुमार्चिता सुरभिगन्धा । बाहाभ्यां समुत्क्षिप्तासिद्धशिला कुलवधुरिव ॥१०८॥
साध्विति साधुशब्द सुराणां श्रुत्वाऽम्बरे महत् । जाता विस्मितहृदयाः सुग्रीवादयो भटा बहवः ॥१०९॥
सर्वे नत्वा शिलां सम्मेतं पर्वतं गताः शीघ्रम् । ऋषभादिजिनवराणां प्रतिमाः स्तुवन्ति भावेन ॥११०॥
अथ ते प्रदक्षिण्य भरतं वरयानवाहनारुढाः । शुभकरण तिथि मुहूर्ते किष्किन्धिपुरं गताः शीघ्रम् ॥१११॥
सुप्तोत्थिताः प्रभाते सुग्रीवादयः कपिध्वजाः सर्वे । गत्वा रामदेवं प्रणमन्ति यथानुपूर्व्या ॥११२॥
उपविष्टा भणति ततः पद्मः सर्वान्ऽपि वानरान् यूयम् । अद्यापि च किं प्रतीक्षध्वे ? तिष्ठति सीता तत्र दुःखम् ॥११३॥
मुक्त्वा दीर्घसूत्रं लङ्कागमने मतिं कुरुत शीघ्रम् । मा विरहेतन्वङ्गिनी करिष्यति कालं तत्र सीता ॥११४॥
जल्पन्ति वयोवृद्धा राघव ! निश्रुण्वस्माकं वचनमेकम् । यदीच्छसि वैदेहीं तेन समं विग्रहो भविष्यति ॥११५॥
दुःखैर्भवति विजयो रणेऽसमानविग्रहः एषः । विद्यासहस्रधारी न च जयसि दशाननः स्वामिन् ! ॥११६॥

---

१. विरहताविंयगी-प्रत्य० ।

तम्हा करेहि बुद्धी, अम्हं वयणेण मुयसु रणतत्तिं । अबलस्स बलियएणं, समयं को विग्गहो एत्थ ? ॥११७॥

जो सो अणुव्वयधरो, बिभीसणो नाम देसविक्खाओ । तस्स अलङ्घं वयणं, काही लङ्काहिवो नियमा ॥११८॥

घणपीइसंपउत्तो, तस्स य वयणेण बोहिओ सन्तो । अप्पिहिइ जणयतणयं, दसाणणो नत्थि संदेहो ॥११९॥

तम्हा गवेसह लहुं, नयकुसलं वाणराण सामन्तं । जो सह बिहीसणेणं, दहवयणं पत्तियावेइ ॥१२०॥

एयम्मि देसकाले, महोदही नाम खेयरो भणइ । बहुजन्तदुग्गमा सा, कया य लङ्का विसमसाला ॥१२१॥

एयाण मज्झयारे, एक्कं पि हु खेयरं न पेच्छामि । जो पविसिऊण लङ्कं, पुणरवि सिग्घं नियत्तेइ ॥१२२॥

पवणंजयस्स पुत्तो, सिरिसेलो नाम निग्गयपयावो । बल-कन्ति-सत्तिजुत्तो, सो नवरं तं पसाएइ ॥१२३॥

सव्वेहि एवमेयं, कईहि अणुमन्निऊण तं वयणं । हणुयस्स सन्नियासं, सिरिभूई पेसिओ दूओ ॥१२४॥

तुङ्गबलगव्विएण वि, पुरिसेणं नियमसत्तिजुत्तेण सया ।
होयव्वं नियमइणा, किंचि गणेन्तेण कारणं चिय विमलं ॥१२५॥

॥ इय पउमचरिए कोडिसिलाउद्धरणं नाम अट्ठचत्तालं पव्वं समत्तं ॥

तस्मात्कुरु बुद्धिमस्माकं वचनेन मुञ्च रणवार्तामेमाम् । अबलस्य बलिना समकं को विग्रहोऽत्र ? ॥११७॥

यः सोऽनुव्रतधरो बिभीषणो नाम देशविख्यातः । तस्यालङ्घ्यं वचनं करिष्यति लङ्काधिपो नियमा ॥११८॥

घनप्रीतिसंप्रयुक्तस्तस्य च वचनेन बोधितस्सन् । अर्पिष्यति जनकतनयां दशाननो नास्ति संदेहः ॥११९॥

तस्माद्गवेषयत लघु नयकुशलं वानराणां सामन्तम् । यः सह बिभीषणेन दशवदनं प्रत्याययति ॥१२०॥

एतस्मिन्देशकाले महोदधि र्नाम खेचरो भणति । बहुयन्त्रदुर्गमा सा कृता च लङ्का विषमशाला ॥१२१॥

एतेषां मध्य एकमपि हु खेचरं न पश्यामि । यः प्रविश्य लङ्कां पुनरपि शीघ्रं निवर्त्तयेत् ॥१२२॥

पवनञ्जयस्य पुत्रः श्रीशैलो नाम निर्गतप्रतापः । बल-कान्ति-शक्ति युक्तः स नवरं तं प्रसाधयति ॥१२३॥

सर्वैरेवमेतत्कपिभिरनुमन्य तद् वचनम् । हनुमतः सन्निकाशं श्रीभूतिः प्रेषितदूतः ॥१२४॥

तुङ्गबलगर्वितेनापि पुरुषेण निजशक्तियुक्तेन सदा । भवितव्यं निजमत्या किंचिद्गणता कारणमेव विमलम् ॥१२५॥

॥ इति पद्मचरित्रे कोटिशिलोद्धरणं नामाष्टचत्वारिंशतमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४९. हणुयपत्थाणपव्वं

तत्तो सो सिरिभूई, संपत्तो सिरिपुरं रयणचित्तं । पविसइ हणुयस्स [1] सभं, तावेन्तं पेच्छई दूयं ॥१॥

अत्थाणिसन्निविट्ठो, हणुओ समयं अणङ्गकुसुमाए । गुण-रूवसालिणीए, चन्दणहानन्दिणीए य ॥२॥

काऊण सिरपणामं, चन्दणहासन्तिओ तओ दूओ । साहइ हणुयस्स फुडं, दण्डयरण्णाइयं सव्वं ॥३॥

ते लक्खणेण वहिया, सामिय ! सम्बुक्क-दूसणा दो वि । सीयाहरणनिमित्ते, इह जाओ विग्गहो परमो ॥४॥

सुणिऊण इमं वत्तं, अणङ्गकुसुमा खणं गया मोहं । आसत्था रुयइ तओ, सहोयरं चेव पियरं च ॥५॥

तं पेच्छिऊण एत्तो, खुहियं अन्तेउरं रुयइ सव्वं । जह वीणा-वंसरवो, खणेण ओहामिओ सव्वो ॥६॥

हा ताय ! हा सहोयर !, कत्तो सि गया महं अपुण्णाए ? । चिरकालविमुक्काए किं मज्झ न दंसणं देह ? ॥७॥

एयाणि य अन्नाणि य, दुहिया खरदूसणस्स रोवन्ती । संथावणकुसलेहिं, मन्तीहिं उवसमं नीया ॥८॥

सव्वं च ताण काउं, पवणसुओ पेयकम्मकरणिज्जं । सुग्गीवरायतणयं, सद्दाविय पुच्छई दूयं ॥९॥

अह तत्थ भणइ दूओ, देव ! निसामेहि अवहिओ होउं । कन्ताविओगदुहियं, सुग्गीवं जाणसी चेव ॥१०॥

महिलादुहियमणो सो, सरणं चिय राघवं समल्लीणो । गन्तूण निययनयरं, जुज्झइ समयं चिय रिवूणं ॥११॥

---

४९. हनुमत्प्रस्थानपर्वम्

ततः स श्रीभूतिः संप्राप्तः श्रीपुरं रत्नचित्रम् । प्रविशति हनुमतः सभां तावदायान्तं पश्यति दूतम् ॥१॥

आस्थानसंनिविष्टे हनुमान्समकमनङ्गकुसुमया । गुणरुपशालीन्या चन्द्रणखानन्दिन्या च ॥२॥

कृत्वा शिरः प्रणामं सुग्रीवसत्कस्ततो दूतः । कथयति हनुमतः स्फुटं दण्डकारण्यादिकं सर्वम् ॥३॥

तौ लक्ष्मणेन हतौ स्वामिन् ! शम्बुक दूषणौ द्वावपि । सीताहरणनिमित्त इह जातो विग्रहः परमः ॥४॥

श्रुत्वेदं वृत्तमनङ्गकुसुमा क्षणं गता मोहम् । आश्वस्ता रोदिति ततः सहोदरमेव पितरं च ॥५॥

तदृष्ट्वेतः क्षुभितमन्तःपुरं रोदिति सर्वम् । यथा वीणावंशरवः क्षणेनावनामितः सर्वः ॥६॥

हा तात ! हा सहोदर ! कुतोऽसि गता ममापुण्यया ? । चिरकालविप्रमुक्ता किं मम न दर्शनं ददत ? ॥७॥

एतानि चान्यानि च दुहिता खरदूषणस्य रुदन्ती । संस्थापनकुशलै र्मन्त्रिभिरुपशमं नीता ॥८॥

सर्वं च तयोः कृत्वा पवनसुतः प्रेतकर्मकरणीयम् । सुग्रीवराजसत्कं शब्दाय्य पृच्छति दूतम् ॥९॥

अथ तत्र भणति दूतो देव ! निशामयावहितो भूत्वा । कान्तावियोगदुःखितं सुग्रीवं जानास्येव ॥१०॥

महिलादुःखितमनाः स शरणमेव राघवं समालीनः । गत्वा निजनगरं युध्यते समकमेव रिपूणाम् ॥११॥

---

१. सभं तावन्नं पेच्छई–प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण रामदेवं, वेयाली निग्गया महाविज्जा । ताहे सरेहि निहओ, पउमेणं साहसो समरे ॥१२॥
सोऊण वयणमेयं, पवणसुओ भणइ साहु साहु त्ति । राघव ! सुग्गीवबलं, वसणनिमग्गं समुद्धरियं ॥१३॥
सोऊण कमलनामा, पिउसोगपरिक्खयं हणुवभज्जा । सम्माणदाणजुत्तं, कुणइ तओ सा महाणन्दं ॥१४॥
दूयवयणेण चलिओ, सिरिसेलो वरविमाणमारूढो । रह-तुरय-गयसमग्गो, संघट्टुट्ठन्तभडनिवहो ॥१५॥
अह सो कमेण पत्तो,किक्किन्धिपुरं च तत्थ अवइण्णो । सुग्गीवेण सहरिसं, अहियं संभासिओ हणुओ ॥१६॥
पउमस्स चेट्ठियं सो, तह य कहेऊण वाणराहिवई । रामस्स सन्नियासं, मारुइसहिओ समणुपत्तो ॥१७॥
दट्ठूण य एज्जन्तं, हणुवं अब्भुट्ठिओ पउमणाहो । अवगूहइ परितुट्ठो, सिणेहसंभासणं कुणइ ॥१८॥
लच्छीहराइएहिं, भडेहि संभासिओ पवणपुत्तो । दिन्नासणोवविट्ठो, सेसा वि जहाणुपुव्वीए ॥१९॥
भद्दासणे निविट्ठो, पउमो वरकणयकुण्डलाहरणो । पीतम्बरपरिहाणो, तस्स ठिओ लक्खणो पासे ॥२०॥
सुग्गीव-अङ्ग-अङ्गय-जम्बव-नल-नील-कुमुयमाईया । तह य विराहियसहिया, वेढेत्ताऽवट्ठिया रामं ॥२१॥
काऊण समुल्लावं, सिलिसेलो भणइ राघवं एत्तो । कह तुज्झ सामि ! पुरओ, घेप्पन्ति गुणा अपरिमेया ? ॥२२॥
वज्जावत्तधणुवरं, सहस्सऽमररक्खियं वसे ठवियं । वइदेहीसंवरणे, तुज्झ सुयऽम्हेहि माहप्पं ॥२३॥
अम्हं तुमे महाजस !, हियइट्ठं ववसियं महाकम्मं । सुग्गीववरूवधारी, जं निहओ साहसो समरे ॥२४॥
उवगारिस्स महाजस !, पडिउवगारं न चेव जो कुणइ । तस्सेव भावसुद्धी, निययं पि कओ समुब्भवइ ? ॥२५॥
सो सव्वाण वि पावो, लोद्धय-वाहाण मच्छबन्धाणं । घट्ठो घिणाविमुक्को, जो य कयग्घो इहं पुरिसो ॥२६॥

दृष्ट्वा रामदेवं वैताली निर्गता महाविद्या । तदा शरै र्निहतः पद्मेन साहसः समरे ॥१२॥
श्रुत्वा वचनमेतत्पवनसुतो भणति साधुसाध्विति । राघव ! सुग्रीवबलं व्यसननिमग्नं समुद्धृतम् ॥१३॥
श्रुत्वा कमलानामा पितृशोकपरिक्षयं हनुमद्भार्या । सन्मानदानयुक्तं करोति ततः सा महानन्दम् ॥१४॥
दूतवचनेन चलितः श्रीशैलो वरविमानमारुढः । रथ-तुरग-गजसमग्रः संघट्टोत्तिष्ठद्भटनिवहः ॥१५॥
अथ स कमेण प्राप्तः किष्किन्धिपुरं च तत्रावतीर्णः । सुग्रीवेण सहर्षमधिकं संभाषितो हनुमान् ॥१६॥
पद्मस्य चेष्टितं स तथा च कथयित्वा वानराधिपतिः । रामस्य सन्निकाशं मारुतिसहितः समनुप्राप्तः ॥१७॥
दृष्ट्वा चायान्तं हनुमन्तमभ्युत्थितः पद्मनाभः । अवगूहति परितुष्टः स्नेहसंभाषणं करोति ॥१८॥
लक्ष्मीधरादिभि र्भटैः संभाषितः पवनपुत्रः । दत्तासनोपविष्टः शेषा अपि यथानुपूर्व्या ॥१९॥
भद्रासने निविष्टः पद्मो वरकनककुण्डलाभरणः । पीताम्बरपरिधानस्तस्य स्थितो लक्ष्मणः पार्श्वे ॥२०॥
सुग्रीवाङ्गाङ्गद-जाम्बवन्नल-नील-कुमुदादयः । तथा च विराधितसहिता वेष्टयित्वाऽवस्थिता रामम् ॥२१॥
कृत्वा समुल्लापं श्रीशैलो भणति राघवमितः । कथं तव स्वामिन् ! पुरतो गृह्णन्ति गुणा अपरिमिताः ॥२२॥
वज्रावर्तधनुवरं सहस्रामररक्षितं वशे स्थापितम् । वैदेही स्वयंवरणे तव श्रुतमस्माभि र्महात्म्यम् ॥२३॥
अस्माकं त्वया महायशः ! हृदयेष्टं व्यवसितं महाकर्म । सुग्रीवरुपधारी यन्निहतः साहसः समरे ॥२४॥
उपकारिणो महायशः ! प्रत्युपकारं नैव यः करोति । तस्यैव भावशुद्धि र्नित्यमपि कुतः समुद्भवति ? ॥२५॥
स सर्वेषामपि पापो लुब्धक-व्याधानां मत्स्यबन्धानाम् । धृष्टो घृणाविमुक्तो यश्च कृतघ्न इह पुरुषः ॥२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वे वि तुज्झ सुपुरिस !, पडिउवयारस्स उज्जया अम्हे । गन्तूण [१]सामि ! लङ्कं, रक्खसणाहं पसाएमो ॥२७॥
सामिय ! देहाऽऽणत्तिं, तुह महिला जेण तत्थ गन्तूणं । आणेमि भुयबलेणं, पेच्छसु उक्कण्ठिओ सिग्घं ॥२८॥
जम्बूणएण भणिओ, वच्छ हणूवन्त ! साहु भणियं ते । गन्तव्वं चेव तुमे, लङ्का[२]नयरी सुमणसेणं ॥२९॥
भणियं च एवमेयं, मारुइणा नत्थि एत्थ संदेहो । ताहे हरिसवसगओ, पउमो सीयाए संदिसइ ॥३०॥
मह बयणेण भणेज्जसु, हणुय ! तुमं विरहकायरिं सीयं । जह सो तुज्झ विओगे, रामो न य निव्वुइं लहइ ॥३१॥
जाणामि मह विओगे, मरसि तुमं नत्थि एत्थ संदेहो । तह वि समागमहेउं, सुन्दरि ! जीयं धरिज्जासु ॥३२॥
दूरे वि तन्न दूरे, सज्जण हिययाइं जत्थ मिलियाइं । गयणट्ठिओ वि चंदो आसासइ कुमुय संडाइ ॥३३॥
लोगम्मि होइ दुल्लहो, समागमो तह य दुल्लहो धम्मो । तत्तो य दुल्लहयरं, समाहिमरणं जिणमयम्मि ॥३४॥
तम्हा रक्खसदीवे, मा काहिसि एत्थ सुन्दरी ! कालं । जावाऽऽगच्छामि अहं, वाणरसहिओ तुह सयासं ॥३५॥
एयं पच्चयकरणं, दावेज्जसु अङ्गुलेययं नेउं । चूडामणिं च मज्झं, आणेज्जसु तीए सन्निहियं ॥३६॥
जं आणवेसि सामिय !, भणिऊणं, मारुई नमइ रामं । लच्छीहरं पि एवं, सेसा वि भडा समालवइ ॥३७॥
भणिओ च्चिय मारुइणा, सुग्गीवो जाव तत्थ गन्तूणं । एहामि ताव तुब्भे, एत्थं चिय अच्छियव्वं तु ॥३८॥
एव भणिऊण तो सो, आरूढो मारुई वरविमाणं । उप्पइओ गयणयलं, [३]समयं नियएण सेन्नेणं ॥३९॥

कए वि अन्नस्सुवयारजाए, कुणन्ति जे पच्चुवयारजोगं ।
न तेसु तुल्लो विमलो वि चन्दो, न येव भाणू न य देवराया ॥४०॥

॥ इय पउमचरिए हणुयपत्थाणं नाम एगूणपन्नासं पव्वं समत्तं ॥

सर्वेऽपि तव सत्पुरुष ! प्रत्युपकारस्योद्यता वयम् । गत्वा स्वामिल्लङ्कां राक्षसनाथं प्रसादयामः ॥२७॥
स्वामिन् ! देह्याज्ञां तव महिलां येन तत्र गत्वा । आनयामि भूजबलेन पश्योत्कण्ठितः शीघ्रम् ॥२८॥
जाम्बूनदेन भणितो वत्स हनुमान् ! साधु भणितं त्वया । गन्तव्यमेव त्वया लङ्कानगरीं सुमनसा ॥२९॥
भणितं चेवमेतन्मारुतिना नास्त्यत्र संदेहः । तदा हर्षवशगतः पद्मः सीतायाः संदिशति ॥३०॥
मम वचनेन भण हनुमान् ! त्वं विरहकातरां सीताम् । यथा स तव वियोगे रामो न च निर्वृत्तिं लभते ॥३१॥
जानामि मम वियोगे म्रियसे त्वं नास्त्यत्र संदेहः । तथापि समागमहेतुः सुन्दरि ! जीवं धारय ॥३२॥
दूरेऽपि तन्न दूरे सज्जनहृदयानि यत्र मिलितानि । गगनस्थितोऽपि चन्द्र आश्वासयति कुमुदखण्डानि ॥३३॥
लोके भवति दुर्लभः समागमस्तथा च दुर्लभो धर्मः । ततश्च दुर्लभतरं समाधिमरणं जिनमते ॥३४॥
तस्माद्राक्षसद्वीपे मा करिष्यस्यत्र सुन्दरि ! कालम् । यावदागच्छाम्यहं वानरसहितस्तव सकाशम् ॥३५॥
एतत्प्रत्ययकरणं दर्शयाङ्गुलिकां नीत्वा । चूडामणिं च ममानय तस्याः सन्निहितम् ॥३६॥
यदाज्ञापयसि स्वामिन् ! भणित्वा मारुति र्नमति रामम् । लक्ष्मीधरमप्येवं शेषानपि भटान्समालपति ॥३७॥
भणित एव मारुतिना सुग्रीवो यावत्तत्र गत्वा । आगच्छामि तावत्त्वयाऽत्रैवासितव्यं तु ॥३८॥
एवं भणित्वा तदा स आरुढो मारुति र्वरविमानम् । उत्पतितो गगनतलं समकं निजकेन सैन्येन ॥३९॥
कृतेप्यन्यस्योपकारजाते कुर्वन्ति ये प्रत्युपकारयोगम् । न तेषु तूल्यो विमलोऽपि चन्द्रो नैव भानु र्न च देवराजा ॥४०॥

॥ इति पद्मचरित्रे हनुमत्प्रस्थानं नामैकोनपञ्चाशतमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. णाह !-प्रत्य० । २. नयरिं-प्रत्य० । ३. समयं चिय निययसेन्नेणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५०. महिन्ददुहियासमागमपव्वं

अह सो परोवयारी, पवणसुओ नहयलेण वच्चन्तो । पेच्छइ गिरिस्स उवरिं, महेन्दनयरे सुरपुराभं ॥१॥
तं दट्ठूण सुमरियं, वयणं जणणीए जं समक्खायं । विज्जाहरसामन्तो, वसइ महं अज्जओ एत्थं ॥२॥
जेण मए उयरत्थे, जणणी मे धाडिया महारण्णे । सीहभउव्विग्गमणा, पलियङ्कगुहाए मज्झम्मि ॥३॥
आसासिया य मुणिणा, तत्थ पसया वणम्मि एगागी । जाओ दइएण समं, समागमो कह वि पुण्णेणं ॥४॥
तस्सऽवराहस्स अहं, पडिदाणं देमि अज्ज निक्खुत्तं । विज्जाहरगव्वमिणं, फेडेमि महिन्दरायस्स ॥५॥
एत्थन्तरम्मि पहयं, तूरं पडुपडहसद्दगम्भीरं । सुहडा य समाढत्ता, ओत्थरिउं तं महानयरं ॥६॥
सोऊण परबलं सो समागयं निययसाहणसमग्गो । अह निग्गओ महिन्दो, नयराओ रोसपज्जलिओ ॥७॥
आवडिओ संगामो, हयगयपउराण उभयसेन्नाणं । असि-कणय-चक्क-तोमर-संघट्टुट्ठन्तसद्दालं ॥८॥
भग्गं महिन्दसेन्नं, दट्ठूण महिन्दराय[१]पुत्तो सो । दढचावगहियहत्थो, हणुवन्तं पाविओ सिग्घं ॥९॥
ताव च्चिय मारुइणा, तस्स धणू सुनिसिएसु बाणेसु । छिन्नं रहो य भग्गो, पसन्नकित्ती तओ गहिओ ॥१०॥
दट्ठूण सुयं गहियं, महिन्दराया समुट्ठिओ रुट्ठो । हणुएण समं जुज्झे, आवडिओ पहरणविहत्थो ॥११॥

५०. महेन्द्रदुहितृसमागमपर्वम्

अथ स परोपकारी पवनसुतो नभस्तलेन व्रजन् । पश्यति गिरेरुपरि महेन्द्रनगरीं सुरपुराभाम् ॥१॥
तददृष्ट्वा स्मृतं वचनं जनन्या यत्समाख्यातम् । विद्याधरसामन्तो वसति मम मातामहोऽत्र ॥२॥
येन मय्युदरस्थे जननी मम निस्सारिता महारण्ये । सींहभयोद्विग्नमना पर्यङ्कगुहाया मध्ये ॥३॥
आश्वासिता च मुनिना तत्र प्रसूता वन एकाकिनी । जातो दयितेन समं समागमः कथमपि पुण्यन ॥४॥
तस्यापराधस्याहं प्रतिदानं दद्म्यद्य निश्चितम् । विद्याधरगर्वमिदं स्फेटयामि महेन्द्रराजस्य ॥५॥
अत्रान्तरे प्रहतं तूर्यं पटुपटहशब्दगम्भीरम् । सुभटाश्च समारब्धा अवतरितुं तं महानगरम् ॥६॥
श्रुत्वा परबलं स समागतं निजसाधनसमग्रः । अथ निर्गतो महेन्द्रो नगराद्रोषप्रज्वलितः ॥७॥
आपतितः संग्रामो हयगजप्रचूराणामुभयसैन्यानाम् । असि-कनक-चक्र-तोमर-संघट्टोत्तिष्ठत्शब्दवान् ॥८॥
भग्नं महेन्द्रसैन्यं दृष्ट्वा महेन्द्रराजपुत्रः सः । दृढचापगृहीतहस्तो हनुमन्तं प्राप्तः शीघ्रम् ॥९॥
तावदेव मारुतिना तस्य धनुः सुनिशितै र्बाणैः । छिन्नं रथश्च भग्नः प्रसन्नकीर्त्तिस्ततो गृहीतः ॥१०॥
दृष्ट्वा सुतं गृहीतं महेन्द्रराजा समुत्थितो रुष्टः । हनुमता समं युद्धेआपतितः प्रहरणविहस्तः ॥११॥

१. रायतणओ सो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर-झसर-सत्ति-तोमर, महिन्दराया वि मुञ्चई रुट्ठो । हणुओ वि ते महप्पा, आउहनिवहे निवारेइ ॥१२॥

मायासहस्सकलयं, काऊण य दारुणं महाजुज्झं । गरुडेण विसहरो इव, तेण महिन्दो रणे गहिओ ॥१३॥

गहियस्स पवणपुत्तो, पडिओ मायामहस्स चलणेसु । भणइ य जं दुच्चरियं, तं मज्झ गुरू खमेज्जासु ॥१४॥

नाऊण य पडिभणिओ, वच्छय! साहु त्ति साहु बलविरियं । जाएण तुमे पुत्तय!, निययकुलं भूसियं सयलं ॥१५॥

तं खामिऊण हणुओ, नियये मायामहं परिकहेइ । सव्वं पउमागमणं, अप्पणयं गमणकज्जं च ॥१६॥

अहयं लङ्का[१] नयरी, अज्जय ! वच्चामि तुरियकज्जेणं । तं पुण किक्किन्धिपुरं, गच्छसु रामस्स पासम्मि ॥१७॥

एव भणिऊण तो सो, उप्पइओ नहयलं पवणपुत्तो । लङ्काहिमुहो वच्चइ, इन्दो अमरावइं चेव ॥१८॥

गन्तुं महिन्दकेऊ, सुएण समयं पसन्नकित्तीणं । पूएइ रामदेवं, बहुभडपरिवारिओ पयओ ॥१९॥

मायावित्तेहि समं, जाओ च्चिय अञ्जणाए संजोगो । पडुपडहतूरपउरो, तत्थेव कओ महाणन्दो ॥२०॥

दट्ठूण आगयं ते, तत्थ महिन्दं विराहियाईया । सुहडा परितुट्ठमणा, पुणो पसंसन्ति पउमाभं ॥२१॥

धम्मेण पुव्वस्सुकएण उत्तमा, सोक्खालया सव्वजणस्स वल्लहा ।
पावन्ति तुङ्गं विमलं जसं नरा, तम्हा सया होह सुसंजमुज्जया ॥२२॥

॥ इय पउमचरिए महिन्ददुहियासमागमविहाणं नाम पन्नासइमं पव्वं समत्तं ॥

शर-झसर-शक्ति-तोमर महिन्द्रराजाऽपि मुञ्चति रुष्टः । हनुमानपि तान्महात्माऽऽयुधनिवहान्निवारयति ॥१२॥

मायासहस्रकलितं कृत्वा च दारुणं महायुद्धम् । गरुडेन विषधर इव तेन महेन्द्रो रणे गृहीतः ॥१३॥

गृहीतस्य पवनपुत्रः पतितो मातामहस्य चरणयोः । भणति च यद् दुश्चरितं तन्मम गुरो ! क्षमध्वम् ॥१४॥

ज्ञात्वा च प्रतिभणितो वत्स ! साध्विति साधु बलवीर्यम् । जातेन त्वया पुत्र ! निजकुलं भूषितं सकलम् ॥१५॥

तं क्षमयित्वा हनुमन्निजकं मातामहं परिकथयति । सर्वं पद्मागमनमात्मानं गमनकार्यं च ॥१६॥

अहं लङ्कानगरीमार्यक [illegible]ामि त्वरितकार्येण । त्वं पुनः किष्किन्धिपुरं गच्छ रामस्य पार्श्वे ॥१७॥

एवं भणित्वा तदा स उत्पतितो नभस्तलं पवनपुत्रः । लङ्काभिमुखो गच्छतीन्द्रोऽमरावतीमिव ॥१८॥

गत्वा महेन्द्रकेतुः सुतेन समकं प्रसन्नकीर्त्तिना । पूजयति रामदेवं बहुभटपरिवारितः प्रयतः ॥१९॥

मातापितृभिः समं जात एवाऽञ्जनायाः संयोगः । पटूपटहतूर्यप्रचूरस्तत्रैव कृतो महानन्दः ॥२०॥

दृष्ट्वाऽऽगतं ते तत्र महेन्द्रं विराधितादयः । सुभटाः परितुष्टमनसः पुन प्रशंसन्ति पद्मनाभम् ॥२१॥

धर्मेण पूर्वसुकृतेनोत्तमाः सुखालयाः सर्वजनस्य वल्लभाः ।
प्राप्नुवन्ति तुङ्गं विमलं यशो नरास्तस्मात्सदा भवत सुसंयमोद्यताः ॥२२॥

॥ इति पद्मचरिते महेन्द्रदुहितृसमागमविधानं नाम पञ्चाशतमं पर्वं समाप्तम् ।

---

१. नयरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५१. राघवगंधव्वकन्नालाभपव्वं

अह तस्स नहयलेणं, वच्चन्तस्सऽन्तरे तओ जाओ। वररयणपज्जलन्तो, दीवो च्चिय दहिमुहो नामं ॥१॥
अह तम्मि पवरदीवे, अत्थि पुरं दहिमुहं ति नामेणं। भवणसहस्साइण्णं, काणण-वणमण्डिउद्देसं ॥२॥
तस्स पुरस्साऽऽसन्ने, नाणाविहरुक्खसंकडुद्देसे। हत्थावलम्बियभुयं, दिट्ठं हणुवेण मुणिजुयलं ॥३॥
कोसस्स चउब्भागे, मुणिवरवसभाण तिण्णि कन्नाओ। तप्पन्ति तवं घोरं, विज्जाए साहणट्ठम्मि ॥४॥
अह तं मुणिवरजुयलं, जोगत्थं वणदवग्गिडज्झन्तं। कन्नाहि समं दट्ठुं वच्छल्लं कुणइ हणुवन्तो ॥५॥
आयड्ढिऊण एत्तो, सायरसलिलं घणो व्व विज्जाए। वरिसइ मुणीण उवरिं, [1]मुसलपमाणासु धारासु ॥६॥
सो हुयवहो असेसो, अवहरिओ तेण सलिलपूरेणं। मुञ्चन्ति कुसुमवासं, देवा उवरिं मुणिवराणं ॥७॥
ताव च्चिय कन्नाओ, ताओ उवसग्गसिद्धविज्जाओ। मेरुं पदक्खिणेउं, साहुसयासं पुण गयाओ ॥८॥
नमिऊण मुणिवरिन्दे, झाणत्थे [2]मारुई पससन्ति। कन्नाउ साहु सुपुरिस !, तुज्झ दढा जिणवरे भत्ती ॥९॥
घोरुवसग्गो एसो, साहूण निवारिओ तुमे सिग्घं। डज्झन्तीणं रण्णे, अम्हाण वि जीवियं दिन्नं ॥१०॥
अह भणइ पवणपुत्तो, तुब्भे किं एत्थ अच्छह वणम्मि ?। साहेह मज्झ एत्तो, कम्मि पुरे ? कस्स दुहियाओ? ॥११॥

---

५१. राघवगांधर्वकन्यालाभपर्वम्

अथ तस्य नभस्तलेन व्रजतोऽन्तरे ततोजातः। वररत्नप्रज्वलद्द्वीप एव दधिमुखो नाम ॥१॥
अथ तस्मिन्प्रवरद्वीपेऽस्ति पुरं दधिमुखमिति नाम्ना। भवनसहस्राकीर्णं कानन-वनमण्डितोद्देशम् ॥२॥
तस्या पुरस्यासन्ने नानाविधवृक्षसंङ्कीर्णोद्देशे। हस्तावलम्बितभूजं दृष्टं हनुमता मुनियुगलम् ॥३॥
कोशस्य चतुर्भागे मुनिवरवृषभानां तिस्रः कन्याः। तप्यन्ति तपः घोरं विद्यायाः साधनार्थे ॥४॥
अथ तं मुनिवरयुगलं योगस्थं वनदवाग्निदहन्तम्। कन्याभिः समं दृष्ट्वा वात्सल्यं करोति हनुमान् ॥५॥
आकृष्येतः सागरसलिलं घन इव विद्यया। वर्षति मुनीनामुपरि·मूसलप्रमाणाभि र्धाराभिः ॥६॥
स हुतवहो ऽशेषोऽपहृतस्तेन सलिलपूरेण। मुञ्चन्ति कुसुमवर्षां देवा उपरि मुनिवराणाम् ॥७॥
तावदेव कन्यास्ता उपसर्गसिद्धविद्याः। मेरुं प्रदक्षिण्य साधुसकाशं पुन र्गताः ॥८॥
नत्वा मुनिवरेन्द्रौ ध्यानस्थौ मारुतिं प्रशंसन्ति। कन्याः साधु सत्पुरुष ! तव दृढा जिनवरे भक्तिः ॥९॥
घोरोपसर्ग एष साधूनां निवारितस्त्वया शीघ्रम्। दहन्तीनामरण्ये ऽस्माकमपि जीवितं दत्तम् ॥१०॥
अथ भणति पवनपुत्रो यूयं किमत्रास्ध्वे वने ?! कथयत ममेतः कस्मिन्पुरे ? कस्य दुहितरः ? ॥११॥

---

१. मुसलसमाणासु-प्रत्य०। २. मारुइं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्का भणइऽह अम्हे, दहिमुहनयराहिवस्स दुहियाओ । गन्धव्वस्स महाजस ! कन्नाओ तिण्णि वि जणीओ ॥१२॥
अहयं तु चन्दलेहा, बिइया विज्जुप्पभ त्ति नामेणं । इयरा तरङ्गमाला, अम्हे गोत्तस्स इट्ठाओ ॥१३॥
जावइया इह भवणे, हवन्ति केऽएत्थ खेयरकुमारा । अम्हं कएण सुपुरिस !, जाया अइदुक्खिया सव्वे ॥१४॥
अङ्गारओ त्ति नामं, अहियं अम्हेहि मग्गमाणो सो । अलहन्तो च्चिय जाओ, निययविरोहुज्जयमईओ ॥१५॥
अट्ठङ्गनिमित्तधरो, अम्हं पियरेण पुच्छिओ साहू । ठाणेसु केसु रमणा, दुहियाणं मज्झ होहिन्ति ? ॥१६॥
सो भणइ साहसगई, जो हणिही रणमुहे पुरिससीहो । सो होही भत्तारो, एयाणं तुज्झ दुहियाणं ॥१७॥
तत्तो पभूइ अम्हं, ताओ चिन्तेइ को इहं भुवणे । मारेइ साहसगई, पुरिसो वज्जाउहसमो वि ? ॥१८॥
मग्गन्तीहिं जओ सो, न य लद्धो साहसस्स हन्तारो । तत्तो साहिंसु इहं, रण्णे मणगामिणी विज्जा ॥१९॥
अह तेण विरुद्धेणं, अम्हं अङ्गारएण पावेणं । मुक्कं फुलिङ्गवरिसं, जेण वणं चेव पज्जलियं ॥२०॥
जा छम्मासेण पहू !, सिज्झइ मणगामिणी महाविज्जा । सा चेव लहु सिद्धा, अम्हं उवसग्गसहणेणं ॥२१॥
साहु महापुरिस ! तुमे, वेयावच्चे कए मुणिवराणं । अम्हे वि मोइयाओ, इमाउ जलणोवसग्गाओ ॥२२॥
कहियं च निरवसेसं, कज्जं पउमागमाइयं सव्वं । साहसगइस्स निहणं, निययं लङ्कापुरीगमणं ॥२३॥
परिमुणियकज्जनिहसो, गन्धव्वो आगओ तमुद्देसं । देवागमणसरिच्छं, कुणइ तओ सो महाणन्दं ॥२४॥

एका भणत्यथ वयं दधिमुखनगराधिपस्य दुहितरः । गन्धर्वस्य महायशः ! कन्यातिस्त्ररपि जन्यः ॥१२॥
अहं तु चन्द्रलेखा द्वितीया विद्युत्प्रभेति नाम्ना । इतरा तरङ्गमाला वयं गोत्रस्येष्टाः ॥१३॥
यावन्त इह भवने भवन्ति केऽत्र खेचरकुमाराः । अस्माकं कृतेन सत्पुरुष ! जाता अतिदुःखिताः सर्वे ॥१४॥
अङ्गारक इति नामाधिकमस्मान् मार्ग्यमाणः सः । अलभमानैव जातो निजविरोधोद्यतमतिः ॥१५॥
अष्टाङ्गनिमित्तधरोऽस्मत्पित्रा पृष्टः साधुः । स्थानेषु केषु रमणा दुहीतृणां मम भविष्यन्ति ? ॥१६॥
स भणति साहसगतिं यो हनिष्यति रणमुखे पुरुषसिंहः । स भविष्यति भर्त्ता एतासां तव दुहीतृणाम् ॥१७॥
ततः प्रभृत्यस्मत्तातश्चिन्तयति क इह भुवने । मारयति साहसगतिं पुरुषो वज्रायुधसमोऽपि ? ॥१८॥
मार्ग्यन्तीभि र्यतः स न च लब्धः साहसस्य हन्ता । ततः असाधयाम इहारण्ये मनोगामिनी विद्या ॥१९॥
अथ तेन विरुद्धेणास्माकमङ्गारकेन पापेन । मुक्ता स्फुलिंगवर्षा यया वनमेव प्रज्वलितम् ॥२०॥
या षण्मासेन प्रभो ! सिध्यति मनोगामिनी महाविद्या । सैव लघु सिद्धाऽस्माकमुपसर्गसहनेन ॥२१॥
साधु महापुरुष ! त्वया वैयावृत्ये कृते मुनिवराणाम् । वयमपि मोचिता अस्माज्ज्वलनोपसर्गात् ॥२२॥
कथितं च निरवशेषं कार्यं पद्मागमनादिकं सर्वम् । साहसगते र्निधनं निजकं लङ्कापुरिगमनम् ॥२३॥
परिमुणितकार्यनिकषो गान्धर्व आगतस्तमुद्देशम् । देवागमनसदृशं करोति ततः स महानन्दम् ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घेत्तूण य कन्नाओ, गन्धव्वो राघवं समल्लीणो । साहेइ कयपणामो, नियागमणकारणं सव्वं ॥२५॥

एयासु य अन्नासु य, सेविज्जन्तो य वरविभूईसु । पउमो सीयाए विणा, मन्नइ सुन्नं व तेल्लोक्कं ॥२६॥

अहो जणा ! सुकयफलेण सुन्दरा, रई सया हवइ विओगवज्जिया ।
तहा समाजयह जिणिन्दसासणे, सया सुहं विमलयरं निसेवह ॥२७॥

॥ इय पउमचरिए राघवगन्धव्वकन्नालाभविहाणं नाम एगपन्नासइमं पव्वं समत्तं ॥

गृहीत्वा च कन्याः गन्धर्वो राघवं समालीनः । कथयति कृतप्रणामो निजागमनकारणं सर्वम् ॥२५॥

एताभिश्चान्याभिश्च सेव्यमानश्च वरविभूतिभिः । पद्मः सीताया विना मन्यते शून्यमिव त्रैलोक्यम् ॥२६॥

अहो ! जनाः ! सुकृतफलेन सुन्दरा रतिः सदा भवति वियोगवर्जिता ।
तथा समाजयत जिनेन्द्रशासने सदा सुखं विमलतरं निषेवध्वम् ॥२७॥

॥ इति पद्मचरित्रे राघवगन्धर्वकन्यालाभविधानं नामैकपञ्चाशतं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५२. हणुवकण्णालाभलङ्काविहाणपव्वं

अह सो पवणाणन्दो, तिकूडसमुहो नहेण वच्चन्तो। पायारेण निरुद्धो, धणुसंठाणेण तुङ्गेणं ॥१॥
भणइऽह केण निरुद्धो, गइपसरो मह इमस्स सेन्नस्स ?। एयं मुणेह तुब्भे, जेण लहुं चेव नासेमि ॥२॥
पवणतणयस्स मन्ती, साहेइ महामइ त्ति नामेणं। मायाए रक्खसेहिं, कओ इमो तुङ्गपागारो ॥३॥
अह तस्स देइ दिट्ठी, पेच्छइ बहुकूडजन्तनियरोहं। दाढाविडम्बिओट्ठं, विउलं आसालियावयणं ॥४॥
भीमाहिफडावियडं, विमुक्कसुंकारविससमुज्जलियं। [१]पलयघणसरिसभूयं, समन्तओ घोरपायारं ॥५॥
सो वज्जकवयदेहो, हणुओ हन्तूण जन्तपायारं। आसालियाए वयणे, पइसरइ तओ गयाहत्थो ॥६॥
अह तीए फालिऊणं, कुच्छी नक्खेसु निग्गओ सिग्घं। सालं पुणो पुणो च्चिय, गयापहारेसु चुण्णेइ ॥७॥
तं घोरमहासद्दं, सुणिऊणाऽऽसालियाए विज्जाए। सयमेव सालरक्खो, वज्जमुहो उट्ठिओ रुट्ठो ॥८॥
दट्ठूण अभिमुहं तं, मारुइसुहडा वराउहसमग्गा। अह जुज्झिउं पयत्ता, समयं पडिवक्खसेन्नेणं ॥९॥
तं रणमुहं पयत्तं, अहवा किं जंपिएण बहुएणं ?। जह तक्खणम्मि जायं, नच्चन्तकबन्धपेच्छणयं ॥१०॥

---

५२. हनुमत्कन्यालाभलङ्काविधानपर्वम्

अथ स पवनानन्दस्त्रिकूटसंमुखो नभसा व्रजन्। प्राकारेण निरुद्धो धनुःसंस्थानेनोत्तुङ्गेन ॥१॥
भणत्यथ केन निरुद्धो गतिप्रसरो ममैतस्य सैन्यस्य ?। एवं मुणत यूयं येन लघ्वेव नश्यामि ॥२॥
पवनतनयस्य मन्त्री कथयति महामन्त्रीति नाम्ना। मायया राक्षसैः कृतोऽयमुत्तुङ्गप्राकारः ॥३॥
अथ तस्य ददाति दृष्टिं पश्यति बहुकूटयन्त्रनिजरोधम्। दंष्ट्राविडम्बितौष्ठं विपुलमाशालिकावदनम् ॥४॥
भीमाहिफटाविकटं विमुक्तसुंकारविषसमुज्ज्वलितम्। प्रलयघनसदृशभूतं समन्ततः घोरप्राकारम् ॥५॥
स वज्रकवचदेहो हनुमान्हत्वा यन्त्रप्राकारम्। आशालिकाया वदने प्रविशति ततो गदाहस्तः ॥६॥
अथ तस्याः पाटयित्वा कुक्षिं नखै निर्गतः शीघ्रम्। शालं पुनः पुनरेव गदाप्रहारैः पिनष्टि ॥७॥
तत्घोरमहाशब्दं श्रुत्वाऽऽसालिकाया विद्यायाः। स्वयमेव शालरक्षको वज्रमुख उत्थितो रुष्टः ॥८॥
दृष्ट्वाऽभिमुखं तं मारुतिं सुभटा वरायुधसमग्राः। अथ योद्धुं प्रवृत्ताः समकं प्रतिपक्षसैन्येन ॥९॥
तं रणमुखं प्रवृत्तमथवा किं जल्पितेन बहुना ?। यथा तत्क्षणे जातं नृत्यत्कबन्ध-प्रेक्षणकम् ॥१०॥
एतादृशे युद्धे वर्तमाने सुनिशितेन चक्रेण। छिन्नं शिरश्च सहसा मारुतिना वज्रवदनस्य ॥११॥

---

१. पलयघणस्स व सरिसं समन्तओ-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयारिसम्मि जुज्झे, वट्टन्ते सुणिसिएण चक्केणं । छिन्नं सिरं च सहसा, मारुइणा वज्जवयणस्स ॥११॥

दट्ठूण पिइवहं सा, अह लङ्कासुन्दरी ससोगमणा । कोवं समुव्वहन्ती, समुट्ठिया रहवरारूढा ॥१२॥

ठा-ठाहि सवडहुत्तो, मह पियरं मारिऊण हणुव ! तुमं । जेण सरघायभिन्नं, पेसेमि जमालयं सिग्घं ॥१३॥

सा जाव मुञ्चइ सरे, मारुइणा ताव धणुवरं छिन्नं । पेसेइ तओ सत्ती, सा वि य बाणेसु पडिरुद्धा ॥१४॥

विज्जाबलसन्निहिया, मोग्गर-सर-झसर-भिण्डमालाइं ।
मुञ्चइ सिरिसेलोवरि, रुसिया विज्जु व्व चलहत्था ॥१५॥

अह तं आउहनिवहं, हणुओ छेत्तूण नियबाणेहिं । पेच्छइ सिरिसमरूवं, अह [१] लङ्कासुन्दरी समरे ॥१६॥

आयण्णपूरिएहिं, कडक्खदिट्ठीवियारनिसएहिं । तह इयरेहि न भिन्नो, अहयं जह मयणबाणेहिं ॥१७॥

समरे वरं खु मरणं, एत्थं चिय सरसहस्सभिन्नस्स । न य सुरलोगे वि महं, जीयं तु इमाए रहियस्स ॥१८॥

एवमणस्स य तो सा, मयणेण व चोइया पलोयन्ती । हणुयं सुन्दररूवं, सहसा आयल्लयं पत्ता ॥१०॥

चिन्तेइ जइ इमेणं, समयं भोगे न भुञ्जिमो एत्थं । तत्तो दूरेण महं, इहलोगो निप्फलो होइ ॥२०॥

पप्फुल्लकमलवयणा, तं लङ्कासुन्दरी भणइ एत्तो । देवेसु वि न जिया हं, तुमेव परिणिज्जिया सामि ! ॥२१॥

एत्तो समागया सा, हणुवेण निवेसिया निए अङ्के । कुसुमाउहेण व रई, धणियं अवगूहिया बाला ॥२२॥

कुव्वन्ति समुल्लावं, दोण्णि वि घणपीइसंपउत्ताइं । दिवसावसाणसमए, ताव य अत्थं गओ सूरो ॥२३॥

दृष्ट्वा पितृवधं साथ लङ्कासुन्दरी सशोकमना । कोपं समुद्वहन्ती समुत्थिता रथवरारुढा ॥१२॥

ति-तिष्ठाभिमुखो मम पितरं मारयित्वा हनुमांस्त्वम् । येन शरघातभिन्नं प्रेषयामि यमालयं शीघ्रम् ॥१३॥

सा यावन्मुञ्चति शरान्मारुतिना तावद्धनुवरं छिन्नम् । प्रेषयति ततः शक्तिः सापि च बाणैः प्रतिरुद्धा ॥१४॥

विद्याबलसन्निहिता मुद्गर-शर-झसर-भिण्डीमालादीन् । मुञ्चति श्रीशैलोपरि रुष्टा विद्युदिव चपलहस्ता ॥१५॥

अथ तदायुधनिवहं हनुमांश्छित्त्वा निजबाणैः । पश्यति श्रीसमरुपामथ लङ्कासुन्दरीं समरे ॥१६॥

आकर्णपूरितैः कटाक्षदृष्टिविकारनिशितैः । तथेतरै र्न भिन्नोऽहं यथा मदनबाणैः ॥१७॥

समरे वरं खलु मरणमत्रैव शरसहस्रभिन्नस्य । न च सुरलोकेऽपि मम जीवं तु अस्या रहितस्य ॥१८॥

एवंमनसं च तदा सा मदनेनैव चोदिता प्रलोकयन्ती । हनुमन्तं सुन्दररुपं सहसाऽऽकुलतां प्राप्ता ॥१९॥

चिन्तयति यद्यनेन समकं भोगान्न भुञ्जाम्यत्र । ततो दूरेण ममेहलोको निष्फलो भवति ॥२७॥

प्रफुल्लकमलवदना तं लङ्कासुन्दरी भणतीतः । देवैरपि न जिताहं त्वयैव परिणिर्जिता स्वामिन् ! ॥२१॥

हतः समागता सा हनुमता निवेशिता निजाङ्के । कुसुमायुधेनेव रतिरत्यन्तमालिङ्गिता बाला ॥२२॥

कुर्वतः समुल्लापं द्वावपि घनप्रीतिसंप्रयुक्तौ । दिवसावसानसमये तावच्चास्तं गतः सूर्यः ॥२३॥

---

१. लङ्कासुन्दरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्तो गयणुद्देसे, विज्जाए थम्भिया घणाईया । नयरं च कयं विउलं, सुरपुरिसिसं मणभिरामं ॥२४॥
वसिऊण तत्थ रत्तिं, बलेण समयं पहायसमयम्मि । पवणतणओ पयट्टो, तं [1]लङ्कासुन्दरी भणइ ॥२५॥
सुण सुन्दरि ! संखेवं, सीया रामस्स अवहिया रण्णे । संपेसिओ य सिग्घं, निययपुरं रक्खसिन्दाणं ॥२६॥
सुग्गीवस्स किसोयरि !, पउमेण कए तओ य उवयारे । पडिउवयारनिमित्ते, एत्तो वच्चामि लङ्का हं ॥२७॥
कहिऊण य तं सव्वं, तीए समं पत्थिओ पवणपुत्तो । चण्डाणिलसरिसजवो, तिकूडसिहरामुहो सिग्घं ॥२८॥

एवं इमं तु पेच्छह कम्मविचित्तयाए, सयलजसं उवेइ पियसंगमभत्ताए ।
लङ्कासुन्दरीए हणुवस्स विरोहाए, ववहरियं सिणेहविमलरइविचित्ताए ॥२९॥

॥ इय पउमचरिए हणुवकन्नालाभलङ्काविहाणं नाम बावन्नं पव्वं समत्तं ॥

ततो गगनोद्देशे विद्यया स्तम्भिता घनादिकाः । नगरं च कृतं विपुलं सुरपुरुषसदृशं मनोभिरामम् ॥२४॥
उषित्वा तत्र रात्रिं बलेन समकं प्रभातसमये । पवनतनयः प्रवृत्तस्तां लङ्कासुन्दरीं भणति ॥२५॥
श्रुणु सुन्दरि ! संक्षेपं सीता रामस्यापहृताऽऽरण्ये । संप्रेषितश्चशीघ्रं निजपुरं राक्षनरेन्द्राणाम् ॥२६॥
सुग्रीवस्य कृशोदरि ! पद्मेन कृते ततश्चोपकारे । प्रत्युपकारनिमित्तमितो गच्छामि लङ्कामहम् ॥२७॥
कथयित्वा च तत्सर्वं तस्या समं प्रस्थितः पवनपुत्रः । चण्डानिलसदृशजवस्त्रिकूटशिखराभिमुखः शीघ्रम् ॥२८॥
एवमिदं तु पश्यत कर्मविचित्रताया सकलयश उपैति प्रियसंगमभक्तायाः ।
लङ्कासुन्दर्या हनुमतो विरोधाया व्यवहृतं स्नेहविमलरतिविचित्रतायाः ॥२९॥

॥ इति पद्मचरित्रे हनुमत्कन्यालाभलङ्काविधानं नाम द्विपञ्चाशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. लङ्कासुन्दरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५३. हणुवलङ्कानिगगमणपव्वं

एत्तो मगहाहिवई !, हणुओ लङ्कापुरिं समणुपत्तो । पविसइ बिभीसणहरं, दारत्थं चेव एगागी ॥१॥
दिट्ठो बिभीसणेणं, हणुओ संभासिओ निविट्ठो य । काऊण समुल्लावं, भणइ तओ कारणं नियमं ॥२॥
मह वयणेण बिभीसण, लङ्कापरमेसरं भणसु एवं । जह परमहिलासङ्गो, पविरुद्धो उभयलोगम्मि ॥३॥
मज्जायाण नरिन्दो, मूलं सरियाण पव्वओ हवइ । तम्मि अणायारत्थे, अहियं तु पवत्तए लोगो ॥४॥
ससि-सङ्ख-कुन्दधवलो, तुज्झ जसो भमइ तिहुयणे सयले । मा होउ कज्जलनिभो[१], एत्तो परनारिसङ्गेणं ॥५॥
सुय-दार-सयणसहिओ, भुञ्जसु रज्जं सुरिन्दसमविभवो । एव भणिऊण दहमुह !, [२]सीया रामस्स अप्पेहि ॥६॥
सुणिऊण वयणमेयं, बिभीसणो भणइ सो मए पढमं । वुत्तो नेच्छइ तत्तो, पभूइ न य देइ उल्लावं ॥७॥
तह वि य वयणेण तुमं, लङ्कापरमेसरं भणसि गन्तुं । सो माणगव्वियमई, मारुइ ! गाहं न छड्डेइ ॥८॥
सुणिऊण वयणमेयं, पउमुज्जाणं गओ पवणपुत्तो । नाणाविहतरुछन्नं, अइरम्मं नन्दणं चेव ॥९॥
तत्थ पविट्ठो पेच्छइ, सीयं निद्धूमजलणसंकासं । वामकरदरियवयणं, विमुक्ककेसी पगलियंसू ॥१०॥
गन्तूण निहुयचलणो, हणुओ तं अङ्गुलीययं सिग्घं । सीयाए मुयइ अङ्के, संभमहियओ कयपणामो ॥११॥

---

५३. हनुमल्लङ्कानिर्गमनपर्वम् ।

इतो मगधाधिपते ! हनुमान् लङ्कापुरिं समनुप्राप्तः । प्रविशति बिभीषणगृहं द्वारस्थमेवेकाकी ॥१॥
दृष्टो बिभीषणेन हनुमान्सम्भाषितो निर्विष्टश्च । कृत्वा समुल्लापं भणति ततः कारणं निजम् ॥२॥
मम वचनेन बिभीषण ! लङ्कापरमेश्वरं भणैवम् । यथा परमहिलासङ्गः प्रविरुद्ध उभयलोके ॥३॥
मर्यादानां नरेन्द्रो मूलं सरितां पर्वतो भवति । तस्मिन्ननाचारार्थेऽधिकं तु प्रवर्तते लोकः ॥४॥
शशि-शङ्ख-कुन्दधवलस्तव यशो भ्रमति त्रिभुवने सकले । मा भवतु कज्जलनिभ इतः परनारीसङ्गेन ॥५॥
सुत-दार-स्वजन सहितो भुङ्क्ष्व राज्यं सुरेन्द्रसमविभवः । एवं भणित्वा दशमुख ! सीतां रामायार्पय ॥६॥
श्रुत्वा वचनमेतद्बिभीषणो भणति स मया प्रथमम् । उक्तो नेच्छति ततः प्रभूति न च ददात्युल्लापम् ॥७॥
तथापि च वचनेन त्वं लङ्कापरमेश्वरं भण गत्वा । स मानगर्वितमतिर्मारुते ! ग्राहं न त्मुञ्चति ॥८॥
श्रुत्वा वचनमेतत्पद्मोद्यानं गतः पवनपुत्रः । नानाविधतरुच्छन्नमतिरम्यं नन्दनमिव ॥९॥
तत्र प्रविष्टः पश्यति सीतां निर्धूमज्वलनसंकाशाम् । वामकरधृतवदनां विमुक्तकेशीं प्रगलिताश्रुम् ॥१०॥
गत्वा निधूतचरणो हनुमांस्तदङ्गुलियकं शीघ्रम् । सीताया मुञ्चत्यङ्के संभ्रमहृदयः कृतप्रणामः ॥११॥

---

१. निभो, दहमुहो ! रामस्स-प्रत्य० । २. सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं गेण्हिऊण सीया, हरिसवसुब्भिन्नदेहरोमञ्चा । हणुवस्स उत्तरिज्जं, परितुट्ठा सरयणं देइ ॥१२॥
अहियं पसन्नवयणं, सीयं सुणिऊण आगया सिग्घं । मन्दोयरी सहीहिं, परिकिण्णा तं वरुज्जाणं ॥१३॥
तो भणइ अग्गमहिसी, अम्ह कओऽणुग्गहो तुमे परमो । बाले ! भयसु दहमुहं, विमुक्कसोगा सुइरकालं ॥१४॥
कुविया जंपइ सीया, खेयरि ! दइयस्स आगया वत्ता । संपइ परितुट्ठमणा, तेणं चिय पुलइयङ्गी हं ॥१५॥
सुणिऊण वयणमेयं, मयधूया विम्हयं परं पत्ता । एत्तो विमुक्कसङ्का, परिपुच्छइ मारुइं सीया ॥१६॥
सो एव भणियमेत्तो, हणुवो वरकडय-कुण्डलाहरणो । साहेइ कुलं निययं, पियरं जणणिं च नामं च ॥१७॥
पवणंजयस्स पुत्तो, उयरे च्चिय अञ्जणाए संभूओ । सुग्गीवस्स य भिच्चो, अहयं हणुओ त्ति नामेणं ॥१८॥

भणइ तओ पवणसुओ, पउमो तुह विरहकायरुव्विग्गो ।
खणमवि न उवेइ धिइं, सविभव-सयणा-ऽऽसणे भवणे ॥१९॥

न सुणइ गन्धव्वकहं, न य अन्नं कुणइ चेव उल्लावं । नवरं चिन्तेइ तुमं, मुणि व्व जोगट्ठिओ सिद्धिं ॥२०॥
सुणिऊण वयणमेयं, बाहविमुञ्चन्तबिन्दुनयणजुया । सीया सोगवसगया, पुणरवि परिपुच्छए वत्तं ॥२१॥
कत्थ पएसे सुन्दर !, दिट्ठो ते लक्खणेण सह पउमो ! । निरुवहअङ्गोवङ्गो ?, किं व महासोगसन्निहिओ ? ॥२२॥
विज्जाहरेहि किं वा, विवाइए लक्खणे य सोगत्तो । मोत्तूण मज्झ तत्तिं, किं दिक्खं चेव वडिवन्नो ? ॥२३॥
अह वा किं मह विरहे, सिढिलीभूयस्स वियलिओ रण्णे । लद्धो भद्द ! तुमे किं, अह अङ्गुलिमुद्दओ एसो ? ॥२४॥

तद्गृहीत्वा सीता हर्षवशोद्भिन्नदेहरोमाञ्चा । हनुमत उत्तरियं परितुष्टा स्मरणं ददाति ॥१२॥
अधिकं प्रसन्नवदनां सीतां श्रुत्वाऽऽगता शीघ्रम् । मन्दोदरी सखिभिः परिकीर्णा तं वरोद्यानम् ॥१३॥
तदा भणत्यग्रमहिष्यस्मासु कृतोऽनुग्रहस्त्वया परमः । बाले ! भज दशमुखं विमुक्तशोका सुचिरकालम् ॥१४॥
कुपिता जल्पति सीता खेचरि ! दयितस्यागता वार्ता । संप्रति परितुष्टमना तेनैव पुलकिताङ्ग्यहम् ॥१५॥
श्रुत्वा वचनमेतन्मयदुहिता विस्मयं परं प्राप्ता । इतो विमुक्तशङ्का परिपृच्छति मारुतिं सीता ॥१६॥
स एवं भणितमात्रो हनुमान्वरकटक-कुण्डलाभरणः । कथयति कुलं निजं पितरं जननीं च नाम च ॥१७॥
पवनञ्जयस्य पुत्र उदर एवाञ्जनायाः संभूतः । सुग्रीवस्य च भृत्योऽहं हनुमानेति नाम्ना ॥१८॥
भणति ततः पवनसुतः पद्मस्तवविरहकातरोद्विग्नः । क्षणमपि नोपैति धृतिं सवैभवशयनाऽऽसने भवने ॥१९॥
न श्रुणोति गन्धर्वकथां न चान्यत्करोत्येवोल्लापम् । नवरं चिन्तयति त्वां मुनिरिव योगस्थितः सिद्धिम् ॥२०॥
श्रुत्वा वचनमेतद्बाष्पविमुञ्चद्बिन्दुनयनयुता । सीता शोकवशगता पुनरपि परिपृच्छति वार्ताम् ॥२१॥
कुत्र प्रदेशे सुन्दर दृष्टस्त्वया लक्ष्मणेन सह पद्मः । निरुपहताङ्गोपाङ्गः ? किं वा महाशोकसन्निहितः ? ॥२२॥
विद्याधरैः किं वा विपादिते लक्ष्मणे च शोकार्तः । मुक्त्वा मम चिंतां किं दिक्षामेव प्रतिपन्नः ॥२३॥
अथवा किं मम विरहे शिथीलीभूतस्य विगलितोऽरण्ये । लब्धो भद्र ? त्वया किमथाङ्गुलिमुद्रक एषः ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कह तुज्झ तेण समयं, परिणाई तक्खणेण उप्पन्नो ? । लङ्केऊण [१] जलनिही, कह कारणवज्जिओ आओ ? ॥२५॥
एयं कहेहि सुन्दर, सवित्थरं सच्चसाविओ तुहयं । इच्छामि अहं सोउं, मा विक्खेवं कुणसु एत्तो ॥२६॥
भणइ तओ हणुमन्तो, सामिणि ! निसुणेहि अत्थ आरण्णे । लच्छीहरेण गहिओ, रविहासो असिवरो एत्तो ॥२७॥
तं लक्खणेण वहियं, चन्दणहा पेच्छिऊण नियसुयं । रोसेइ दइययं सा, देइ य वत्तं दहमुहस्स ॥२८॥
जाव य रक्खसणाहो, आगच्छइ ताव दूसणो पत्तो । संगामसमावन्नो, जुज्झइ लच्छीहरेण समं ॥२९॥
ताव य लङ्काहिवई, तुरिओ य समागओ तमुद्देसं । नवरं दट्ठूण तुमं, पत्तो आयल्लयं परमं ॥३०॥
मुञ्चइ सीहरवं सो, सुणिऊणं जाव राहवो पत्तो । वच्चइ संगाममुहं, ताव तुमं अवहिया तेणं ॥३१॥
दिट्ठो य लक्खणेणं, सिग्घं संपेसिओ तुह सयासं । पडियागओ न पेच्छइ, ताहे ओमुच्छिओ रामो ॥३२॥
आसत्थो तुज्झ कए, परिहिण्डन्तो य पेच्छइ [२] जडागी । पञ्चनमोक्कारमिणं, देइ मरन्तस्स पउमाभो ॥३३॥
लच्छीहरो वि एत्तो, हन्तुं खरदूसणं तमुद्देसं । संपत्थिओ य पेच्छइ, [३] तुमए रहियं पउमनाहं ॥३४॥
सुग्गीवेण समाणं, समागओ आगओ य किक्किन्धिं । मारेइ साहसगइं, रामो कइरूवदेहधरं ॥३५॥
तस्सुवयारस्स फुडं, वत्ताए रयणकेसिसिट्ठाए । पडिउवयारनिमित्तं, गुरूहि संपेसिओ अहयं ॥३६॥
पीईए रक्खसिन्दं, मोएमि तुमं न चेव कलहेणं । अवसेण कज्जसिद्धी, हवइ नयं ववहरन्ताणं ॥३७॥

कथं तव तेन समकं परिज्ञानं तत्क्षणेनोत्पन्नम् । लङ्घयित्वा जलनिधिं कथं कारणवर्जित आगतः ॥२५॥
एवं कथय सुन्दर ! सविस्तरं सत्यश्रावकस्त्वम् । इच्छाम्यहं श्रोतुं मा विक्षेपं कुर्वितः ॥२६॥
भणति ततो हनुमान्स्वामिनि ! निश्रुणु तत्रारण्ये । लक्ष्मीधरेण गृहीतो रविहासोऽसिवर इतः ॥२७॥
तं लक्ष्मणेन हतं चन्द्रनखा दृष्ट्वा निजसुतम् । रुष्यति दयितं सा ददाति च वृत्तं दशमुखाय ॥२८॥
यावच्च राक्षसनाथ आगच्छति तावद्दुषणःप्राप्तः । संग्रामसमापन्नो युध्यति लक्ष्मीधरेण समम् ॥२९॥
तावच्च लङ्काधिपतिस्त्वरितश्च समागतस्तमुद्देशम् । नवरं दृष्ट्वा त्वां प्राप्त आतुरतां परमाम् ॥३०॥
मुञ्चति सिंहरवं स श्रुत्वा यावद्राघवः प्राप्तः । व्रजति संग्राममुखं तावत्त्वमपहृता तेन ॥३१॥
दृष्टश्च लक्ष्मणेन शीघ्रं संप्रेषितस्तव सकाशम् । प्रत्यागतो न पश्यति तदाऽवमूर्च्छितो रामः ॥३२॥
आश्वस्तस्तव कृते परिहिण्डमाणश्च पश्यति जटायुम् । पञ्चनमस्कारस्मै ददाति म्रियमाणाय पद्मनाभः ॥३३॥
लक्ष्मीधरोऽपीप्तो हत्वा खरदूषणं तमुद्देशम् । संप्रस्थितश्च पश्यति त्वया रहितं पद्मनाभम् ॥३४॥
सुग्रीवेण समानं समागत आगतश्च किष्किन्धिम् । मारयति साहसगतिं रामः कपिरुपदेहधरम् ॥३५॥
तस्योपकारस्य स्फुटं वार्तया रत्नकेशिशिष्टया । प्रत्युपकारनिमित्तं गुरुभिः संप्रेषितोऽहम् ॥३६॥
प्रीत्या राक्षसेन्द्रान्मोचयामिनत्वां नैव कलहेन । अवशेन कार्यसिद्धिर्भवति नयं व्यवहृताम् ॥३७॥

---

१. जलनिहिं-प्रत्य० । २. जडागिं-प्रत्य० । ३. तुमे विमुक्कं पउमनाहं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो विज्जाहरसामी, धीरो कारुण्ण-सच्चवाई य । धम्मत्थविवेयन्नू, अवस्स मह काहिई वयणं ॥३८॥
उत्तमकुलसंभूओ, उत्तमचरिएहि उत्तमो लोए । अववायपरिब्भीओ, नियमेण तुमं समप्पिहिइ ॥३९॥
सुणिऊण य परितुट्ठा, एयं चिय जणयनन्दिणी भणइ । हणुवन्त ! तुमे तुल्ला, केत्तियसुहडा मह पियस्स ॥४०॥
एत्थन्तरे पवुत्ता, वयणं मन्दोयरी सुणसु बाले ! । न य अत्थि वाणराणं, इमेण सरिसो महासुहडो ॥४१॥
जेण दसाणणपुरओ, वरुणेण समं कयं महाजुज्झं । लद्धा अणङ्गकुसुमा, चन्दणहानन्दिणी तइया ॥४२॥
सयले वि जीवलोए, विक्खाओ वाणरद्धओ हणुओ । खिइगोयरेहि नीओ, दूयत्ते एरिसगुणो वि ॥४३॥
पडिभणइ तत्थ हणुओ, मन्दोयरि ! किं न याणसि मुद्धे ! । होयव्वं चेव सया, नरेण उवयारपरमेणं ? ॥४४॥
मन्दोयरि ! गव्वमिणं, निस्सारं वहसि नियसोहग्गं । होऊण अग्गमहिसी, दूइत्तं कुणसि कन्तस्स ॥४५॥
दूयत्तणमल्लीणं, सीयाए कारणागयं एत्थ । जइ जाणइ दहवयणो, तो ते पाणेहि ववहरइ ॥४६॥
मोत्तूण रावणं जे, पडिवन्ना राहवस्स भिच्च त्तं । ते मच्चुगोयरपहे, अहिट्ठिया वाणरा सव्वे ॥४७॥
मन्दोयरीए वयणं, एयं सुणिऊण भणइ वइदेही । किं निन्दसि मह दइयं, खेयरि ! जगविस्सुयं पउमं ? ॥४८॥
वज्जावत्तधणुवरं, सुणिऊणं जस्स रणमुहे सुहडा । निस्सेसविगयदप्पा, भयजरगहिया य कम्पन्ति ॥४९॥
मेरु व्व धीरगरुओ, जस्स उ लच्छीहरो हवइ भाया । सो चेव समत्थो वि हु, रिऊण पक्खक्खयं काउं ॥५०॥
किं जंपिएण बहुणा ?, संपइ रयणायरं समुत्तरिउं । एही मह भत्तारो, सहिओ च्चिय वाणरबलेणं ॥५१॥

स विद्याधरस्वामी धीरः कारुण्य-सत्यवादी च । धर्मार्थविवेकज्ञऽवश्यं मम करिष्यति वचनम् ॥३८॥
उत्तमकुलसंभूत उत्तमचरित्रैरुत्तमोलोके । अपवादपरिभीतो नियमेन त्वां समर्पयिष्यति ॥३९॥
श्रुत्वा च परितुष्टा एवमेव जनकनन्दिनी भवति । हनुमान्! तव तुल्याः कतिपयसुभटा मम प्रियस्य ॥४०॥
अत्रान्तरे प्रोक्ता वचनं मन्दोदरी श्रुणु बाले । नचास्ति वानराणामनेन सदृशो महासुभटः ॥४१॥
येन दशाननपुरतो वरुणेन समं कृतं महायुद्धम् । लब्धानङ्गकुसुमा चन्द्रनखानन्दिनी तदा ॥४२॥
सकलेऽपि जीवलोके विख्यातो वानरध्वजो हनुमान् । क्षितिगोचरै र्नीतो दूतत्व एतादृशगुणोऽपि ॥४३॥
प्रतिभणति तत्र हनुमान्मन्दोदरि किं न जानासि मुग्धे ! । भवितव्यमेव सदा नरेणोपकारपरमेण ? ॥४४॥
मन्दोदरि! गर्वमिदं निःसारं वहसि निजसौभाग्ये । भूत्वाऽग्रमहिषी दूतित्वं करोषि कान्तस्य ॥४५॥
दूतत्त्वमालीनं सीतायाः कारणगतमत्र । यदि जानाति दशवदनस्तदा तव प्राणै र्व्यवहरति ॥४६॥
मुक्त्वा रावणं ये प्रतिपन्ना राघवस्य भृत्यत्वम् । ते मृत्युगोचरपथेऽधिष्ठिता वानराः सर्वे ॥४७॥
मन्दोदर्या वचनमेतच्छ्रुत्वा भणति वेदैही । किं निन्दसि मम दयितं खेचरि! जगद्विश्रुतं पद्मम् ? ॥४८॥
वज्रावर्तधनुवरं श्रुत्वा यस्य रणमुखे सुभटाः । निःशेषविगतदर्पा भयज्वरगृहीता च कम्पन्ते ॥४९॥
मेरुरिव धीरगुरुको यस्य तु लक्ष्मीधरो भवति भ्राता । स एव समर्थोऽपि खलु रिपूणां पक्षक्षयं कर्तुम् ॥५०॥
किं जल्पितेन बहुना संप्रति रत्नाकरं समुत्तीर्य । एष्यति मम भर्त्ता सहित एव वानरबलेन ॥५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पेच्छामि तुज्झ कन्तं, संगामे कइवएसु दियहेसु । मह नाहेण विणिहयं, रामेण अकिट्ठधम्मेणं ॥५२॥

सुणिऊण अकण्णसुहं, वयणं मन्दोयरी तओ रुट्ठा । जुवइसहस्सपरिमिया, आढत्ता पहणिउं [१] सीया ॥५३॥

दुव्वयणकरयलेहिं, जाव य तं उज्जया उ हन्तुं जे । हणुओ मज्झम्मि ठिओ, ताणं तुङ्गो व्व सरियाणं ॥५४॥

निब्भच्छियाउ ताओ, समयं मन्दोयरीए गन्तूणं । हणुयं साहेन्ति फुडं, समागयं रक्खसवइस्स ॥५५॥

अह मारुईण सीया, विन्नविया पारणं कुणसु एत्तो । संपुण्णा य पइन्ना, जा आसि कया तुमे पुव्वं ॥५६॥

अह निच्छिए य सिग्घं, सिबिराओ आणिओ वराहारो । हणुयकुलबालियाहिं, ताव च्चिय उग्गओ सूरो ॥५७॥

सीयाए पवणपुत्तो, एत्तो अणुमन्निओ सह भडेहिं । जिमिओ य वराहारं, ताव मुहुत्ता गया तिण्णि ॥५८॥

सम्मज्जिओवलित्ता, हियए काऊण राघवं सीया । भुञ्जइ परमाहारं, नाणाविहरससमाउत्तं ॥५९॥

निव्वत्तभोयणविही, विन्नविया मारुईण जणयसुया । आरुहसु मज्झ खन्धे, नेमि तहिं जत्थ तुह दइओ ॥६०॥

सीया भणइ रुयन्ती, न य जुत्तं मज्झ ववसिउं एयं । परपुरिसअङ्गफरिसं, किं पुण खन्धम्मि आरुहणं ? ॥६१॥

परपुरिसविलग्गा हं, मणसा वि न चेव तत्थ वच्चामि । मरणं व होउ इहइं, नेही रामो व आगन्तुं ॥६२॥

जाव च्चिय दहवयणो, न कुणइ तुह इह उवद्दवं किंचि । ताव अविग्घेण लहुं, मारुइ ! वच्चाहि किक्किन्धिं ॥६३॥

मह वयणेण भणेज्जसु, हणुव ! तुमं राघवं पणमिऊणं । साहिन्नाणेसु पुणो, इमेसु वयणेसु वीसत्थो ॥६४॥

पश्यामि तव कान्तं संग्रामे कतिपयै दिवसैः । मम नाथेन विनिहतं रामेणाकृष्टधर्मेण ॥५२॥

श्रुत्वाऽकर्णसुखं वचनं मन्दोदरी ततो रुष्टा । युवतिसहस्रपरिमिताऽऽरब्धा प्रहन्तुं सीताम् ॥५३॥

दुर्वचनकरतलैर्यावच्च तामुद्यता तु हन्तुं ये । हनुम्नामध्ये स्थितस्तासामुत्तुङ्ग इव सरिताम् ॥५४॥

निर्भर्त्सितास्ताः समकं मन्दोदर्या गत्वा । हनुमन्तं कथयति स्फुटं समागतं राक्षसपतेः ॥५५॥

अथ मारुतिना सीता विज्ञापिता पारणं कुर्वितः । संपूर्णा च प्रतिज्ञा याऽऽसीत्कृता त्वया पूर्वम् ॥५६॥

अथ निश्चिते च शीघ्रं शिबिरादानीतो वराहारः । हनुमत्कुलबालिकाभिस्तावदेवोद्गतः सूर्यः॥५७॥

सीतया पवनपुत्र इतोऽनुमतः सहभटैः । जिमितश्च वराहारं तावन्मुर्हूतानि गतानि त्रिणि ॥५८॥

संमर्जितोपलिप्ता हृदये कृत्वा राघवं सीता । भुञ्जते परमाहारं नानाविधरससमायुक्तम् ॥५९॥

निर्वृत्तभोजनविधि विज्ञापिता मारुतिना जनकसुता । आरुह मम स्कन्धे नयामि यत्र तव दयितः ॥६०॥

सीता भणति रुदन्ती न च युक्तं मम व्यवसितुमेतत् । परपुरुषाङ्गस्पर्शं किं पुनः स्कन्धमारोहणम् ॥६१॥

परपुरुषविलग्नाऽहं मनसाऽपि नैव तत्र व्रजामि । मरणं वा भवत्वत्र नेष्यति रामो वाऽऽगत्य ॥६२॥

यावदेव दशवदनो न करोति तवेहोपद्रवं किञ्चितम् । तावदविघ्नेन लघु मारुते ! गच्छ किष्किन्धिम् ॥६३॥

मम वचनेन भण हनुमान् ! त्वं राघवं प्रणम्य । सन्निधानैः पुनरिमै र्वचनै विश्वस्तः ॥६४॥

---

१. सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थुद्देसम्मि मए, चारणसमणा महन्तगुणकलिया । परिवन्दिया तुमे वि य, तिव्वेणं भत्तिराएणं ॥६५॥
विमलजले पउमसरे, वणहत्थी मयगलन्तगण्डयलो । दमिओ तुमे महाजस !, नागो इव मन्तवादीण ॥६६॥
अन्ना वि चन्दणलया, कुसुमभरोणमियसुरहिगन्धिल्ला । भमरेसुग्गीयरवा, भुयासु अवगूहिया सामि ! ॥६७॥
पउमसरस्स तडत्था, ईसावस किंचुमुवगएण तुमे । उप्पलवनालेण हया, अहयं अइकोमलकरेणं ॥६८॥
अह पव्वयस्स उवरिं, नाह ! मए पुच्छिया तुमे सिट्ठा । नीलघणपत्तविडवा, एए णंदिद्दुमा भद्दे ! ॥६९॥
तीरे कण्णरवाए, नईए मज्झण्हदेसयालम्मि । पडिलाहिया य साहू, दोहि वि अम्हेहि भत्तीए ॥७०॥
घुट्ठं च अहो दाणं, पडिया य सकञ्चणा रयणवुट्ठी । पवणो सुरहिसुयन्धो, देवेहि वि दुन्दुही पहया ॥७१॥
तेएण पज्जलन्ती, तइया चूडामणी इमा लद्धा । एयं नेहि कइद्धय, साहिन्नाणं मह पियस्स ॥७२॥
भणिऊण एवमेयं, गेण्हइ चूडामणिं पवणपुत्तो । संथावेइ रुयन्ती, सीया महुरेहि वयणेहिं ॥७३॥
मा वच्चसु उव्वेयं, सामिणि ! अहयं दिणेसु कइएसु । आणेमि पउमनाहं, समयं चिय वाणरबलेणं ॥७४॥
काउण तीए पणइं, तस्सुद्देसस्स निग्गओ तुरिओ । दिट्ठो य पवणपुत्तो, उज्जाणगयाहि नारीहिं ॥७५॥
अन्नोन्नसमुल्लावं, कुणन्ति किं वा इमो विमाणाओ । अवइण्णो सुरपवरो, सोमणसवणाहिसङ्काए ? ॥७६॥
सुणिऊण निरवसेसं, दसाणणो हणुवसन्तियं वत्तं । पेसेइ किङ्करबलं, भणइ य मारेह तं दुट्ठं ॥७७॥
सामिवयणेण पत्ता, बहवो च्चिय किङ्करा गहियसत्था । ते पेच्छिऊण हणुओ, उम्मूलेउं वणं लग्गो ॥७८॥

तत्रोद्देशे मया चारणश्रमणा महद्गुणकलिताः । परिवन्दितास्त्वयाऽपि च तीव्रभक्तिरागेण ॥६५॥
विमलजले पद्मसरसि वनहस्ती मदगलद्गण्डस्थलः । दान्तस्त्वया महायशः ! नाग इव मन्त्रवादिना ॥६६॥
अन्याऽपि चन्दनलता कुसुमभरावनतसुरभिगन्धिः । भ्रमरसूद्गीतरवा भूजाभ्यामालिङ्गिता स्वामिन् ! ॥६७॥
पद्मसरसस्तटस्थेर्ष्यावश किंचिदुपगतेन त्वया । उत्पलनालेण हताऽहमतिकोमलकरेण ॥६८॥
अथ पर्वतस्योपरि नाथ ! मया पृष्ठा त्वया शिष्टा । नीलघनपत्रविटपा एते नन्दिद्रुमा भद्रे ! ॥६९॥
तीरे कर्णरवाया नद्या मध्याह्नदेशकाले । प्रतिलाभिताश्च साधवो द्वाभ्यामप्यस्मद्भ्यां भक्त्या ॥७०॥
घृष्टं चाहोदानं पतिता च सकञ्चना रत्नवृष्टिः । पवनः सुरभिसुगन्धो देवैरपि दुन्दुभिः प्रहता ॥७१॥
तेजसा प्रज्वलन्ती तदा चूडामणीमा लब्धा । एतन्नय कपिध्वज ! सन्निधानं मम प्रियस्य ॥७२॥
भणित्वेवमेतद्गृह्णाति चूडामणिं पवनपुत्रः । संस्थापयति रुदन्तीं सीतां मधुरै वचनैः ॥७३॥
मा गच्छोद्वेगं स्वामिनि ! अहं दिनैः कतिपयैः । आनयामि पद्मनाभं समकमेव वानरबलेन ॥७४॥
कृत्वा तस्याः प्रणतिं तस्मादुदेशान्निर्गतस्त्वरितः । दृष्टश्च पवनपुत्र उद्यानगताभिर्नारिभिः ॥७५॥
अन्योन्यसमुल्लापं कुर्वन्ति किं वाऽयं विमानाद् । अवतीर्णः सुरप्रवरः सोमनसवनाभिशङ्कया ? ॥७६॥
श्रुत्वा निरवशेषं दशाननो हनुमत्सत्कां वार्ताम् । प्रेषयति किङ्करबलं भणति च मिग्रध्वं तं दुष्टम् ॥७७॥
स्वामिवचनेन प्राप्ता बहव एव किङ्करा गृहीतशस्त्राः । तान्दृष्ट्वा हनुमानुन्मूलयितुं वनं लग्नः ॥७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुसुमफलभरोणया पायवाऽसोग-पुन्नाग-नाग-ऽज्जुणा कुन्दमन्दार-चूय-ऽम्बया दक्ख-रुद्दक्ख-कोरिण्टया कुज्जया सत्तवण्णा तला देवदारू महन्ता दुमा मालई जूहिया सत्तली कन्दली मल्लिया सिन्दुवारा कुडङ्गा पियङ्गू दुमा ।

बउल-तिलय-चम्पया रत्तकोरिण्टया नालिएरी कहाडा तहा धायई मायई केयई जच्चपूयप्फली रायणी पाडली बिल्ल-अङ्कोल्लया-ऽऽसत्थ-नग्गोह-वम्हा तरू कञ्चणारा-ऽऽसहारा बहू एवमाई दुमा मारुई भञ्जिऊणं पवत्तो कहं ? ।

चडुलकरपसारियायड्ढिउम्मूलिया केइ पायप्पहाराहया खण्डखण्डा लहुं भामिया छिन्नभिन्ना तुडन्ता फुडन्ता ललन्ता बहू पल्लवा लोलमाणाउलोसुक्कसाहाफिडन्तप्फलोहा सुगन्धुद्धुरा पुप्फवुट्ठिं मुयन्ता महिं पाविया पायवा ।

पुणरवि मरुनन्दणो गिण्हिऊणं गया घायओ सुद्धउज्जाणवावीहरे हेमजम्बूणए सीहणायाउले पोमराइन्दणीलप्पभे भञ्जिऊणं तओ पेच्छए मारुई रक्खसाणं बलं मुक्कबुक्कारपाइक्ककुलन्तवग्गन्तसेणामुहं ॥७९॥

तं मारूईण भग्गं, पउमुज्जाणं पणट्ठलायण्णं । कमलिणिवणं व नज्जइ, विलोलियं मत्तहत्थीणं ॥८०॥

एयन्तरम्मि पत्तं, महाबलं उत्थरन्तपाइक्कं । वेढेइ पवणपुत्तं, दिवायरं चेव घणवन्द्रं ॥८१॥

सर-झसर-सत्ति-सव्वल, मुञ्चन्ति भडा समच्छरुच्छाहा । सिरिसेलस्स अभिमुहा, सामियकज्जुज्जया सव्वे ॥८२॥

तं आउहसंघायं, विनिवारेऊण अञ्जणातणओ । पहणइ रक्खससुहडा, फलिहसिला-सेल रुक्खेहिं ॥८३॥

कुसुमफलभारावनताः पादपा अशोकपुन्नाग-नागाऽर्जुनाः । कुन्दमन्दारचूतऽऽम्रा द्राक्षरुद्राक्षकोरिण्टकाः कुब्जकाः सप्तपर्णास्ताला देवदारवो महन्तोद्रुमा मालति यूँथिकासप्तालीकन्दलीमल्लिकासिन्दुरवारा कुडङ्गा प्रियङ्गवो द्रुमाः ।

बकुल-तिलक-चम्पकाः रक्तकोरिण्टका नालिकेरयः कटाहास्तथा धातकयो मातकी केतकी जात्यपूगफली रायणी पाटली बिल्वाङ्कोलाऽऽश्वस्थ-न्यग्रोध-पलाश-कञ्चनारा-सहकारा बहव एवमादयो द्रुमा मारुति भङ्क्तुं प्रवृत्तः कथम् ?

चटुलकरप्रसारिताकृष्योन्मूलिताः केचित्पादप्रहाराऽऽहताः खण्डखण्डा लघु भ्रामिताश्च्छिन्नभिन्नास्त्रुटयन्तः स्फुटन्तो ललन्तो बहवः पल्लवा लोलमानाऽऽकुलोत्सुक शाखस्फिटन्फलौधाः सुगन्धोद्धुराः पुष्पवृष्टिं मुञ्चन्तो महीं प्रापिताः पादपाः ।

पुनरपि मरुन्नन्दनो गृहीत्वा गदां घातयन्शुद्धोद्यानवापीगृहाणि हेमजम्बुनदानि सिंहनादाकुलानि कुसुम्भेन्द्रनीलप्रभाणि भङ्क्त्वा ततः पश्यति मारुती राक्षसानां बलं मुक्तगर्जारवपादातिकुलाऽन्तर्वल्गत्सेनामुखम् ॥७९॥

तन्मारुतिना भग्नं पद्मोद्यानं प्रणष्टलावण्यम् । कमलिनिवनमिव ज्ञायते विलोलितं मत्तहस्तिना ॥८०॥

एतदन्तरे प्राप्तं महाबलमस्तृणत्पादातिकम् । वेष्टयति पवनपुत्रं दिवाकरमेव घनवृन्दम् ॥८१॥

शर-झसर-शक्ति-सर्वलं मुञ्चन्ति भटाः समत्सरोत्साहाः । श्रीशैलस्याभिमुखाः स्वामिकार्योद्योताः सर्वे ॥८२॥

तदायुधसंघातविनिवार्याञ्जनातनयः । प्रहन्ति राक्षससुभटान् स्फटिकशिलाशैलवृक्षैः ॥८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्केण तेण सेणिय !, आउहरहिएण तं बलं सव्वं । हय-विहय-विप्परद्धं, जीवियलोलं अह पलाणं ॥८४॥
भवणाणि तोरणाणि य, अट्टालयविविहचित्ततुङ्गाइं । चूरेइ पवणपुत्तो, अणेयपासायसिहराइं ॥८५॥
चरणेसु करयलेसु य, गयापहाराहयाणि सव्वाणि । विवडन्तिरयणकूडाणि ताणि कणकणकणयणंताइं ॥८६॥
जङ्घावायसमुट्ठिय-रएण बहुवण्णपसरमाणेणं । इन्दाउहखण्डाणि व, कयाणि विउले गयणमग्गे ॥८७॥

अवि धाह-रुण्ण-विलिविय-जुवईजण-बालकाहलपलावा ।
सुव्वन्ति भउव्विग्गा, लोया किं किं ति जंपन्ता ? ॥८८॥

खम्भे हन्तूण गया, तुरया गलरज्जुया वि तोडेन्ति । हिण्डन्ति नयरमज्झे, भेसन्ता जणवयं बहुसो ॥८९॥
लङ्कापुरीए एवं, भञ्जन्तो भवणसयसहस्साइं । हणुओ दढववसाओ, संपत्तो रावणं जाव ॥९०॥
दट्ठूण रक्खसवई, निययपुरिं भग्गभवणउज्जाणं । जंपइ रोसवसगओ, मह वयणं वो निसामेह ॥९१॥

मय-मालवन्त-तिसिरा, सुय-सारण-वइरदाढ-ऽसणिवेगा ! ।
कुम्भ-निसुम्भ-विहीसण-हत्थ-पहत्थाइया ! सव्वे ! ॥९२॥

जो कइलासुद्धरणे, आसि जसो मज्झ सयलतेलोक्के । इह भञ्जन्तेण [1]पुरी, सो फुसिओ पवणपुत्तेणं ॥९३॥
वाणरमलिउज्जाणं, न सुहं दट्ठुं पि दुम्मणं लङ्कं । परपुरिसकरकयग्गह-विमणं व पियं पिय[2]यमेणं ॥९४॥
जम-वरुण-इन्दमाई, जिया अणेया मए महासुहडा । तं वाणराहमेणं, इमेण क संपयं छलिओ ? ॥९५॥

एकेन तेन श्रेणिक ! आयुधरहितेन तद्बलं सर्वम् । हत-विहत-विपीडितं जीवितलोलमथ पलायनम् ॥८४॥
भवनानि तोरणानि चाट्टालयविविधचित्रतुङ्गानि । पिनष्टि पवनपुत्रो ऽनेकप्रासादशिखराणि ॥८५॥
चरणैः करतलैश्च गदाप्रहाराहतानि सर्वाणि । विपतन्तिरत्नकूटानि तानि कणकणक्वणन्तानि ॥८६॥
जङ्घावातसमुत्थितरजसा बहुवर्णप्रसरमाणेन । इन्द्रायुधखण्डानीव कृतानि विपुले गगनमार्गे ॥८७॥
अपि घात-रुदन-विलपित-युवतिजन-बालकाहलप्रलापाः । श्रुण्वन्ति भयोद्विग्ना लोका किंकिमिति जल्पन्तः ? ॥८८॥
स्तम्भान्हत्वा गजास्तुरगा गलरज्जवोऽपि त्रोटयन्ति । हिण्डन्ते नगरमध्ये भेषयन्तो जनपदं बहुशः ॥८९॥
लङ्कापूर्या एवं भञ्जन् भवनशतसहस्राणि । हनुमान्दृढव्यवसायः संप्राप्तो रावणं यावत् ॥९०॥
दृष्ट्वा राक्षसपति निजपुरिं भग्नभवनोद्यानाम् । जल्पति रोषवशगतो मम वचनं यूयं निशामयत ॥९१॥
मय-मालवांस्त्रिशराः शुक-सारण-वज्रदंष्ट्राशनिवेगाः । कुम्भःनिशुम्भःबिभीषण-हस्त-प्रहस्तादयाः सर्वे ॥९२॥
यः कैलाशोद्धरण आसीद्यशो मम सकलत्रैलोक्ये । इह भज्जता पुरिं स मृष्टः पवनपुत्रेण ॥९३॥
वानरमलिनोद्यानां न सुखं दृष्टुमपि दुर्मनां लङ्काम् । परपुरुषकरग्रहविमनामिव प्रियां प्रियतमेन ॥९४॥
यम-वरुणेन्द्रादयो जिता अनेका मया महासुभटाः । तं वानराधमेनानेन कथं सांप्रतं छलितः ॥९५॥

---

१. पुरिं-प्रत्य० । २. पिययमस्स-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ता हणह महाभेरी[१], लहु पराणेह सन्दणं अजियं । दुट्ठस्स तस्स गन्तुं, करेमि इह निग्गहं घोरं ॥९६॥
एव परिभासमाणं, तायं विन्नवइ इन्दइकुमारो । एयस्स कए सामिय !, परितप्पसि किं तुमं गाढं ? ॥९७॥
उप्पइउं दूरयरं, पणट्ठजोइसगणं दलियमेरुं । पल्हत्थेमि य सयलं, भण ताय ! भुयासु तेल्लोक्कं ॥९८॥
नाऊण तस्स चित्तं, ताहे आणवइ दहमुहो पुत्तं । तं गेण्हिऊण दुट्ठं, आणेह लहुं मह समीवं ॥९९॥
नमिऊण रावणं सो, गयवरजुत्तं रहं समारूढो । सन्नद्धबद्धकवओ, बलेण सहिओ महन्तेणं ॥१००॥
अह मेहवाहणो विय, रणपरिहत्थो गयं समारूढो । एरावणं विलग्गो, नज्जइ इन्दो सयं चेव ॥१०१॥
रहवर-तुरङ्ग-वग्गिर-संघट्टुट्ठन्तगयघडाडोवं । चलियं इन्दइसेन्नं, बहुतूरसहस्सनिग्घोसं ॥१०२॥
जाव य खणन्तरेक्कं, ताव य सन्नद्धबद्धतोणीरं । हणुवस्स नियसेन्नं, पराइयं दप्पियामरिसं ॥१०३॥
दोसु वि बलेसु सुहडा, आवडिया रहसपसरिउच्छाहा । असि-कणय-चक्क-तोमर-सएसु घाएन्ति अन्नोन्नं ॥१०४॥
अह ते पवङ्गमभडा, इन्दइसुहडेहि तिव्वपहरेहिं । पहया विभग्गमाणा, ओसरिया मारूई जाव ॥१०५॥
नियबलपरिभवं सो, दट्ठूणं पवणनन्दणो रुट्ठो । अह जुज्झिउं पवत्तो, समयं चिय इन्दइभडेहिं ॥१०६॥
पयण्डदण्डसासणा, विइण्णहेमकङ्कणा । चलन्तकण्णकुण्डला, सुवण्णबद्धसुत्तया ॥१०७॥
विचित्तवत्थभूसणा, सुयन्धपुप्फसेहरा । सकुङ्कुमङ्गराइया, तिरीडदित्तमोत्तिया ॥१०८॥

ततः ध्नन्त महाभेरीं लघु पलानयत स्यन्दनमजितम् । दुष्टस्य तस्य गत्वा करोमीह निग्रहं घोरम् ॥९६॥
एंव परिभाषमाणं तातं विज्ञापयतीन्द्रजित्कुमारः । एतस्य कृते स्वामिन् ! परितर्प्यसि किं त्वं गाढम् ? ॥९७॥
उत्पत्य दूरतरं प्रणष्टज्योतिषगणं दलितमेरुम् । प्रक्षिप्तामि च सकलं भण तात ! भुजाभ्यां त्रैलोक्यम् ॥९८॥
ज्ञात्वा तस्य चित्तं तदाऽऽज्ञापयति दशमुखः पुत्रम् । तं गृहीत्वा दुष्टमानय लघु मम समीपम् ॥९९॥
नत्वा रावणं स गजवरयुक्तं रथं समारुढः । सन्नद्धबद्धकवचो बलेन सहितो महता ॥१००॥
अथ मेघवाहनोऽपि च रणदक्षो गजं समारूढः । ऐरावणं विलग्नो ज्ञायत इन्द्रः स्वयमेव ॥१०१॥
रथवर-तुरङ्ग-वल्गितसंघट्टोत्तिष्ठद्गजघटाटोपम् । चलितमिन्द्रसैन्यं बहुतूर्यसहस्रनिर्घोषम् ॥१०२॥
यावच्च क्षणान्तरैकं तावच्च सन्नद्धबद्धतूणीरम् । हनुमतो निजसैन्यं पलायितं दर्पितामर्शम् ॥१०३॥
द्वयोरपि बलयोः सुभटा आपतिता रभसप्रसरितोत्साहाः । असि-कनक-चक्र-तोमर शतैः घातयन्त्यन्योन्यम् ॥१०४॥
अथ ते प्लवङ्गमभटा इन्द्रजित्सुभटैस्तीव्रप्रहारैः । प्रहता विभज्यमाना अपसृता मारुतिर्यावत् ॥१०५॥
निजबलपराभवं स दृष्ट्वा पवननन्दनो रुष्टः । अथ योद्धुं प्रवृत्तः समकमेवेन्द्रजिद्भटैः ॥१०६॥
प्रचण्डदण्डशासना वितीर्णहेमकङ्कणाः । चलत्कर्णकुण्डला सुवर्णबद्धसूत्रताः ॥१०७॥
विचित्रवस्त्रभूषणाः सुगन्धपुष्पशेखराः । सुकुङ्कुमाङ्गरागितास्तिरिटदिप्तमौक्तिकाः ॥१०८॥

---

१. महाभेरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचक्क-खग्ग-मोग्गरा, तिसूल-चाव-पट्टिसा । जलन्तसत्ति-सव्वला, महन्तकुन्त-तोरमा ॥१०९॥
ससामिकज्जउज्जया, पवङ्गघायदारिया । विमुक्कजीयबन्धणा, पडन्ति तो महाभडा ॥११०॥
सहावतिक्खनक्खया, [1]लसन्तचारुचामरा । पवङ्गमाउहाहया, खयं गया निसायरा ॥१११॥
पवङ्गभिन्नमत्थया, खुडन्तदित्तमोत्तिया । पणट्ठदाणदुद्दिणा, पडन्ति मत्तकुञ्जरा ॥११२॥
विचित्तहेमनिम्मिया, विणिट्ठकञ्चणट्ठया । पवङ्गघायचुण्णिया, खयं गया महारहा ॥११३॥
एवं तं नियबलं, विद्धत्थं इन्दई पलोएउं । बाणेहि पवणपुत्तं, छाएऊणं समाढत्तो ॥११४॥
अह मारुई वि एन्तं, सरनिवहं रिउजणेण परिमुक्कं । छिन्दइ चलग्गहत्थो, गयणे निसियद्धचन्देहिं ॥११५॥
घेत्तूण इन्दईणं, विसज्जिओ मोग्गरो अइमहन्तो । हणुमेण विणिच्छूढो, सिलाए सिग्घं पडिवहेणं ॥११६॥
हणुयस्स इन्दइभडो, फलिहसिला-सेल-सत्तिसंघाए । मुञ्चइ चलग्गहत्थो, सो वि य एन्तं निवारेइ ॥११७॥
एवं काऊण चिरं, जुज्झं तो इन्दईण पवणसुओ । ससियरनिहेहि सिग्घं, बद्धो च्चिय नागपासेहिं ॥११८॥
भणिया य इन्दईणं, नियभडा सङ्कलासु दढबद्धं । एयं दावेह लहुं, मह पिउणो मारुई दुट्ठं ॥११९॥
नीओ दसाणणसभं, पुरिसेहिं पुरजणेण दीसन्तो । लङ्काहिवस्स सिट्ठं, एस पहू ! आणिओ दुट्ठो ॥१२०॥
ते रावणस्स पुरिसा, कहन्ति हणुयस्स सन्तिया दोसा । सुग्गीव-राहवेहिं, सीयाए पेसिओ दूओ ॥१२१॥
सामिय ! महिन्दनयरं, विद्धत्थं सो य निज्जिओ राया । साहूण य उवसग्गो, निवारिओ दहिमुहे दीवे ॥१२२॥

स चक्र-खड्ग-मुद्गरास्त्रिशूलचापपट्टिसाः । ज्वलत्शक्तिसर्वला महत्कुन्ततोमराः ॥१०९॥
स्वस्वामिकार्योद्यताः प्लवङ्गघातदारिताः । विमुक्तजीवबन्धनाः पतन्ति तदा महाभटाः ॥११०॥
स्वभावतीक्ष्णनरका लसच्चारुचामराः । प्लवङ्गमायुधाहताः क्षयं गतानिशाचराः ॥१११॥
प्लवङ्गभिन्नमस्तकास्त्रुटद् दिप्तमौक्तिकाः । प्रणष्टदानदुर्दिनाः पतन्ति मत्तकुञ्जराः ॥११२॥
विचित्रहेमनिर्मिता विनिष्ठकञ्चनार्थकाः । प्लवङ्गघातचूर्णिताः क्षयं गता महारथाः ॥११३॥
एवं तन्निजबलं विध्वस्तमिन्द्रजित्प्रलोक्य । बाणैः पवनपुत्रमाच्छादयितुं समारब्धः ॥११४॥
अथ मारुतिरप्यायान्तं शरनिवहं रिपुजनेन परिमुक्तम् । छिन्दति चपलाग्रहस्तो गगने निशितार्द्धचन्द्रैः ॥११५॥
गृहीत्वेन्द्रजिता विसर्जितो मुद्गरोऽतिमहान् । हनुमता विनिक्षिप्तः शिलया शीघ्रं प्रतिपथा ॥११६॥
हनुमत इन्द्रजिद्भटः स्फटिकशिला-शैल-शक्तिसंघातान् । मुञ्चति चपलाग्रहस्तः सोऽपि चायान्तं निवारयति ॥११७॥
एवं कृत्वा चिरं युद्धं तदेन्द्रजिता पवनसुतः । शशिकरनिभैः शीघ्रं बद्ध एव नागपाशैः ॥११८॥
भणिताश्चेन्द्रजिता निजभटाः सङ्कलाभि दृढबद्धम् । एनं दर्शयत लघु मम पितरं मारुतिं दुष्टम् ॥११९॥
नीतो दशाननसभां पुरुषैः पुर्जनेन दर्श्यमानः । लङ्काधिपस्य शिष्टमेष प्रभो ! आनीतो दुष्टः ॥१२०॥
ते रावणस्य पुरुषाः कथयन्ति हनुमत्सत्कान्दोषान् । सुग्रीव राघवैः सीतायाः प्रेषितो दूतः ॥१२१॥
स्वामिन् ! महेन्द्रनगरं विध्वस्तं स च निर्जितो राजा । साधूनामुपसर्गो निवारितो दधिमुखे द्वीपे ॥१२२॥

---

१. चलन्तचारु-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गन्धव्वस्स महाजस ! दुहियाओ तिण्णि पवरकन्नाओ । संपेसियाओ सिग्घं, इमेण रामस्स किक्किन्धिं ॥१२३॥
भंतूण वज्जसालं, वज्जमुहो मारिओ रणे सिग्घं । एयस्स समभिलासं, अह लङ्कासुन्दरी वि गया ॥१२४॥
ठविऊण नियसेन्नं, इमेण लङ्काए बाहिरुद्देसे । भग्गं पउमुज्जाणं, नाणाविहतरुलयाइण्णं ॥१२५॥
भवणसहस्साइं पहू !, इमेण भग्गाइं रयणचित्ताइं । आलोडिया य नयरी, सवुड्ढ-बालाउला सयला ॥१२६॥
सुणिऊण इमे दोसे, रुट्ठो लङ्काहिवो भणइ एवं । दढसङ्कलेसु बन्धह, सिग्घं चिय हत्थ-पाएसु ॥१२७॥
खर-फरसु-निट्ठुराए, वायाए रावणो परमरुट्ठो । अह सविऊणाऽऽढत्तो, हणुवं अत्थाणिमज्झम्मि ॥१२८॥
निल्लज्ज ! वाणराहम !, दूयत्तं भूमिगोयराण तुमं । कुणसि ! अविसेसियगुणो, पविरुद्धं खेयरभडाणं ? ॥१२९॥
अकुलीणयस्स अङ्गे, न चेव चिन्धाइं होन्ति पुरिसस्स । साहेइ नियजम्मं, दुच्चरियं ववहरन्तस्स ॥१३०॥
पवणं जएण न तुमं, जाओ अन्नेण केण विनरेण । दुच्चरिएहि नराहम !, निव्वडिओ निन्दणिज्जेहिं ॥१३१॥
उवयारसहस्सेहि वि, अहिणवसम्माणदाणविभवेणं । जो मे तुमं न गहिओ, सो कह अन्नेण घिप्पिहिसि ? ॥१३२॥
रण्णे समासयन्तिऽह, पञ्चमुहं किं न कोल्हुया बहवे । न य सप्पुरिसा लोए, कयाइ नीयं पसाएन्ति ॥१३३॥
हसिऊण भणइ हणुवो, हवइ मुहं उत्तमाए पुरिसाणं । दुव्वयणसङ्गरहियं अहियं धम्मत्थहिययाणं ॥१३४॥
रामो लक्खणसहिओ, एही कइसेन्नपरिमिओ सिग्घं । न य रुम्भिऊण तीरइ, मेहो इव पव्वएण तुमे ॥१३५॥
आहारेसु न तित्तो, सुसाउकलिएसु अमयसरिसेसु । जह कोइ जाइ नासं, एक्केण विसस्स बिन्दूणं ॥१३६॥
जुवइसहस्सेसु सय, न य तित्तो इन्धणेसु जह अग्गी । परनारिकियपसङ्गो, तुमं पि एवं विणस्सिहिसि ॥१३७॥

गन्धर्वस्य महायशः ! दुहितर स्तिस्त्रः प्रवरकन्याः । संप्रेषित्ताः शीघ्रमनेन रामस्य किष्किन्धिम् ॥१२३॥
भङ्क्त्वा वज्रशालं वज्रमुखो मारितो रणे शीघ्रम् । एतस्य समभिलाषमथ लङ्कासुन्दर्यपि गता ॥१२४॥
स्थापयित्वा निजसैन्यमनेन लङ्काया बहिरुद्देशे । भग्नं पद्मोद्यानं नानाविधतरुलताकीर्णम् ॥१२५॥
भवनसहस्राणि प्रभो ! अनेन भग्नानि रत्नचित्राणि । आलोडिता च नगरी सवृद्ध-बालाकुला सकला ॥१२६॥
श्रुत्वेमान्दोषान् रुष्टो लङ्काधिपो भणत्येवम् । दृढशृंखलै र्बध्नीत शीघ्रमेव हस्त-पादैः ॥१२७॥
खर-परुष-निष्ठुरया वाचया रावणः परमरुष्टः । अथ शपितुमारब्धो हनुमन्तमास्थानिकामध्ये ॥१२८॥
निर्लज्ज ! वानराधम ! दूतत्वं भूमिगोचराणां त्वम् । करोषि ! अविशेषितगुणः प्रविरुद्धं खेचरभटानाम् ? ॥१२९॥
अकुलिनस्याङ्गे नैव चिह्नानि भवन्ति पुरुषस्य । कथय निजजन्म दुश्चरितं व्यवहृतः ॥१३०॥
पवनञ्जयेन न त्वं जातोऽन्येन केनापि नरेण । दुश्चरितैर्नराधम ! निवर्तितो निन्दनीयैः ॥१३१॥
उपकारसहस्रैरप्यभिनवसन्मानदानविभवैः । यो मया त्वं न गृहीतः स कथमन्येन ग्रहिष्यषि ॥१३२॥
अरण्ये समाश्रयन्त्यथ पञ्चमुखं किं न शृगाला बहवः । न च सत्पुरुषा लोके कदाचिन्नीचं प्रसादयन्ति ॥१३३॥
हसित्वा भणति हनुमान्भवति मुखमुत्तमानां पुरुषाणाम् । दुर्वचनसङ्गरहितमधिकं धर्मार्थहृदयाणाम् ॥१३४॥
रामो लक्ष्मणसहित आगमिष्यति कपिसैन्यपरिमितः शीघ्रम् । न च रोद्धुं तीर्यते मेघ इव पर्वतेन त्वया ॥१३५॥
आहारै र्न तृप्तः सुस्वादुकलितैरमृतसदृशैः । यथा कोऽपि याति नाशमेकेन विषस्य बिन्दुना ॥१३६॥
युवतिसहस्त्रैः सदा न च तृप्त इन्धनैर्यथाग्निः । परनारीकृतप्रसङ्गस्त्वमप्येवं विनक्ष्यसि ॥१३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्ते विणासकाले, नासइ बुद्धी नराण निक्खुत्तं । सा अन्नहा न कीरइ, पुव्वकयकम्मजोएणं ॥१३८॥
आसन्नमरणभावो, जो परमहिलासु कुणसि संसग्गिं । पच्छा नरयगइगओ, दुक्खसहस्साणि पाविहिसि ॥१३९॥
जाएण तुमे रावण ! रयणासवमाइयाण सुहडाणं । पुत्ताहमेण जणिओ, कुलक्खओ अणयकारीणं ॥१४०॥
सो एव भणियमेत्तो, आरुट्ठो रावणो समुल्लवइ । मारेह नयरमज्झे, एयं दुव्वयणपब्भारं ॥१४१॥
दढसङ्कलपडिबद्धं, हिण्डावह घरघरेण नयरीए । कयधिक्कारो हु इमो, सोइज्जउ पवरलोएणं ॥१४२॥
जं रावणेण एवं, भणिओ च्चिय मारुई तओ रुट्ठो । छिन्दइ बन्धणनिवहं, सिणेहपासं पिव सुसाहू ॥१४३॥
उप्पइऊण नहयले, थम्भसहस्साउलं रयणचित्तं । भञ्जइ रावणभवणं, हणुओ चलणप्पहारेहिं ॥१४४॥
तेण पडन्तेण इमा, गाढं चिय जन्तिया वि तुङ्गेसु । सायरवरेण समयं, सयला अकम्पिया वसुहा ॥१४५॥
बहुभवण[१]तोरणा सा, लङ्का काऊण भग्गपायारा । अगणियपडिवक्खभओ, उप्पइओ नहयलं हणुओ ॥१४६॥
मन्दोयरीए सिट्ठो, सीयाए मारुई इमो भद्दे ! । छेत्तूण बन्धणाइं, वच्चई किक्किन्धपुरहुत्तो ॥१४७॥
जन्तस्स जणयधूया, घत्तइ पुप्फञ्जली सुपरितुट्ठा । जंपइ गहाऽणुकूला, होन्तु अविग्घं तुमं निच्चं ॥१४८॥

इय सुचरियकम्मा होन्ति विक्खायकित्ती, अरिदढपरिबद्धा ते विमुञ्चन्ति खिप्पं ।
विविहसुहनिहाणं आसयन्ती विसिट्ठं, विमलकयविहाणा जे इहं भव्वजीवा ॥१४९॥

॥ इय पउमचरिए हणुवलङ्कानिग्गमणं नामं तिपञ्चासइमं पव्वं समत्तं ॥

प्राप्ते विनाशकाले नश्यति बुद्धिर्नराणां निश्चितम् । साऽन्यथा न क्रियते पूर्वकृतकर्मयोगेन ॥१३८॥
आसन्नमरणभावो यः परमहिलाभिः करोषि संसर्गीम् । पश्चान्नरकगतिगतो दुःखसहस्राणि प्राप्स्यसि ॥१३९॥
जातेन त्वया रावण ! रत्नश्रवसादीनां सुभटानाम् । पुत्राधमेन जनितः कुलक्षयोऽनयकारीणा ॥१४०॥थ
स एवं भणितमात्र आरुष्टो रावणः समुल्लपति । मारयत नगरमध्ये एनं दुर्नयप्राग्भारम् ॥१४१॥
दृढशृङ्खलाप्रतिबद्धं हिण्डयध्वम् गृहंगृहेण नगर्याः । कृतधिक्कारः खल्वयं शुच्यात्प्रवरलोकेन ॥१४२॥
यद्रावणेनैवं भणित एव मारुतिस्ततो रुष्टः । छिन्दति बन्धननिवहं स्नहेपाशमिव सुसाधुः ॥१४३॥
उत्पत्य नभस्तले स्तम्भसहस्राकुलं रत्नचित्रम् । भनक्ति रावणभवनं हनुमांश्चरणप्रहारैः ॥१४४॥
तेन पततेमा गाढमेव यन्त्रिताऽपि तुङ्गैः । सागरवरेण समकं सकलाऽऽकम्पिता वसुधा ॥१४५॥
बहुभवनतोरणां तां लङ्कां कृत्वा भग्नप्राकाराम् । अगणितप्रतिपक्षभय उत्पतितो नभस्तलं हनुमान् ॥१४६॥
मन्दोदर्या शिष्टः सीताया मारुतिरयं भद्रे ! । छित्वा बन्धनानि गच्छति किष्किन्धिपुराभिमुखः ॥१४७॥
यातो जनकदुहिता क्षिपति पुष्पाञ्जलिं सुपरितुष्टा । जल्पति ग्रहा अनुकूला भवन्त्वविघ्नं तव नित्यम् ॥१४८॥
इति सुचरितकर्मणो भवन्ति विख्यातकीर्तयोऽरिदृढपरिबद्धास्ते विमुञ्चन्ति शीघ्रम् ।
विविधसुखनिधानमाश्रयन्ति विशिष्टं विमलकृतविधाना य इह भव्यजीवाः ॥१४९॥

॥ इति पद्मचरिते हनुमल्लङ्कानिर्गमनं नाम त्रिःपञ्चाशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५४. लंकापत्थाणपव्वं

अह सो कमेण पत्तो, किक्किन्धिं मारुई बलसमग्गो । दिट्ठो वाणरवइणा, अब्भुट्ठेऊण आलत्तो ॥१॥
समरबलियाण एत्तो, सम्माणं वरभडाण काऊणं । सुग्गीवेण समाणं, पउमसयासं समल्लीणो ॥२॥
काऊण सिरपणामं, हणुवो चूडामणिं समप्पेउं । रामस्स अपरिसेसं, साहइ वत्तं पिययमाए ॥३॥
गन्तूण मए सामिय !, दिट्ठा तुह गेहिणी वरुज्जाणे । आबद्धकेसवेणी, मलिणकवोला पगलियंसू ॥४॥
वामकरधरियवयणा, मुञ्चन्ती दीह-उण्हनीसासे । तुह दरिसणं महाजस !, एगग्गमणा विचिन्तेन्ती ॥५॥
पायवडिएण सामिय !, समप्पिओ अङ्गुलीयओ तीए । वत्ता य कुसलमाई, सव्वा तुह सन्तिया सिट्ठा ॥६॥
सुणिऊण तुज्झ वत्तं, परं पमोयं गया जणयधूया । पुच्छइ पुणो पुणो वि य, हरिसवसुब्भिन्नरोमञ्चा ॥७॥
पवणतणएण सीया, जं सिट्ठा राहवस्स जीवन्ती । तं हरिसवसगओ च्चिय, न माइ नियएसु अङ्गेसु ॥८॥
आसासिओ य पउमो, अहियं चूडामणीए गहियाए । अमएण व फुसियङ्गो, साभिन्नाणाए वत्ताए ॥९॥
जइ वि तुमं परदेसे अंतरिओ गिरिवरेसु तुंगेसु । तहवि तुमं समरिज्जसि, जहा सर रायहंसेहिं ॥९A॥
अन्नं पि सुणसु सामिय !, वयणं जं तुज्झ तीए संदिट्ठं । जइ नाऽऽगच्छसि तुरियं, तो मरणं मे धुवं एत्थं ॥१०॥
चिन्तासागरवडिया, तुह विरहविसंठुला जणयधूया । दुक्खं गमेइ दियहा, रक्खसजुवईसु पडिरुद्धा ॥११॥

---

५४. लङ्काप्रस्थान पर्वम्

अथ स क्रमेण प्राप्तः किष्किन्धिं मारुति र्बलसमग्रः । दृष्टो वानरपतिनाऽभ्युत्थायालापितः ॥१॥
समरवलितानामितः सन्मानं वरभटानां कृत्वा । सुग्रीवेण समानं पद्मसकाशं समालीनः ॥२॥
कृत्वा शिरःप्रणामं हनुमांश्चूडामणिं समर्प्य । रामायापरिशेषां कथयति वार्तां प्रियतमायाः ॥३॥
गत्वा मया स्वामिन् ! दृष्टा तव गृहिणी वरोद्याने । आबद्धकेशवेणी मलिनकपोला प्रगलिताश्रुः ॥४॥
वामकरधृतवदना मुञ्चन्ती दीर्घोष्णनिश्वासान् । तव दर्शनं महायश ! एकाग्रमना विचिन्तयन्ती ॥५॥
पादपतितेन स्वामिन् ! समर्पिताङ्गुलीयकस्तस्यै । वार्ताश्च कुशलादयः सर्वास्तवसत्काः शिष्टाः ॥६॥
श्रुत्वा तव वार्तां परं प्रमोदं गता जनकदुहिता । पृच्छति पुनः पुनरपि च हर्षवशोद्भिन्नरोमाञ्चा ॥७॥
पवनतनयेन सीता यच्छिष्टा राघवस्य जीवन्ती । तद्धर्षवशगत एव न माति निजेष्वङ्गेषु ॥८॥
आश्वासितश्च पद्मोऽधिकं चूडामणौ गृहीते । अमृतेनेव स्पृष्टाङ्गः साभिज्ञानायां वार्तायाम् ॥९॥
यद्यपि त्वं परदेशेऽन्तरितो गिरिवरैस्तुङ्गैः । तथापि त्वं स्मरे र्यथा सरो राजहंसैः ॥९A॥
अन्यदपि श्रुणु स्वामिन् ! वचनं तव तया संदिष्टम् । यदि नाऽऽगच्छसि त्वरितं तदा मरणं मे ध्रुवमत्र ॥१०॥
चिन्तासागरपतिता तव विरहविसंस्थुला जनकदुहिता । दुःखं गमयति दिवसान्राक्षसयुवतिभिः प्रतिरुद्धा ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण पउमनाहो, साहिन्नाणं पियाए पडिवत्तिं । सोगसमुच्छयहियओ, अहियं चिय दुक्खिओ जाओ ॥१२॥

चिन्तेऊण पवत्तो, अहो मुहो दीहमुक्कनीसासो । निन्दइ पुणो पुणो च्चिय, निययं दुक्खासयं जीयं ॥१३॥

तं एव चिन्तयन्तं, सोमित्ती भणइ राहवं एत्तो । किं सोयसि देव ! तुमं, देहि मणं निययकरणिज्जे ॥१४॥

कज्जं तु दीहसुत्तं, लक्खिज्जइ कइवरस्स चित्तेणं । वाहरिओ वि चिरावइ, सो वि हु भामण्डलो सामि ! ॥१५॥

अम्हेहि निच्छएणं, गन्तव्वं दहमुहस्स निययपुरी । न य बाहासु महाजस !, उत्तरिउं तीरए उदही ॥१६॥

अह भणइ सीहणाओ, लक्खण ! किं एव भाससे गरुयं । सव्वेण वि कायव्वं, अप्पहियं चेव पुरिसेणं ॥१७॥

जं मारुईण लङ्का, भग्गा वरभवण-तुङ्गपायारा । तं रुट्ठे दहवयणे, होहइ संगाममरणऽम्हं ॥१८॥

तं भणइ चन्दरस्सी, किं व गओ सीहनाय ! संतासं ? । को रावणस्स बीहइ, संपइ आसन्नमरणस्स ? ॥१९॥

अम्ह बले विक्खाया, अत्थि भडा खेयरा महारहिणो । बल-सत्ति-कन्तिजुत्ता, बहवे संगामसोण्डीरा ॥२०॥

घणरइ-भूय-निणाओ, गयवरघोसो तहेव कूरो य । केलीकिलो य भीमो, कुण्डो रवि-अङ्गओ चेव ॥२१॥

नल-नील-विज्जुवयणो, मन्दरमाली तहा असणिवेगो । राया य चन्दजोई, सीहरहो सायरो धीरो ॥२२॥

एत्तो य वज्जदन्तो, उक्काल-ऽङ्गूल-दिणयरो वीरो । उज्जलकित्ती हणुओ, हवइ य भामण्डलो राया ॥२३॥

अन्नो महिन्दकेऊ, पवणगई तह पसन्नकित्ती य । एए अन्ने य बहू, अत्थि भडा वाणरबलम्मि ॥२४॥

दट्ठूण वाणरभडे, मज्झत्थे राहवो अइतुरन्तो । भिउडीकुडिलायमुहो, खणेण जाओ कयन्तो व्व ॥२५॥

श्रुत्वा पद्मनाभः साभिज्ञानं प्रियायाः प्रतिपत्तिम् । शोकसमाच्छादितहृदयोऽधिकमेव दुःखितो जातः ॥१२॥

चिन्तयितुं प्रवृत्तो ऽधोमुखो दीर्घमुक्तनिःश्वासः । निन्दति पुनः पुनरेव निजं दुःखाशयं जीवम् ॥१३॥

तमेवं चिन्तयन्तं सौमित्रि र्भणति राघवमितः । किं शोचसि देव ! त्वं देहि मनो निजकरणीये ॥१४॥

कार्यं तु दीर्घसूत्रं लक्ष्यते कपिवरस्य चित्तेन । व्याहृतोऽपि चिरायति सोऽपि खलु भामण्डलः स्वामिन् ! ॥१५॥

अस्माभि र्निश्चयेन गन्तव्यं दशमुखस्य निजपुरीम् । न च बाहाभि र्महायश ! उत्तरितुं तीर्यत उदधिः ॥१६॥

अथ भणति सिंहनादो लक्ष्मण ! किं भाषसे गुरुकम् । सर्वेणापि कर्तव्यमात्महितमेव सत्पुरुषेण ॥१७॥

यन्मारुतिना लङ्काभग्ना वरभवनौतुङ्गप्राकारा । तद्रुष्टे दशवदने भविष्यति संग्राममरणमस्माकम् ॥१८॥

तं भणति चन्द्ररश्मिः किं वा गतः सिंहनाद ! संत्राशम् ? । को रावणाद् बिभेति संप्रत्यासन्नमरणात् ? ॥१९॥

अस्मद्बले विख्याताः सन्ति भटाः खेचरा महारथिनः । बल-शक्ति-कान्तियुक्ता बहवः संग्रामशौण्डिराः ॥२०॥

घनरति-भूतनिनादौ गजवरघोषस्तथैव क्रुरश्च । केलिकिलौ च भीमः कुण्डो रवि-रङ्गद एव ॥२१॥

नलो-नीलो-विद्युद्वदनो मन्दरमाली तथाऽशनिवेगः । राजा च चन्द्रज्योतिः सिंहरथः सागरो धीरः ॥२२॥

इतश्च वज्रदन्त उत्कालाङ्गुलो दिनकरो वीरः । उज्वलकीर्तिर्हनुमान् भवति च भामण्डलो राजा ॥२३॥

अन्यो महेन्द्रकेतुः पवनगतिस्तथा प्रसन्नकीर्त्तिश्च । एत अन्ये च बहवः सन्ति भटा वानरबले ॥२४॥

दृष्ट्वा वानरभटान्मध्यस्थान्राघवोऽति त्वरमाणः । भृकुट्या कुटिलमुखः क्षणेन जातः कृतान्त इव ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घेत्तूण चावरयणं, अप्फालइ सजलजलहरनिणायं। दिट्ठिं च विज्जुसरिसं, देइ लङ्कापुरिंतेण ॥२६॥

पलयरविसन्निभासं, रामं दट्ठूण वाणरा सव्वे। सिग्घं च गमणसज्ज, जाया परिहत्थउच्छाहा ॥२७॥

मग्गसिरबहुलपक्खे, पञ्चमिदिवसे दिवायरे उदिए। सुहकरण-लग्ग-जोए, अह ताण पयाणयं जायं ॥२८॥

दिट्ठो सिही जलन्तो, निद्धूमो पयलदाहिणावत्तो। आहरणभूसियङ्गी, महिला सेओ य जच्चासो ॥२९॥

निग्गन्थमुणिवरिन्दो, छत्तं हयहेसियं तहा कलसो। पवणो य सुरहिगंधो, अहिणवयं तोरणं विउलं ॥३०॥

खीरदुमम्मि य वासइ, वामत्थो वायसो चलियपक्खो। वरभेरि-सङ्खसद्दो, [1]सिद्धी सिग्घं पयासेन्ति ॥३१॥

एए अन्ने य बहू, पसत्थसउणा पयाणकालम्मि। जाया य मङ्गलरवा, लङ्काहिमुहस्स रामस्स ॥३२॥

जह चन्दो परिवड्ढइ, सियपक्खे तह य खेयरबलेणं। आपूरइ पउमाभो, अहियं सुग्गीवसन्निहिओ ॥३३॥

राया किक्किन्धिवई, हणुओ दुम्मरिसणो नलो नीलो। तह य सुसेणो सल्लो, बहवे कुमुयाइणो सुहडा ॥३४॥

एए वाणरचिन्धा, महाबला सयलसाहणसमग्गा। आपूरमाणगयणं, जन्ति महातूरकयसद्दा ॥३५॥

हारो विराहियस्स वि, चिन्धं जम्बूणयस्स वडरुक्खो। सीहरवस्स य सीहो, हत्थी पुण मेहकन्तस्स ॥३६॥

जाणेसु वाहणेसु य, विमाण-गय-तुरय-रहवराईसु। गन्तुं समुज्जया ते, लङ्काहिमुहा पवणवेगा ॥३७॥

दिव्वविमाणारूढो, पउमो सह लक्खणेण वच्चन्तो। रेहइ सुहडपरिमिओ, इन्दो इव लोयपालेहिं ॥३८॥

गृहीत्वा चापरत्नमास्फालयति सजलजलधरनिनादम्। दृष्टिं च विद्युत्सदृशां ददाति लङ्कापुर्यन्तेन ॥२६॥

प्रलयरविसन्निकाशं रामं दृष्ट्वा वानराः सर्वे। शीघ्रं च गमनसज्जा जाताः परिपूर्णोत्साहाः ॥२७॥

मृगशीर्षबहुलपक्षे पञ्चमीदिवसे दिवाकरे उदिते। शुभकरणलग्नयोगेऽथ तेषां प्रयाणकं जातम् ॥२८॥

दृष्टः शिखी ज्वलन्निर्धूमः प्रलयदक्षिणावर्तः। आभरणभूषिताङ्गी महिला श्वेतश्च जात्याश्वः ॥२९॥

निग्रन्थमुनिवरेन्द्रश्च्छत्रं हयहेषितं तथा कलशः। पवनश्च सुरभिगन्धोऽभिनवकं तोरणं विपुलम् ॥३०॥

क्षीरद्रुमे च वासति वामस्थो वायसश्चलत्पक्षः। वरभेरि-शङ्खशब्दः सिद्धिं शीघ्रं प्रकाशयन्ति ॥३१॥

एत अन्ये च बहवः प्रशस्तशकुनाः प्रयाणकाले। जाताश्च मङ्गलरवा लङ्काभिमुखस्य रामस्य ॥३२॥

यथा चन्द्रःपरिवर्धते श्वेतपक्षे तथा च खेचरबलेन। आपूर्यते पद्माभोऽधिकं सुग्रीवसन्निहितः ॥३३॥

राजा किष्किन्धिपतिः, हनुमान्-दुमर्षणो नलो-नीलः। तथा च सुसेनः शल्युः बहवः कुमुदादयः सुभटाः ॥३४॥

एते वानरचिन्हा महाबलाः सकलसाधनसमग्राः। आपूर्यमोणगगनं यान्ति महातूर्यकृतशब्दाः ॥३५॥

हारो विराधिकस्यापि चिन्हं जम्बूनदस्य वटवृक्षः। सिंहरवस्य च सिंहो हस्ती पुन मेंघकान्तस्य ॥३६॥

यानै र्वाहनैश्च विमान-गज-तुरग-रथवरादिभिः। गन्तुं समुद्यतास्ते लङ्काभिमुखाः पवनवेगाः ॥३७॥

दिव्यविमानारुढः पद्मः सह लक्ष्मणेन व्रजन्। शोभते सुभटपरिमित इन्द्र इव लोकपालैः ॥३८॥

---

१. सिद्धिं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह ते खणेण पत्ता, वेलंधरपव्वयं मणभिरामं । वेलंधरपुरसामी, जत्थ समुद्दो वसइ राया ॥३९॥

वाणरबलं निएउं, त्थ समुद्दो विनिग्गओ सिग्घं । नियबलेण समग्गो, नलस्स जुज्झे समावडओ ॥४०॥

अह सो समुद्दराया, नलेण जिणिऊण रणमुहे बद्धो । मुक्को य नियनयरे, परिट्ठिओ राहवं पणओ ॥४१॥

रयणसिरी कमलसिरी, रयणसलाया तहेव गुणमाला । एयाउ समुद्देणं, दिन्नाओ लच्छिनिलयस्स ॥४२॥

तत्थ सुवेलपुरवरे, रयणिं गमिऊण उग्गए सूरे । लङ्काहिमुहा चलिया, जयसद्दुग्घुट्ठतूररवा ॥४३॥

वाणरबलेण दिट्ठा, लंका वरभवण-तुङ्गपागारा । सागरवरस्स मज्झे, आरामुज्जाणसुसमिद्धा ॥४४॥

नयरीए समासन्ने, हंसद्दीवं तओ समणुपत्ता । अह ते हंसरहनिवं, जिणिऊणं वासिया तत्थ ॥४५॥

भामण्डलस्स पुरिसो, रामेण पवेसिओ पवणवेगो । गन्तूण तस्स सव्वं, विग्गहमादओ परिकहेइ ॥४६॥

जत्तो जत्तो विहियसुकया जन्ति वीरा मणुस्सा, तत्तो तत्तो विजियरिउणो भोगसङ्गं लहन्ति ।
ताणं लोए न भवइ परं किंचि कज्जं, असज्झं, तम्हा धम्मं कुणह विमलं लोगनाहाणुचिण्णं ॥४७॥

॥ इय पउमचरिए लङ्कापत्थाणाभिहाणं नामं चउपन्नासइमं पव्वं समत्तं ॥

अथ ते क्षणेन प्राप्ता वेलंधरं पर्वतं मनोभिरामम् । वेलंधरपुरस्वामी यत्र समुद्रो वसति राजा: ॥३९॥

वानरबलं दृष्ट्वा तत्र समुद्रो विनिर्गत: शीघ्रम् । निजबलेन समग्रो नलस्य युद्धे समापतित: ॥४०॥

अथ स समुद्रराजा नलेन जित्वा रणमुखे बद्ध: । मुक्तश्च निजनगरे परिस्थितो राघवं प्रणत: ॥४१॥

रत्नश्री: कमलश्री रत्नशलाका तथैव गुणमाला । एता: समुद्रेण दत्ता लक्ष्मीनिलयाय ॥४२॥

तत्र सुवेलपुरवरे रजनीं गमयित्वोद्गते सूर्ये । लङ्काभिमुखाश्चलिता जयशब्दोद्घृष्टतूर्यरवा: ॥४३॥

वानरबलेन दृष्टा लङ्का वरभवनोत्तुङ्गप्राकारा । सागरवरस्य मध्ये आरामोद्यानसुसमृद्धा ॥४४॥

नगर्या आसन्ने हंसद्वीपं तत: समनुप्राप्ता: । अथ ते हंसरथनृपं जित्वोषितास्तत्र ॥४५॥

भामण्डलस्य पुरुषो रामेण प्रवेशित: पवनवेग: । गत्वा तस्य सर्वं विग्रहादिं परिकथयति ॥४६॥

यत्र यत्र विहितसुकृता यान्ति वीरा मनुष्यास्तत्र तत्र विजितरिपवो भोगसङ्गं लभन्ते ।
तेषां लोके न भवति परं किंचित्कार्यमसाध्यं तस्माद्धर्मं कुरुत विमलं लोकनाथानुचीर्णम् ॥४७॥

॥ इति पद्मचरिते लङ्काप्रस्थानाभिधानं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५५. बिभीसणसमागमपव्वं

अह तत्थ वाणरबलं, समागयं जाणिऊण आसन्ने । वेला लवणजलस्स व, खुहिया लंकापुरी[1] सव्वा ॥१॥
आरुट्ठो दहवयणो, नियय मेलेइ साहणं सयलं । जाया घरे घरे च्चिय, संगामकहा जणवयस्स ॥२॥
संगाममहाभेरी, पहया पडुपडह-तूरसंघाया । सद्देण तेण सुहडा, सन्नद्धा सामियं पत्ता ॥३॥
एत्तो लंकाहिवई, संगामसमुज्जयं पणमिऊणं । नयविहिविहूयबुद्धी, बिभीसणो भणइ निसुणेहि ॥४॥
तुह पहु ! परिट्ठिया इह, इन्दस्स व संपया महाविउला । ससि-सङ्ख-कुन्दधवलो, भमइ जसो तिहुयणे सयले ॥५॥
महिलाहेउं सामिय !, मा नेहि परिक्खयं खणेण तुमं । अप्पेहि जणयतणया[2], इमाए किं कारणं सिद्धं ? ॥६॥
न य हवइ एत्थ दोसो, हवइ गुणो केवलो तिहुयणम्मि । सुहसायरे निमग्गो, भुञ्जसु विज्जाहरमहिड्ढिं ॥७॥
सुणिऊण वयणमेयं, आरुट्ठो इन्दई भणइ एवं । को तुज्झ आहियारो, जेण समुल्लवसि एरिसयं ? ॥८॥
जइ वेरियाण बीहसि, अहियं संगामकायरो सि तुमं । निक्खित्तसत्थदण्डो, पविससु भवणोदरं सिग्घं ॥९॥
निवडन्तसत्थनिवहे, संगामे मारिऊण पडि सत्तुं । खग्गेणाऽऽयड्ढिज्जइ, लच्छी वीरेण निक्खुत्तं ॥१०॥
लद्धूण उत्तमं चिय, महिलारयणं इमं वसुमईए । किं मुच्चइ दहवयणो, जहा तुमे भासियं वयणं ? ॥११॥

---

५५. बिभीषणसमागमपर्वम्

अथ तत्र वानरबलं समागतं ज्ञात्वाऽऽसन्ने । वेला लवणजलस्येव क्षुब्धा लङ्कापुरी सर्वा ॥१॥
आरुष्टो दशवदनो निजकं मेलयति साधनं सकलम् । जाता गृहे गृहे एव संग्रामकथा जनपदस्य ॥२॥
संग्राममहाभेरी प्रहता पटुपटहतूर्यसंघाता । शब्देन तेन सुभटाः सन्नद्धाः स्वामिनं प्राप्ताः ॥३॥
इतो लङ्काधिपतिं संग्रामसमुद्यतं प्रणम्य । नयविधिविधूतबुद्धि बिभीषणो भणति निश्रुणु ॥४॥
तव प्रभो ! प्रतिष्ठिता इहेन्द्रस्येव संपदो महाविपुलाः । शशि-शङ्ख-कुन्दधवलं भ्रमति यशस्त्रिभुवने सकले ॥५॥
महिलाहेतुं स्वामिन् ! मा नय परिक्षयं क्षणेन त्वम् । अर्पय जनकतनयामनया किं कारणं सिद्धम् ? ॥६॥
न च भवत्यत्र दोषो भवति गुणः केवलं त्रिभुवने । सुखसागरे निमग्नो भुङ्ग्धि विद्याधरमहर्द्धिम् ॥७॥
श्रुत्वा वचनमेतदारुष्ट इन्द्रजिद्‌भणत्येवम् । कस्तवाधिकारो येन समुल्लपस्येतादृशम् ? ॥८॥
यदि वैरिभ्यो बिभेष्यधिकं संग्रामकातरोऽसित्वम् । निक्षिप्तशस्त्रदण्डः प्रविश भवनोदरं शीघ्रम् ॥९॥
निपतच्छस्त्रनिवहे संग्रामे मारयित्वाप्रति शत्रुम् । खड्गेनाकृष्यते लक्ष्मी र्वीरेण निश्चित्तम् ॥१०॥
लब्ध्वोत्तममेव महिलारत्नमिदं वसुमत्याम् । किं मुञ्चति दशवदनो यथा त्वया भाषितं वचनम् ? ॥११॥

---

१. पुरीए पया-प्रत्य० । २. तणयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणिओ बिहीसणेणं, निब्भच्छणकारणं तओ वयणं । पुत्तत्तणेण जाओ, वइरी लंकाहिवस्स तुमं ॥१२॥

भवणे समुट्ठियं चिय, [१]अग्गी पूरेसि इन्धणेण तुमं । अहियं हियं ति मन्नसि, जंपन्तो एरिसं वयणं ॥१३॥

कञ्चणघणपायारं, [२]लङ्का लच्छीहरेण जाव न वि । भज्जइ सरेसु खिप्पं, ताव समप्पेहि वइदेहिं ॥१४॥

वज्जावत्तधणुधरं, रुसियं चिय राहवं समरमज्झे । लच्छीहरेण समयं, तुब्भे न य जोहिउं सक्का ॥१५॥

जे तस्स गया पणइं, सुहडा कइदीववासिणो बहवे । माहिन्द-मलय-तीरा, सिरिपव्वय-हणुरुहाईया ॥१६॥

केलीगिला य रयणा, तहे व वेलंधरा य नहतिलया । सञ्झाराया य तहा, दहिमुहदीवासया चेव ॥१७॥

एवं पभासयन्तं, बिभीसणं कोहपूरियामरिसो । आयड्ढिऊण खग्गं, दहवयणो उज्जओ हन्तुं ॥१८॥

अमरिसवसंगएणं, तेण वि उम्मूलिओ रयणथम्भो । काऊण महाभिुडी, जेट्ठस्स-अहिट्ठिओ पुरओ ॥१९॥

जुज्झं समुज्जया ते, कहकह वि निवारिया य भिच्चेहिं । नियभवणाणि नीया, इन्दइ तह भाणुकण्णेहिं ॥२०॥

रुट्ठो भणइ दहमुहो, निक्खमउ बिहीसणो मह पुरीओ । पडिकूलमाणसेणं, ठिएण किं तेण दुट्ठेणं ? ॥२१॥

सो एव भणियमेत्तो, बिहीसणो निग्गओ पुरवरीओ । अक्खोहिणीसु सहिओ, तीसाए पवरसेन्नस्स ॥२२॥

वज्जिन्दुघणेभा वि य, विज्जुपयण्डासणी य घोरा य । कालाइमहासुहडा, बिभीसणस्साऽऽसणसहीणा ॥२३॥

सबल-परिवारसहिया, नाणाविहजाण-वाहणारूढा । छायन्ता गयणयलं, हंसद्दीवम्मि अवइण्णा ॥२४॥

भणितो बिभीषणेन निर्भत्स्नकारणं ततो वचनम् । पुत्रत्वेनजातो वैरी लङ्काधिपस्य त्वम् ॥१२॥

भवने समुत्थितमेवाग्निं पूरयषीन्धनेन त्वम् । अधिकं हितमिति मन्यसे जल्पन्नेतादृशं वचनम् ॥१३॥

कञ्चनघनप्राकारां लङ्कां लक्ष्मीधरेण यावन्नापि । भज्यते शरैः क्षिप्रं तावत्समर्पय वैदेहीम् ॥१४॥

वज्रावर्तधनुर्धरं रुष्टमेव राघवं समरमध्ये । लक्ष्मीधरेण समकं यूयं न च योद्धुं शक्ताः ॥१५॥

ये तस्य गताः प्रणतिं सुभटाः कपिद्वीपवासिनो बहवः । माहेन्द्रमलयतीराः श्रीपर्वतहनुरुहादयः ॥१६॥

केलिगिलाश्च रत्नास्तथैव वेलंधराश्च नभस्तिलकाः । सन्ध्यारागाश्च तथा दधिमुखद्वीपवासका एव ॥१७॥

एवं प्रभाषमाणं बिभीषणं क्रोधपूरितामर्शः । आकृष्य खड्गं दशवदन उद्यतो हन्तुम् ॥१८॥

अमर्शवशंगतेन तेनाप्युन्मूलितो रत्नस्तम्भः । कृत्वा महाभृकूटीं ज्येष्ठस्याधिष्ठितः पुरतः ॥१९॥

युद्धं समुद्यतौ तौ कथंकथमपि निवारितौ च भृत्यैः । निजभवनानि नीताविन्द्रजित्तथा भानुकर्णैः ॥२०॥

रुष्टो भणति दशमुखो निष्काष्यतां बिभीषणो मम पुर्याः । प्रतिकूलभाषणेन स्थितेन किं तेन दुष्टेन ? ॥२१॥

स एवं भणितमात्रो बिभीषणो निर्गतः पुरवर्याः । अक्षौहिणिभिः सहितस्त्रिंशता प्रवरसैन्यस्य ॥२२॥

वज्रेन्दुघनेभा अपि च विद्युत्प्रचण्डाशनिश्च घोराः । कालादि महासुभटा बिभीषणस्याऽऽसन्स्वाधीनाः ॥२३॥

सबलपरिवारसहिता नानाविधयानविमानारुढाः । छादयन्तो गगनतलं हंसद्वीपे ऽवतीर्णाः ॥२४॥

---

१. अग्गि-प्रत्य० । २. लङ्कं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठुं बिहीसणबलं, जाओ च्चिय वाणराण आकम्पो । दारिद्दियाण नज्जइ, हिमवायहयाण हेमन्ते ॥२५॥
पउमो वज्जावत्तं, गेण्हइ लच्छीहरो वि रविभासं । अन्ने वि आउहकरा, जाया कइसेन्नसामन्ता ॥२६॥
जाव य वाणरसेन्नं, जायं चिय गहियपहरणावरणं । ताव य बिहीसणेणं, रामस्स पवेसिओ दूओ ॥२७॥
नमिऊण रामदेवं, दूओ परिकहइ परिफुडं सव्वं । सीयाए कारणेणं, भाइविरोहं जहावत्तं ॥२८॥
मज्झ तुमं इह सरणं, बिभीसणो भणइ नत्थि संदेहो । आणादाणेण पहू !, सम्माणं मे पयच्छाहि ॥२९॥
एयन्तरम्मि रामो, मन्तीहि समं तओ कुणइ मन्तं । मइसागरो पवुत्तो, मह वयणं ताव निसुणेहि ॥३०॥
छम्मेण कयाइ पहू !, बिहीसणो पेसिओ दहमुहेणं । अहवा कलुसं पि जलं, खणेण विमलत्तणमुवेइ ॥३१॥
अह भणइ मइसमुद्दो, मन्ती सत्थागमाण उप्पत्ती । जंपइ जणो विरोहो, जह जाओ ताण दोण्हं पि ॥३२॥
अन्नं च पहू ! सुव्वइ, बिहीसणो धम्म-नीइ-मइकुसलो । कह कुणइ असब्भावं, तुज्झुवरिं एरिसगुणो वि ? ॥३३॥
अहवा किं न विरोहो, हवइह एक्कोदराण लोभेणं । जह वत्तं अक्खाणं, तं एगमणो निसामेहि ॥३४॥
गिरिभूई गोभूई, दो वि जुवा णेमिसे परिवसन्ति । तत्थेव सूरदेवो, राया महिला मई तस्स ॥३५॥
सा ताण देइ दाणं, विप्पाणं सुकयकारणट्ठाए । हेमं ओयणछन्नं, सुविसुद्धं सुप्पभूयं च ॥३६॥
दट्ठूण गिरी हेमं, कुणइ विरोहं सहोयरेण समं । लोभमहागहगहिओ, [1]जाओ रिवुसरिसपरिणामो ॥३७॥

दृष्ट्वा बिभीषणबलं जात एव वानराणामाकम्पः । दरिद्राणां ज्ञायते हिमवातहतानां हेमन्ते ॥२५॥
पद्मो वज्रावर्तं गृह्णाति लक्ष्मीधरोऽपि रविभासम् । अन्येऽप्यायुधकरा जाताः कपिसैन्यसामन्ताः ॥२६॥
यावच्च वानरसैन्यं जातमेव गृहीतप्रहरणावरणम् । तावच्च बिभीषणेन रामस्य प्रवेशितो दूतः ॥२७॥
नत्वा रामदेवं दूतो परिकथयति परिस्फुटं सर्वम् । सीतायाः कारणेन भातृविरोधं यथावृत्तम् ॥२८॥
मम त्वमिह शरणं बिभीषणो भणति नास्ति संदेहः । आज्ञादानेन प्रभो ! सन्मानं मे प्रयच्छ ॥२९॥
एतदन्तरे रामो मन्त्रिभिः समं ततः करोति मन्त्रम् । मतिसागरः प्रोक्तो मम वचनं तावन्निश्रुणु ॥३०॥
छद्मना कदाचित्प्रभो ! बिभीषणः प्रेषितो दशमुखेन । अथवा कलुसमपिजलं क्षणेन विमलत्वमुपैति ॥३१॥
अथ भणति मतिसमुद्रो मन्त्री शास्त्रागमानामुत्पत्तिः । जल्पति जनो विरोधो यथा जातस्तयोर्द्वयोरपि ॥३२॥
अन्यच्चप्रभो ! श्रूयते विभीषणो धर्मनीतिमतिकुशलः । कथं करोत्यसद्भावं तवोपर्येतादृशगुणोऽपि ? ॥३३॥
अथवा किं न विरोधो भवतीहैकोदराणां लोभेन । यथा वृत्तमाख्यानं तदेकमना निशामय ॥३४॥
गिरिभूति र्गोभूति र्द्वावपि युवानौ नैमिष्ये परिवसतः । तत्रैव सुरदेवो राजा महिला मतिस्तस्य ॥३५॥
सा ताभ्यां ददाति दानं विप्राभ्यां सुकृतकारणार्थे । हेम ओदनच्छन्नं सुविशुद्धं सुप्रभूतं च ॥३६॥
दृष्ट्वा गिरि र्हेम करोति विरोधं सहोदरेण समम् । लोभमहाग्रहगृहीतो जातो रिपुसदृशपरिणामः ॥३७॥

---

१. जाओ य रिवूसपरिणामो-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्नं पि उवक्खाणं, कोसम्बीए महाधणो नाम । वणिओ कुरुविन्दा से, महिला पुत्ता य दो तस्स ॥३८॥

अहिदेवमहीदेवा, परलोयं पत्थिए तओ पियरे । सधणा य गया दोन्नि वि, परकूलं जाणवत्तेणं ॥३९॥

भण्डेण तेण रयणं, एक्कं घेत्तूण पडिनियत्ता ते । इच्छन्ति एक्कमेक्कं, हन्तूणं तिव्वलोहिल्ला ॥४०॥

आगन्तूण य सगिहं, जणणीए समप्पियं तु तं रयणं । सा वि य विसेण इच्छइ, घाएउं अत्तणो पुत्ते ॥४१॥

रुट्ठेहि तेहि रयणं, छूढं जउणानईए सलिलम्मि । तं धीवरेण लद्धं, पुणरवि ताणं घरे दिन्नं ॥४२॥

अह ते जणणीए समं, सामत्थेऊण जायसंवेगा । संचुण्णिय तं रयणं, सव्वे वि लयन्ति पव्वज्जं ॥४३॥

तम्हा लोहेण फुडं, हवइ विरोहो सहोयराणं पि । जह गिरि-गोभूईणं, तह अन्नाणं पि बहुयाणं ॥४४॥

सुणिऊण उवक्खाणं, एयं मन्तीण साहियं रामो । पडिहारं भणइ तओ, आणेहि बिभीसणं तुरियं ॥४५॥

पडिहारेण य सिट्ठो, बिभीसणो आगओ पउमनाहं । पणमइ पहट्ठमणसो, तेण वि अवगूहिओ धणियं ॥४६॥

मिलिए बिहीसणभडे, जाओ च्चिय वाणराण आणन्दो । ताव य समत्तविज्जो, पत्तो भामण्डलो सिग्घं ॥४७॥

रामेण लक्खणेण य, अहियं संभासिओ जयणपुत्तो । सुग्गीवमाइएहिं, अन्नेहिं विवाणरभडेहिं ॥४८॥

तत्थेव हंसदीवे, दियहा गमिऊण अट्ठ बलसहिया । लङ्काहिमुहा चलिया, सन्नद्धा राम-सोमित्ती ॥४९॥

अह जोयणाणि वीसं, रुद्धं तं तीए समरभूमीए । न य नज्जइ परिमाणं, आयामस्सातिदीहस्स ॥५०॥

अन्यदप्युपाख्यानं कौशाम्ब्यां महाधनो नाम । वणिक् कुरुविन्दा तस्य महिला पुत्रौ च द्वौ तस्य ॥३८॥

अहिदेवमहिदेवौ परलोकं प्रस्थिते ततः पितरि । सधनौ गतौ द्वावपि परकुलं यानपात्रेण ॥३९॥

भाण्डेन तेन रत्नमेकं गृहीत्वा प्रतिनिवृत्तौ तौ । इच्छत एकमेकं हन्तुं तीव्रलोभौ ॥४०॥

आगत्य च स्वगृहं जनन्यै समर्पितं तु तद्रत्नम् । साऽपि च विषेणेच्छति घातितुमात्मनः पुत्रौ ॥४१॥

रुष्टाभ्यां ताभ्यां रत्नं क्षिप्तं यमुनानद्याः सलिले । तद्धीवरेण लब्धं पुनरपि तयो गृहे दत्तम् ॥४२॥

अथ तौ जनन्या समं सामर्थ्यजातसंवेगौ । संचूर्ण्य तद्रत्नं सर्वेऽपि लान्ति प्रव्रज्याम् ॥४३॥

तस्माल्लोभेन स्फुटं भवति विरोधः सहोदराणामपि । यथा गिरि-गोंभूतयो स्तथाऽन्येषामपि बहूनाम् ॥४४॥

श्रुत्वोपाख्यानमेतन्मन्त्रिणा सहितं रामः । प्रतिहारं भणति तत आनय बिभीषणं त्वरितम् ॥४५॥

प्रतिहारेण च शिष्टो बिभीषण आगतः पद्नाभम् । प्रणमति पहृष्टमनास्तेनाप्याअवगूहितःऽत्यन्तम् ॥४६॥

मिलिते बिभीषणभटे जात एव वानराणामानन्दः । तावच्च समाप्तविद्यः प्राप्तो भामण्डलः शीघ्रम् ॥४७॥

रामेण लक्ष्मणेन चाधिकं संभाषितो जनकपुत्रः । सुग्रीवादिभिरन्यैरपिवानरभटैः ॥४८॥

तत्रैव हंसद्वीपे दिवसाङ्गमयित्वाऽष्टौ बलसहितौ । लङ्काभिमुखौचलितौ सन्नद्धौ रामसौमित्री ॥४९॥

अथ योजनानि विंशती रुद्धं तं तस्याः समरभूमेः । न च ज्ञायते परिमाणमायामस्यातिदीर्घस्य ॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाणाविहकयचिन्धं, नाणाविहगय-तुरङ्ग-पाइक्कं । दिट्ठं चिय एज्जन्तं, वाणरसेन्नं निसियरेहिं ॥५१॥

अह भाणुसरिसवण्णा, मेहनिहा गयणवल्लभा कणया । गन्धव्वगीयनयरा, सूरा तह कप्पवासी य ॥५२॥

सीहपुरा सोहा वि य, गीयपुरा मन्दिरा य बहुणाया । लच्छीपुरा य किन्नर-गीया य तहा महासेला ॥५३॥

सुरणेउरा य मलया, सिरिमन्ता सिरिपहा य सिरिनिलया । ससिनाया य रिवुजया, मत्तण्डा भाविसाला य ॥५४॥

आणन्दा परिखेया, जोइसदण्डा जयास-रयणपुरा । जे एव पुराहिवई, अन्ने वि समागया सुहडा ॥५५॥

एए अन्ने य बहू, अहियं सन्नाह-आउहाईसु । पूएइ रक्खसवई, पिया व पुत्ते सिणेहेणं ॥५६॥

अक्खोहिणी सहस्सा, हवन्ति चत्तारि बहुजणुद्दिट्ठा । रावणबलस्स एवं, मगहवई ! होइ परिमाणं ॥५७॥

अक्खोहिणीसहस्सं, एक्कं चिय वाणराण सव्वाणं । भामण्डलेण समयं, भणियं चउरङ्गसेन्नस्स ॥५८॥

राया कइद्धयाणं, समयं भामण्डलेण उज्जुत्तो । परिवेढिऊण रामो, लक्खणसहिओ ठिओ तत्थ ॥५९॥

पुण्णोदयम्मि पुरिसस्स दढा वि सत्तू, मित्तत्तणं उवणमन्ति कयाणुकारी।
पुण्णावसाणसमए विमला वि बन्धू, वेरी हवन्ति निययं पि हु छिद्दभाई ॥६०॥

॥ इय पउमचरिए विभीसणसमागमविहाणं नाम पञ्चावन्नं पव्वं समत्तं ॥

नानाविधकृतचिह्नं नानाविधगज-तुरङ्ग-पादातिम् । दृष्टमेवाऽऽयान्तं वानरसैन्यं निशाचरैः ॥५१॥

अथ भानुसदृशवर्णा मेघनिभा गगनवल्लभाः कनकाः । गान्धर्वगीतनगराः शूरास्तथा कल्पवासिनश्च ॥५२॥

सिंहपुराः शोभा अपि च गीतपुरा मन्दिराश्च बहुनादाः । लक्ष्मीपुराश्च किन्नरगीताश्च तथा महाशैलाः ॥५३॥

सुरनेपूराश्च मलयाः श्रीमन्तः श्रीप्रभाश्च श्रीनिलयाः । शशिनादाश्च रिपुजया मार्तण्डा भाविशालाश्च ॥५४॥

आनन्दा परिक्षेपा ज्योतिषदण्डा जयाश-रत्नपुराः । य एव पुराधिपतयोऽन्येऽपि समागताः सुभटाः ॥५५॥

एत अन्ये च बहवोऽधिकं सन्नाहायुधादिभिः । पूज्यते राक्षसपतिः पितेव पुत्रैः स्नेहेन ॥५६॥

अक्षौहिणीः सहस्राणि भवन्ति चत्वारो बहुजनोदिष्टाः । रावणबलस्येवं मगधपते ! भवति परिमाणम् ॥५७॥

अक्षौहिणीः सहस्रमेकमेव वानराणां सर्वेषाम् । भामण्डलेन समकं भणितं चतुरङ्गसैन्यस्य ॥५८॥

राजा कपिध्वजानां समकं भामण्डलेनोद्युक्तः । परिवेष्टय रामो लक्ष्मणसहितः स्थितस्तत्र ॥५९॥

पुण्योदये पुरुषस्य दृढा अपि शत्रवो मित्रत्वमुपनमन्ति कृतानुकारिणः ॥
पुण्यावसानसमये विमला अपि बन्धवो वैरिणो भवन्ति निजमपि हु छिद्रभाजः ॥६०॥

॥ इति पद्मचरित्रे बिभीषणसमागमविधानं नाम पञ्चपञ्चाशतं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५६. रावणबलनिग्गमणपव्वं

परिपुच्छइ मगहवई, गणाहिवं पणमिऊण भावेणं । अक्खोहिणीए भयवं !, कहेह एक्काए परिमाणं ॥१॥
अह भणइ इन्दभूई, अट्ठसु गणणासु भेयभिन्नासु । संजोएण चउण्हं, हवइ य अक्खोहिणी एक्का ॥२॥
भेओऽत्थ पढम पन्ती, सेणा सेणामुहं हवइ गुम्मं । अह वाहिणी उ पियणा, चमू तहाऽणिक्किणी अन्तो ॥३॥
एक्को हत्थी एक्को य रहवरो तिण्णि चेव वरतुरया । पञ्चेव य पाइक्का, एसा पन्ती समुद्दिट्ठा ॥४॥
पन्ती तिउणा सेणा, सेणा तिउणा मुहं हवइ एक्कं । सेणामुहाणि तिण्णि उ, गुम्मं एत्तो समक्खायं ॥५॥
गुम्माणि तिण्णि एक्का य वाहिणी सा वि तिगुणिया पियणा ।
पियणाउ तिण्णि य चमू, तिण्णि चमूऽणिक्किणी भणिया ॥६॥
दस य अणिक्किणिनामाउ होइ अक्खोहिणी अहऽक्खाया । संखा एक्केक्कस्स उ, अङ्गस्स तओ परिकहेमि ॥७॥
एयावीस सहस्सा, सत्तरिसहियाणि अट्ठ य सयाणि । एसा रहाण संखा, हत्थीण वि एत्तिया चेव ॥८॥
एक्कं च सयसहस्सं, नव य सहस्सा सयाणि तिण्णेव । पन्नासा चेव तहा, जोहाण वि एत्तिया संखा ॥९॥
पञ्चुत्तरा य सट्ठी, होइ सहस्साणि छ च्चिय सयाणि । दस चेव वरतुरङ्गा, संखा अक्खोहिणीए उ ॥१०॥
अट्ठारस य सहस्सा, सत्त सया दोण्णि सयसहस्साइं । एक्का य इमा संखा, सेणिय ! अक्खोहिणीए य ॥११॥

---

५६. रावणबलनिर्गमनपर्वम्

परिपृच्छति मगधपति र्गणाधिपं प्रणम्य भावेन । अक्षौहिण्या भगवन् ! कथयेकस्याः परिमाणम् ॥१॥
अथ भणतीन्द्रभूतिरष्टाभि र्गणनाभि र्भेदभिन्नाभिः । संयोगेन चतूर्णां भवति चाक्षौहिण्येका ॥२॥
भेदोऽत्र प्रथमा पंक्तिः सेना सेनामुखं भवति गुल्मम् । अथ वाहिनी तु पृतना चमूस्तथाऽनीकिन्यन्तः ॥३॥
एको हस्त्येकश्च रथवरस्त्रिण्येव वरतुरगाः । पञ्चैव च पादातिरेषा पङ्क्तिः समुद्दिष्टा ॥४॥
पङ्क्तिस्त्रिगुणा सेना सेना त्रिगुणा मुखं भवत्येकम् । सेनामुखानि त्रिणि तु गुल्ममितः समाख्यातम् ॥५॥
गुल्मानि त्रिण्येका च वाहिनी सापि त्रिगुणिता पृतना । पृतनायास्त्रिणि च चमूस्त्रिणि चमूरनीकिनी भणिता ॥६॥
दश चानीकिनीनां तु भवत्यक्षौहिण्यथाख्याता । संख्येकैकस्य त्वङ्गस्य ततः परिकथयामि ॥७॥
एकविंशतिः सहस्रा ससतिसहितान्यष्टौ च शतानि । एषा रथानां संख्या हस्तीनामप्येतावत्येव ॥८॥
एकं च शतसहस्रं नव च सहस्राः शतानि त्रिण्येव । पञ्चाशदेव तथा योधानामप्येतावती संख्या ॥९॥
पञ्चोत्तरा च षष्टी भवति सहस्राणि षडेव शतानि । दशैव वरतुरङ्गाः संख्याऽक्षौहिण्यां तु ।१०॥
अष्टादश च सहस्रा सप्तशता द्वे शतसहस्रे । एकश्चेमा संख्या श्रेणिक ! अक्षौहिण्याश्च ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह एत्तो रामबलं, दट्ठूणं आगयं समासन्ने । रक्खसभडा वि तुरिया, सन्नद्धा वाहणसमग्गा ॥१२॥

केइ भडा सहस त्ति य, सन्नाहसमोत्थया गहियसत्था । रुज्झन्ति कामिणीहिं, रणरसउक्कण्ठिया सूरा ॥१३॥

सन्नाहकण्ठसुत्ते, घेत्तूणं भणइ पिययमं कन्ता । सामि ! रणे आवडियं, पहणेज्जस अहिमुहं सुहडं ॥१४॥

अन्ना पियं नियच्छइ, जह पिट्ठिं रणमुहे न देसि तुमं । मा सहियणस्स पुरओ, ओगुट्ठिं नाह ! काहिसि मे ॥१५॥

का वि पियं रणतुरियं, अहियं ईसालुणी भणइ एवं । मोत्तूण मए सामिय !, किं तुह कित्ती पिया जाया ? ॥१६॥

अहिणववणङ्कियं ते, नाह ! तुमं वयणपङ्कयं एयं । जसलुद्धयस्स अहियं, चुम्बिस्से हं पविहसन्ती ॥१७॥

अन्ना वि वीरमहिला, चुम्बइ कन्तस्स चेव मुहकमलं । मोइज्जन्ती न मुयइ, कुसुमं पिव महुयरी सत्ता ॥१८॥

अन्ना वि [1]तत्थ सुहडी, कण्ठे दइयस्स गहियसत्थस्स । डोलायन्ती रेहइ, नलिणि व्व महागइन्दस्स ॥१९॥

एवं ते वरसुहडा, नाणाचेट्ठासु जणियसंबन्धा । अह भासिउं पयत्ता, कन्तासंथावणुल्लावे ॥२०॥

मा मे धरेहि सुन्दरि !, मुञ्चसु अन्नेहि [2]रणजसो गहिओ । पेच्छन्ताण वरतणू !, अम्हं किं जीवियव्वेणं ॥२१॥

धन्ना ते नरवसभा, भद्दे ! जे रणमुहं गया पढमं । जुज्झन्ति सवडहुत्ता, जणयन्ता रिवुबलाकम्पं ॥२२॥

करिवरदन्तुब्भिन्ना, डोलालीलाइयं रणे सहुडा । रिवुकयसाहुक्कारं, पुण्णेहि विणा न पावन्ति ॥२३॥

एक्कं चिय रणरागो, बिइयं चिय सुयणुपेमपडिबन्धो ।
पेमेण अमरिसेण य, दोण्णि वि भाए भडो जाओ ॥२४॥

अथेतो रामबलं दृष्ट्वाऽऽगतं समासन्ने । राक्षसभटा अपि त्वरिताः सन्नद्धा वाहनसमग्राः ॥१२॥

केऽपि भटाः सहसेति सन्नाहसमवस्तृता गृहीतशस्त्राः । रुध्यन्ते कामिनिभी रणरसोत्कण्ठिताः शूराः ॥१३॥

सन्नाहं कण्ठसूत्रं गृहीत्वा भणति प्रियतमं कान्ता । स्वामिन् ! रण आपतितं प्रहण्यादभिमुखं सुभटम् ॥१४॥

अन्या प्रियं निर्देशति यथा पृष्टिं रणमुखे न ददासि त्वम् । मा सखीजनस्य पुरतोऽपकृष्टिं नाथ ! करिष्यषि मे ॥१५॥

काऽपि प्रिय रणत्वरितमधिकमिर्ष्यालुणी भणत्येवम् । मुक्त्वा मां स्वामिन् ! किं तव कीर्त्तिः प्रिया जाता ? ॥१६॥

अभिवनव्रणाङ्कितं ते नाथ ! तद् वदनपङ्कजमेतद् । यशोलुब्धस्याधिकं चुम्बिस्येऽहं प्रविहसन्ती ॥१७॥

अन्याऽपि वीरमहिला चुम्बति कान्तस्यैव मुखकमलम् । मुच्यमानी न मुञ्चति कुसुममिव मधुकरी सक्ता ॥१८॥

अन्याऽपि तत्र सुभटी कण्ठे दयितस्य गृहीतशस्त्रस्य । दोलायन्ती शोभते नलिनीव महागजेन्द्रस्य ॥१९॥

एवं ते वरसुभटा नानाचेष्टाभिर्जनितसंबन्धाः । अथ भाषितुं प्रवृत्ताः कान्तासंस्थापनोल्लापान् ॥२०॥

मा मे धारय सुन्दरि ! मुञ्चान्यै रणयशो गृहीतः । पश्यतां वरतनु ! अस्माकं किं जीवितव्येन ? ॥२१॥

धन्यास्ते नरवृषभा भद्रे ! ये रणमुखं गता प्रथमम् । युध्यन्तेऽभिमुखा जनयन्तो रिपुबलाकम्पम् ॥२२॥

करिवरदन्तोद्भिन्ना दोलालीलायितं रणे सुभटाः । रिपुकृतसाधुकारं पुण्यैर्विना न प्राप्नुवन्ति ॥२३॥

एकमेव रणरागो द्वितीयमेव स्वजनप्रेमप्रतिबन्धः । प्रेम्णामर्षेण च द्वयोरपि भागयो र्भटो जातः ॥२४॥

---

१. तत्थ महिला कण्ठे-प्रत्य० । २. रणरसो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताण जसेण तिहुयणं, अलंकियं सुयणु ! वीरपुरिसाणं ।
जाण धणियस्स पुरओ, निवडन्ति रणम्मि असिघाया ॥२५॥

एएसु य अन्नेसु य, महुरालावेसु निययकन्ताओ । संथाविऊण सुहडा, निग्गन्तुं चेव आढत्ता ॥२६॥
पढमं विणिग्गया ते, हत्थ-पहत्था पुरीए बलसहिया । मारीची सीहकडी, तह य सयंभू अइबलो य ॥२७॥
सुय-सारणा य एत्तो, सूरससङ्क गयारि-वीहत्था । वज्जक्खो वज्जधरो, गभीरणाओ य नक्को य ॥२८॥
मयरो कुलिसनिणाओ, सुन्द निसुन्दो य उग्गणाओ य । कूरो य मालवन्तो, सहसक्खो विब्भमो चेव ॥२९॥
खरनिस्सणो य जम्बू, माली सिहि दुद्धरो महाबाहू । एए रहेसु सुहडा, विणिग्गया सीहजुत्तेसु ॥३०॥
वज्जोयरो कयन्तो इन्दाहोऽसणिरहो य चन्दणहो । वियडोयरो य मच्चू, सुभीसणो कुलिसउदरो य ॥३१॥
धूमक्खो मुइओ वि य, तडिजीहो तह भवे महामाली । कणओ कोहण-निहणो, धूमुद्दामो य खोभो य ॥३२॥
हिण्डी तहा मरुसरो, पयण्डडमरो य चण्डकुण्डो य । हालाहलमाईया, रहेसु दढवग्धजुत्तेसु ॥३३॥
विज्जासुकोसिओ वि य, भुयंगबाहू महाजुई चेव । सङ्खो तहा पसङ्खो, राओ भिन्नञ्जणाभो य ॥३४॥
नामेण पुप्फचूलो, रत्तवरो पुप्फसेहरो य तहा । सुहडो अणङ्गकुसुमो, घण्टत्थो कामवण्णो ? ॥३५॥
मयणसरो कामग्गी, अणङ्गरासी सिलीमुहो चेव । कणओ सोम-सुवयणो, तह य महाकाम हेमाभो ॥३६॥
एए वि रहवरेहिं, वाणरजुत्तेहि निग्गया सुहडा । संगामजणियरागा, अहियं चिय मुक्कबुक्कारा ॥३७॥

तेषां यशसा त्रिभुवनमलङ्कृतं सुतनु ! वीरपुरुषाणाम् । येषां स्वामिनः पुरतो निपतन्ति रणेऽसिधाताः ॥२५॥
एतैश्चान्यैश्च मधुरालापै र्निजकान्ताः । संस्थाप्य सुभटा निर्गन्तुमेवारब्धाः ॥२६॥
प्रथमं विनिर्गतौस्तौ हस्त-प्रहस्तौ पूर्या बलसहितौ । मारीची सिंहकटी तथा च स्वयंभूरतिबलश्च ॥२७॥
शुक-सारणावितः सूर्यशशांकौ गजारिविहस्तौ । वज्रयक्षो वज्रधरो गम्भीरनादश्च नक्रश्च ॥२८॥
मकरः कुलिशनिनादः सुन्दो निसुन्दश्चोग्रनादश्च । क्रुरश्च मालवान् सहस्राक्षो विभ्रम एव ॥२९॥
खरनिस्वनश्च जन्बूमाली शिखी दुर्द्धरो महाबाहुः । एते रथैः सुभटा विनिर्गताः सिंहयुक्तैः ॥३०॥
वज्रोदरः कृतान्त इन्द्राभोऽशनिरथश्च चन्द्रणखः । विकटोदरश्च मृत्युः सुभीषणः कुलिशोदरश्च ॥३१॥
धूम्राक्षो मुदितोऽपि च तडिज्जह्वस्तथा भवेन्महामाली । कनकः क्रोधन-निधनौ धुम्रोद्दामश्च क्षोभश्च ॥३२॥
हिण्डी तथा मरुत्स्वरः प्रचण्डोऽमरश्च चण्डकुण्डश्च । हालाहलादयो रथैर्दृढव्याघ्रयुक्तैः ॥३३॥
विद्याकौशिकोऽपि च भुजङ्गबाहु र्महाद्युतिरेव । शङ्खस्तथा प्रसङ्गो रागो भिन्नोऽञ्जनाभश्च ॥३४॥
नाम्ना पुष्पचूलो रक्तवरः पुष्पशेखरश्च तथा । सुभटोऽनङ्गकुसुमः घटस्थः कामवर्णश्च ॥३५॥
मदनस्वरः कामाग्निरनङ्गराशि शिलिमुख एव । कनकः सोम-सुवदनस्तथा च महाकामो हेमाभः ॥३६॥
एतेऽपि रथवरै वानरयुक्तै र्निगताः सुभटाः । संग्रामजनितरागा अधिकमेव मुक्तगर्जारवाः ॥३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीमो कयम्ब-विडवो, गयणाओ हवइ भीमणाओ य । सद्दूलकीलणो च्चिय, सीहबलङ्गो विलङ्गो य ॥३८॥
पल्हायणो य चवलो, चल-चञ्चलमाइया इमे सुहडा । लङ्काओ निप्फिडिया, रहेसु मायङ्गजुत्तेसु ॥३९॥
एए अन्ने य बहू, सुहडा हं केत्तिया परिकहेमि । अह अद्धपञ्चमाओ, कोडीओ वरकुमाराणं ॥४०॥
एएसु य अन्नेसु य, कुमारसीहेसु परिमिओ एत्तो । घणवाहणेण समयं, विणिग्गओ इन्दई सिग्घं ॥४१॥
जोइप्पहं विमाणं, आरुहिऊणं तिसूलगहियकरो । बहुसुहडकयाडोवो, विणिग्गओ भाणुकण्णो वि ॥४२॥
पुप्फविमाणारूढो, विणिग्गओ रावणो सह बलेणं । रहसुट्ठिएण पुहइं, आपूरन्तो गयणमग्गं ॥४३॥
रह-गय-तुरङ्गमेसु य, मय-महिस, वराह-वग्घ-सीहेसु । खर-करह-केसरीसु य, आरूढा निग्गया सुहडा ॥४४॥
अह रावणस्स सहसा, समुट्ठिया दारुणा समुप्पाया । अन्ने य बहुवियप्पा, रडन्ति अजयावहा सउणा ॥४५॥
माणेण अमरिसेण य, मूढा जाणन्तया वि अवसउणे । तह वि य विणिग्गया ते जुज्झत्थं निसियरा सव्वे ॥४६॥
एवं सव्वे पहरणकरा बद्धसन्नाहदेहा, नाणाचिन्धा पचलियधया कुण्डलोहट्टगण्डा ।
जाणारूढा जणियहरिसा एगसंगामचित्ता, संछायन्ता विमलगयणं निग्गया सूरवीरा ॥४७॥

॥ इय पउमचरिए रावणबलनिग्गमणं नाम छप्पन्नं पव्वं समत्तं ॥

भीमः कदम्बो-विटपो गजनादो भवति भीमनादश्च । शार्दूलक्रीडन एव सिंहबलोऽङ्गो विलङ्गश्च ॥३८॥
प्रह्लादनश्च चपलश्चल-चञ्चलादय इमे सुभटाः । लङ्काया निस्फिटिता रथै र्मातङ्गयुक्तैः ॥३९॥
एत अन्ये च बहवः सुभटा अहं कतिपयान् परिकथयामि । अथार्द्धपञ्चम कोट्यो वरकुमाराणाम् ॥४०॥
एतैश्चान्यैश्च कुमारसिंहैः परिकीर्ण इतः । घनवाहनेन समकं विनिर्गत इन्द्रजिच्छीघ्रम् ॥४१॥
ज्योतिष्पथं विमानमारूह्य त्रिशूलगृहीतकरः । बहुसुभटकृताटोपो विनिर्गतो भानुकर्णोऽपि ॥४२॥
पुष्पविमानारुढो विनिर्गतो रावणः सह बलेन । रभसोत्थितेन पृथिवीमापूरयन् गगनमार्गम् ॥४३॥
रथ-गज-तुरङ्गमेषु मृग-महिष-वराह-व्याघ्र-सिंहेषु । खर-करभ-केसरिषु चारुढा निर्गताः सुभटाः ॥४४॥
अथ रावणस्य सहसा समुत्थिता दारुणाः समुत्पादाः । अन्ये च बहुविकल्पा रटन्त्यजयावहाः शकुनाः ॥४५॥
मानेनामर्षेण च मूढा जानन्तोऽप्यपशकुनान् । तथापि च विनिर्गतास्ते युद्धाय निशाचराः सर्वे ॥४६॥
एवं सर्वे प्रहरणकरा बद्धसन्नाहदेहा नानाचिन्हा प्रचलितध्वजाः कुण्डलोपधृष्टगण्डाः ॥
यानारुढा जनितहर्षा एकसंग्रामचित्ताः सञ्च्छादयन्तो विमलगगनं निर्गता शूरवीराः ॥४७॥

॥ इति पद्मचरिते रावणबलनिर्गमनं नाम षट्पञ्चाशतं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५७. हत्थ-पहत्थवहणपव्वं

दट्ठूण रक्खसबलं, [१]उव्वेलं सायरं व एज्जन्तं । रह-गय-तुरंगसहिया, सन्नद्धा वाणरा सव्वे ॥१॥
राहवकज्जुज्जुत्ता, नल-नीलय-हणुय-जम्बवन्ता य । गयवरजुत्तेसु इमे, विणिग्गया सन्दणवरेसु ॥२॥
जयमित्तो य समाणो, चन्दाभो रइविवद्धणो चेव । रइवद्धणो य एत्तो, कुमुयावत्तो महिन्दो य ॥३॥
[२]पीईकरो महप्पा, अणुद्धरो दढरहो तहा सूरो । जोइप्पिओ बलो वि य, महाबलो अइबलो चेव ॥४॥
दुब्बुद्धि सव्वसारो, सव्वदसरहो तओ य आहट्ठो । अविणट्ठो संतासो, नाडो वि य बब्बरो सूरो ॥५॥
अह विग्घसूयणो वि य, बालो लोलो य मण्डलो य तहा । रणचन्दो चन्दरहो, कुसुमाउह, कुसुममालो य ॥६॥
पत्थारो हिमअङ्गोय अङ्गओ तह य चेव पियरूवो । एए रहेसु सुहडा, विणिग्गया हत्थिजुत्तेसु ॥७॥
सुहडो य पुण्णचन्दो, दुप्पेक्खो सुविहि सायरसरो य । पियविग्गहो य खन्दो, वज्जंसू अप्पडिग्घाओ ॥८॥
दुट्ठो कुट्ठगइरवो, तह चन्दणपायवो समाही य । बहुलो य कित्तिनामो, किरीड [३]इन्दाउहो धीरो ॥९॥
गयवरतासो अह संकडो य पहरादओ य सामन्ता । एए रहेसु सिग्घं, गयसंजुत्तेसु निप्फिडिया ॥१०॥
सीलो य विज्जुयनणो, बलो सपक्खो घणो य रयणो य ।
सम्मेओ वि चलो वि य, सालो कालो खितिधरो य ॥११॥

---

५७. हस्तप्रहस्तवधनपर्वम्

दृष्ट्वा राक्षसबलमुद्वेलं सागरमिवायान्तम् । रथ-गज-तुरङ्ग सहिताः सन्नद्धा वानराः सर्वे ॥१॥
राघवकार्योद्युक्ता नल-नील-हनुमज्जम्बवन्तश्च । गजवरयुक्तैरिमे विनिर्गताः स्यन्दनवरैः ॥२॥
जयमित्रश्च समानश्चन्द्राभो रतिविवर्धन एव । रतिवर्धन श्चेतः कुमुदावर्तो महेन्द्रश्च ॥३॥
प्रीतिकरो महात्माऽनुद्धरो दृढरथस्तथा चाहृष्टः । अविनष्टः संत्रासो नाडोऽपि च बर्बरः शूरः ॥५॥
अथ विघ्नसूदनोऽपि च बालो लोलश्च मण्डलश्च तथा । रणचन्द्रश्चन्द्ररथः कुसुमायुधः कुसुममालश्च ॥६॥
प्रस्तारो हिमांगोऽङ्गस्तथा चैव प्रियरूपः । एते रथैः सुभटा निर्गता हस्तियुक्तैः ॥७॥
सुभटश्च पूर्णचन्द्रो दुष्प्रेक्ष्यः सुविधिः सागरस्वरश्च । प्रियविग्रहश्च स्कन्दो वज्राश्रुरप्रतिघातः ॥८॥
दुष्टः कुष्टगतिरवस्तथा चन्दनपादपः समाधिश्च । बहुलश्च कीर्तिनामा किरीट इन्द्रायुधो धीरः ॥९॥
गजवरत्रासोऽथ संकटश्च प्रहरादयश्च सामन्ताः । एते रथैः शीघ्रं गजसंयुक्तै निस्फिटिताः॥१०॥
शीलश्च विद्युन्नयनो बलः स्वपक्षोघनश्च रत्नश्च । सम्मेतोऽप्यचलोऽपि च शालः कालः क्षितिधरश्च ॥११॥

---

१. सव्वेलं-प्रत्य० । २. पीयंकरो-प्रत्य० । ३. चन्दाउहो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोलो विकलो कालो, कलिङ्ग-चंडंसु-उज्झिओ कीलो । भीमो भीमरहो वि य, तरङ्गतिलओ सुसेलो य ॥१२॥
तरलो बली य धम्मो, मणहरणो महसुहो पमत्तो य । मद्दो मत्तो सारो, रयणजडी दूसणो कोणो ॥१३॥
अह भूसणो य वियडो, विराहिओ मणुरणो खणक्खेवो । नक्खत्तलुद्धनामो, विजओ य जओ य संगामो ॥१४॥
खेओ तहा-ऽरिविजओ, सुहडा नक्खत्तमालमाईया । एए रहेसु सिग्घं, विणिग्गया आसजुत्तेसु ॥१५॥
तडिवाहो मरुवाहो, रविमाणो जलयवाहणो भाणू । राया पयण्डमाली, रहेसु घणसन्निभेसु इमे ॥१६॥
जोइप्पभं विमाणं, तं चेव बिभीसणो समारूढो । अन्ने वि एवमाई, भणामि सुहडा समासेणं ॥१७॥
कन्तो य जुज्झवन्तो, अह कोमुइनन्दणो य वसभो य । कोलाहलो य सूरो, पभाविओ साहुवच्छल्लो ॥१८॥
जिणपेम्मो रहयन्दो, जसोयरो सागरो य जिणनामो । सुहडा य जिणमयाई, एए वि विमाणमारूढा ॥१९॥
पउमो सोमित्ती वि य, सुग्गीवो जणयनन्दणो चेव । एए नरिन्दवसभा, सविमाणा संठिया गयणे ॥२०॥
नाणाउहगहियकरा, नाणाविहवाहणेसु आरूढा । लङ्काहिमुहा चलिया, कइद्धया सहरिसुच्छाहा ॥२१॥
एत्तो समाहयाइं, उभयबलेसु वि महन्ततूराइं । पडुपडह-भेरि-झल्लरि-काहल-तिमिलाउलरवाइं ॥२२॥
भम्भा-[1]मुइङ्ग-डमरुय-ढक्का-हुंकार-सङ्खपउराइं । खरमुहि-हुडुक्क-पावय-कंसालयतिव्वसद्दाइं ॥२३॥
गय-तुरय-केसरीणं, सद्दो वित्थरइ महिस-वसहाणं । मयपक्खीण बहुविहो, कायरपुरिसाण भयजणणो ॥२४॥

लोलो विकलः कालः कलिङ्गःचंडांशूज्झितः कीलः । भीमो भीमरथोऽपि च तरङ्गतिलकः सुशैलश्च ॥१२॥
तरलो बली च धर्मो मनोहरणो महासुखः प्रमत्तश्च । मदोन्मतः सारो रत्नजटी दूषणः कोणः ॥१३॥
अथ भूषणश्च विकटो विराधितो मनुरणः क्षणक्षेपः । नक्षत्र लुब्धनामा विजयश्च जयश्च संग्रामः ॥१४॥
खेद स्तथारिविजयः सुभटा नक्षत्रमालादयः । एते रथैः शीघ्रं विनिर्गता अश्वयुक्तैः ॥१५॥
तडिद्वाहो मरुद्वाहो रविमानो जलदवाहनो भानुः । राजा प्रचण्डमाली रथै र्घनसन्निभैरिमे ॥१६॥
ज्योतिष्प्रभविमानं तमेव बिभीषणः समारुढः । अन्येऽप्येवमादयो भणामि सुभटाः समासेन ॥१७॥
कान्तश्च युद्धवानथ कौमुदीनन्दनश्च वृषभश्च । कोलाहलश्च शूरः प्रभावितः साधुवत्सलः ॥१८॥
जिनप्रेमो रथचन्द्रो यथोधरः सागरश्च जिननामः । सुभटाश्च जिनमतादय एत अपि विमानारुढाः ॥१९॥
पद्मः सौमित्रिरपि च सुग्रीवो जनकनन्दन एव । एते नरेन्द्रवृषभाः सविमानाः संस्थिता गगने ॥२०॥
नानायुधगृहीतकरा नानाविधवाहनेष्वारुढाः । लङ्काभिमुखाश्चलिताः कपिध्वजाः सहर्षोत्साहाः ॥२१॥
इतः समाहतान्युभयबलेष्वपि महातूर्याणि । पटुपटह-भेरी-झल्लरि-काहल-तिमिलाकुलरवाणि ॥२२॥
भम्भा-मृदङ्ग-डमरुक-ढक्का-हुंकारशङ्खप्रचुराणि । खरमुखी हुडुक्क-पावक-कांस्यालतीव्रशब्दानि ॥२३॥
गज-तुरग-केसरीणां शब्दो विस्तरति महिषवृषभानाम् । मृगपक्षीणां बहुविधः कातरपुरुषाणां भयजनकः ॥२४॥

---

१. मुइङ्गमद्दलढक्का-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुतूरनिणाएणं, भडाण वुक्कारवड्ढियरवेणं । न सुणेइ एक्कमेक्को, उल्लावं कण्णपडियं पि ॥२५॥
दोण्ह वि बलाण एत्तो, आलग्गे दारुणे महाजुज्झे । संखुभियवसुमईए, गिरी वि आकम्पिया सहसा ॥२६॥
उव्वेलो लवणजलो, पवाइओ मारुओ बहलरेणू । विवरीयं सरियाओ, वहन्ति समराणुभावेणं ॥२७॥
उभयबलेसु वरभडा, मोग्गर-सर-झसर-भिण्डिमालाइं । मुञ्चन्ति आउहाइं, उक्काइं व पज्जलन्ताइं ॥२८॥
सन्नद्धा रणसूरा, पहणन्ति गया-ऽसि-चक्कपहरेहिं । निययकुलं सावेन्ता, अन्नोन्नवहुज्जयमईया ॥२९॥
[१]आभिट्टा रयणियरा, चडक्कपहरोवमेसु घाएसु । तह जुज्झिउं पवत्ता, जह कइसेन्नं समोसरियं ॥३०॥
अन्ने समुट्ठिया पुण, वाणरसुहडा अभग्गरणपसरा । जुज्झन्ति सवडहुत्ता, रक्खससेन्नं विवाएन्ता ॥३१॥
अवसीयन्तं समरे, दट्ठूणं रावणस्स नियबलं । हत्थ-पहत्था तुरियं, समुट्ठिया अहिमुहा ताणं ॥३२॥
तं कइवराण सेन्नं पुणरवि भग्गं पहत्थ-हत्थेहिं । सहसा पलायमाणं, रुद्धं नल-नीलसुहडेहिं ॥३३॥
जुज्झम्मि समावडिए, उभयबलेसु वि पडन्तवरसुहडे । वहिओ नलेण हत्थो, तह य पहत्थो वि नीलेणं ॥३४॥
दट्ठूण मारिए ते, हत्थ-पहत्थे तओ नियसेन्नं । विवडन्तजोहतुरयं, रणमज्झाओ समोसरियं ॥३५॥

एवं पहाणेण विणा न कज्जं, उवेइ सिद्धिं ववसिज्जमाणं ।
जहा निसा रिक्ख-गहाणुवन्ना, न होइ जोण्हाविमलंसुहीणा ॥३६॥

॥ इय पउमचरिए हत्थ-पहत्थवहणं नाम सत्तावन्नं पव्वं समत्तं ॥

बहुतूर्यनिनादेन भटानां गर्जारवाकृष्टरवेण । न श्रुणोत्येकमेकमुल्लापं कर्णपतितमपि ॥२५॥
द्वयोरपि बलयोरित आलग्ने दारुणे महायुद्धे । संक्षुब्धवसुमत्यां गिरयोऽप्याकम्पिताः सहसा ॥२६॥
उद्वेलो लवणजलो प्रवाहितो मारुतो बहलरेणुः । विपरितं सरितो वहन्ति समरानुभावेन ॥२७॥
उभयबलेषु वरभटा मुद्गर-शर-झसर-भिण्डिमालानि । मुञ्चन्त्यायुधान्युल्कानीव प्रज्वलन्तानि ॥२८॥
सन्नद्धा रणशूराः प्रघ्नन्ति गदाऽसि चक्रप्रहारैः । निजकुलं श्रावयन्तोऽन्योन्यबहूद्यतमतयः ॥२९॥
प्रवृत्ता रजनिचराश्चडक्कप्रहारोपमैः घातै । तथा योद्धुं प्रवृत्ता यथा कपिसैन्यं समपसृतम् ॥३०॥
अन्ये समुत्थिताः पुनो वानरसुभटा अभग्नरणप्रसराः । युध्यन्तेऽभिमुखा राक्षससैन्यं विपादयन्तः ॥३१॥
अवसीदन्तं समरे दृष्ट्वा रावणस्य निजबलम् । हस्त-प्रहस्तौ त्वरितं समुत्थितावभिमुखास्तेषाम् ॥३२॥
तत्कपिवराणां सैन्यं पुनरपि भग्नं प्रहस्तहस्ताभ्याम् । सहसा पलायमानं रुद्धं नल-नील सुभटैः ॥३३॥
युद्धे समापतिते उभयबलेष्वपि पतद्वरसुभटे । वधितो नलेन हस्तस्तथा च प्रहस्तोऽपि नीलेन ॥३४॥
दृष्ट्वा मारितौ तौ हस्तप्रहस्तौ ततो निजसैन्यम् । विपतद्योधतुरगं रणमध्यात्समपसृतम् ॥३५॥

एवं प्रधानेन विना न कार्यमुपैति सिद्धिं व्यवस्यमानम् ।
यथा निशा नक्षत्रग्रहानुत्पन्ना न भवति ज्योत्स्नाविमलांशुहीना ॥३६॥

॥ इति पद्मचरिते हस्त-प्रहस्तवधनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. आहट्टा-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५८. नल-नील-हत्थ-पहत्थपुव्वभवपव्वं

काऊण सिरपणामं, पुच्छइ मगहाहिवो गणहरिन्दं । न य केणइ जियपुव्वा, हत्थ-पहत्था महासुहडा ॥१॥
कह नल-नीलेहि रणे, विवाइया अइबला वि ते भयवं ! । साहेहि निरवसेसं, एत्थं मे कोउयं परमं ॥२॥
तो भणइ इन्दभूई, सेणिय ! ताणं तु पुव्वसंबन्धं । निसुणेहि एगमणसो, कहेमि सव्वं जहावत्तं ॥३॥
अत्थि कुसत्थलनयरे, विप्पा एक्कोयरा दुवे गिहिणो । करिसणकम्माहिरया, ते इन्धण-पल्लवा नामं ॥४॥
न कुणन्ति साहुनिंदं, भिक्खादाणुज्जया विणीया य । जिणसासणपरिसङ्गं, इच्छन्ति सहावजोगणं ॥५॥
बीयं तु भाइजुयलं, अइकूरं निद्दयं असुहचित्तं । लोइयसुईसु मूढं, साहूणं निन्दणुज्जुत्तं ॥६॥
नरवइदाणनिमित्ते, जाए च्चिय दारुणे तओ कलहे । पावेहि तेहि निहया, अह इन्धण-पल्लवा दो वि ॥७॥
मुणिवरदाणफलेणं, हरिवरिसे भुञ्जिऊण भोग[१]विही । आउक्खयम्मि जाया, दोण्णि वि देवा विमाणेसु ॥८॥
ते पुण जे पावरया, मरिउं कालिञ्जरे महारण्णे । जाया दोण्णि वि ससया, बहुदुक्खसमाउले भीमे ॥९॥
तिव्वकसायाण इहं, पुरिसाणं साहुनिन्दणपराणं । इन्दियवसाणुगाणं, नियमेणं दोग्गईगमणं ॥१०॥
कालं काऊण तओ, नाणाजोणीसु भणिय तिरियत्ते । उप्पन्ना मणुयभवे, वक्कलिणो तावसा जाया ॥११॥

---

५८. नलनीलहस्तप्रहस्त पूर्वभव पर्वम्

कृत्वा शिरःप्रणामं पृच्छति मगधाधिपो गणधरेन्द्रम् । न च केनचिज्जितपूर्वौ हस्तप्रहस्तौ महासुभटौ ॥१॥
कथं नलनीलाभ्यां रणे विपादितावतिबलावपि तौ । भगवन् ! कथय निरवशेषमत्र मे कौतुकं परमम् ॥२॥
तदा भणतीन्द्रभूति श्रेणिक ! तेषां तु पूर्वसम्बन्धम् । निश्रुणु एकाग्रमनाः कथयामि सर्वं यथावृत्तम् ॥३॥
अस्ति कुशस्थलनगरे विप्रावेकोदरौ द्वौ गृहिणौ । कर्षणकर्माभिरतौ ताविन्धन-पल्लवौ नाम ॥४॥
न कुरुतः साधुनिन्दां भिक्षादानोद्यतौ विनीतौ च । जिनशासनपरिसंगमिच्छतः स्वभावयोगेन ॥५॥
द्वितीयं तु भ्रातृयुगलमतिक्रुरं निर्दयमशुभचित्तम् । लौकिकशूचिषु मूढं साधूनां निंदनोद्युक्तम् ॥६॥
नरपतिदाननिमित्ते जात एव दारुणे ततः कलहे । पापाभ्यां ताभ्यां निहतावेन्धनपल्लवौ द्वावपि ॥७॥
मुनिवरदानफलेन हरिवर्षे भुक्त्वा भोगविधिम् । आयुक्षये जातौ द्वावपि देवौ देवविमानेषु ॥८॥
तौ पुनर्यौ पापरतौ मृत्वा कालिञ्जरे महारण्ये । जातौ द्वावपि शशकौ बहुदुःखसमाकुले भीमे ॥९॥
तीव्रकषायाणामिह पुरुषाणां साधुनिन्दनपराणाम् । इन्द्रियवशानुगतानां नियमेन दुर्गतिगमनम् ॥१०॥
कालं कृत्वा ततो नानायोनिषु भ्रान्त्वा तिर्यक्त्वे । उत्पन्नौ मनुष्यभवे वल्कलिनौ तापसौ जातौ ॥११॥

---

१. भोगविहिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महइजडा महकाया, बालतवं अज्जिऊण कालगया । जाया अरिंजयपुरे, आसिणिदेवीए गब्भम्मि ॥१२॥
वण्हिकुमारस्स सुया, हत्थ-पहत्था सुर व्व रूवेणं । तेलोक्कपायडभडा, भिच्चा रयणासवसुयस्स ॥१३॥
पढमा सग्गाउ चया, दोण्णि वि मणुया तओ समुप्पन्ना । गिहिधम्मरया कालं, काऊण सुरा समुप्पन्ना ॥१४॥
पुण्णावसाणसमए, ते इन्धय-पल्लवा चुयसमाणा । जाया किक्किन्धिपुरे, नल-नीला रिक्खरयपुत्ता ॥१५॥
जं पावपरिणएहिं, ते इन्धय-पल्लवा पुरा वहिया । तं नल-नीलेहि रणे, हत्थ-पहत्था पुणो निहया ॥१६॥
जो जेण हओ पुव्वं, सो तेणं हम्मए न संदेहो । तम्हा न हणेयव्वो, अन्नो मा होहिई सत्तू ॥१७॥
जो जीवाणं सेणिय ! देइ सुहं सो हु भुञ्जए सोक्खं । दुक्खं दुक्खावेन्तो, पावइ नत्थेत्थ संदेहो ॥१८॥
एव इमं नल-नीलविहाणं, हत्थ-पहत्थवहं निसुणेउं । वज्जिय वेरपहं बहुदुक्खं, लेइ इमं विमलं जिणधम्मं ॥१९॥

॥ इय पउमचरिए नल-नील-हत्थ-पहत्थपुव्वभवाणुकित्तणं नाम अट्ठावन्नं पव्वं समत्तं ॥

महाजटौ महाकालौ बालतपोऽर्जयित्वा कालगतौ । जातावरिञ्जयपुरे आसिनिदेव्या गर्भे ॥१२॥
वह्निकुमारस्य सुतौ हस्त-प्रहस्तौ सुराविव रुपेण । त्रैलोक्यप्रकटभयौ भृत्यौ रत्नश्रवःसुतस्य ॥१३॥
प्रथमौ स्वर्गाच्च्युतौ द्वावपि मनुष्यौ ततः समुत्पन्नौ । गृहिधर्मरतौ कालं कृत्वा सुरौ समुत्पन्नौ ॥१४॥
पुण्यावसानसमये ताविन्धनपल्लवौ च्युतौ सन्तौ । जातौ किष्किन्धिपुरे नलनीलौ ऋक्षरजःपुत्रौ ॥१५॥
यत्पापपरिणताभ्यां ताविन्धनपल्लवौ पुरा हतौ । तन्नलनीलाभ्यां रणे हस्त-प्रहस्तौ पुन र्निहतौ ॥१६॥
यो येन हतः पूर्वं स तेन हन्यते न संदेहः । तस्मान्न हन्तव्योऽन्यो मा भविष्यति शत्रुः ॥१७॥
यो जीवानां श्रेणिक ! ददाति सुखं स हु भुनक्ति सुखं । दुःखं दुःखायन् प्राप्नोति नास्त्यत्र संदेहः ॥१८॥
एवेमं नल-नीलविधानं हस्त-प्रहस्तवधं निःश्रुत्य । वर्जित्वा वैरपथं बहुदुःख लातामंविमलं जिनधर्मम् ॥१९॥

॥ इति पद्मचरिते नल-नील-हस्त-प्रहस्त पूर्वभवानुत्कीर्तनं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५९. विज्जासन्निहाणपव्वं

हत्थ-पहत्था समरे, निहया नाऊण रावणस्स भडा । बहवो कोहवसगया, समुट्ठिया तत्थ रणसूरा ॥१॥
सीहकडी मणी वि य, सयंभु-सुय-सारणा य संभू य । चन्दो य तहा अक्को, गओ य बीभच्छनामो य ॥२॥
सुहडो जरो य अक्को, मयरो वज्जक्खनामधेओ य । गम्भीराई एए, सन्नद्धा [1] रणरसुच्छाहा ॥३॥
केसरिजुत्तेसु इमे, रहेसु असि-कणय-तोमरविहत्था । दिट्ठा य उत्थरन्ता, निसायरा वाणरभडेहिं ॥४॥
मयणङ्कुर-संतावा, अक्कोसा-ऽऽणन्दणा तहा हरिया । नहपुप्फुत्थावग्घा, एए यपीयंकराईया ॥५॥
एक्केक्कमाण जुज्झं, आवडियं दारुणं वरभडाणं । जह आउहेहि जायं, जलई व नहङ्गणं सहसा ॥६॥
मारिज्जेण समाणं, संतावो रणमुहे समावडिओ । पहओ सीहकडीणं, उद्दामो विग्घनामेणं ॥७॥
अक्कोस-सारणाणं, जुज्झं सुय-सारणाण अब्भिट्टं । असि-कणय-चक्क-तोमरं-संघट्टुट्ठन्तजालोहं ॥८॥
निहओ च्चिय संतावो, मारीजिभडेण नन्दणेण जरो । पहओ सीहकडीणं, विग्घो उद्दामकित्तीणं ॥९॥
एए रणम्मि सुहडा, सोऊण विवाइया सभज्जाओ । रोवन्ति जाव कलुणं, ताव य अत्थंगओ सूरो ॥१०॥
सूरुग्गमम्मि पुणरवि, समुट्ठिया उभयसेन्नसामन्ता । सन्नद्धबद्धचिन्धा, गहियाउह-पहरणा-ऽऽवरणा ॥११॥

---

५९. विद्यासन्निधान पर्वम्

हस्त-प्रहस्तौ समरे निहतौ ज्ञात्वा रावणस्य भटाः । बहवः कोपवशगताः समुत्थितास्तत्र रणशूराः ॥१॥
सिंहकटी मान्यपि च स्वयंभू-शुक-सारणाश्च शंभुश्च । चन्द्रश्च तथाऽर्को गतश्च बिभत्सनाम च ॥२॥
सुभटो ज्वरश्चार्को मकरो वज्राक्षनामधेयश्च । गम्भीरादय एते सन्नद्धा रणरसोत्साहाः ॥३॥
केसरियुक्तैरिमे रथैरसि-कनक-तोमरविहस्ताः । दृष्टाश्चावस्तरन्तो निशाचरा वानरभटैः ॥४॥
मदनाङ्कुरसंतापा आक्रोशाऽऽनन्दनास्तथा हरिताः । नभः पुष्पास्त्रव्याघ्राः एते च प्रियंकरादयः ॥५॥
एकैकेषां युद्धमापतितं दारुणं वरभटानाम् । यथायुधैर्जातं जलतीव नभोऽङ्गनं सहसा ॥६॥
मारीचिणा समानं संतापो रणमुख आपतितः । प्रहतःसिंहकटीनोद्दामो विघ्ननाम्ना ॥७॥
आक्रोश-सारणानां युद्धं शुक-सारणानां प्रवृत्तम् । असि-कनक-चक्र-तोमर-संघटोत्तिष्ठज्ज्वालोधम् ॥८॥
निहत एव संतापो मारिचिभटेन नन्दनेन ज्वरः । प्रहतः सिंहकटिना विघ्नं उद्दामकीर्त्तिना ॥९॥
एतान्रणे सुभटान्श्रुत्वा विपादितात्स्वभार्याः । रुदन्ति यावत्करुणं तावच्चास्तंगतः सूर्यः ॥१०॥
सूर्योदये पुनरपि समुत्थिता उभयसैन्यसामन्ताः । सन्नद्धबद्धचिह्ना गृहीतायुधप्रहरणावरणाः ॥११॥

---

१. रणसमुच्छाहा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्जक्खो खवियारी, मइन्ददमणो विही य सम्भू य । हवइ सयंभू य तहा, चन्दक्को वज्जउयरो य ॥१२॥
कोहभडेण रणमुहे, सहसा आयारिओ य खवियारी । अह सो मयारिदमणो, बाहुबलीणं समाहूओ ॥१३॥
वज्जोयरेण निहओ, सद्दूलो गरुयसत्तिपहरेणं । कोवेण य खवियारी, सम्भू घाएइ य विसालं ॥१४॥
विजओ य जट्ठिपहओ, मरणं चिय पाविओ सयंभूणं । एवं अन्ने वि भडा, घाइज्जन्ते निसियरेहिं ॥१५॥
वाणरकेऊण बलं, अवसीयन्तं रणे पलोएउं । सयमेव पवणपुत्तो, समुट्ठिओ रहवरारूढो ॥१६॥
एन्तं दट्ठूण रणे, हणुयं जंपन्ति रक्खसा भीया । अज्ज इमो विहवाओ, काहिइ बहुयाउ महिलाओ ॥१७॥
हणुयस्स सवडहुत्तो, समुट्ठिओ रक्खसुत्तमो माली । सरनिवहं मुञ्चन्तो, मेहो इव सलिलधाराओ ॥१८॥
सुणिसियखुरुप्पछिन्नं, तं सरनिवहं खणेण काऊणं । भञ्जइ मालिनरिन्दं, हणुओ सीहो इव गइन्दं ॥१९॥

पविसरमुहो निरुद्धो, सहसा वज्जोयरेण पवणसुओ ।
छिन्नधय-छत्त-कवओ, सो वि य विरहो कओ सिग्घं ॥२०॥

अन्नं रहं विलग्गो, जुज्झन्तो सत्ति-सव्वल-सरेहिं । हणुयन्तेण रणमुहे, सो वि य वज्जोदरो निहओ ॥२१॥
दट्ठूण तं विवन्नं, रुट्ठो लङ्काहिवस्स अङ्गरुहो । नामेण जम्बुमाली, आयारइ पवणपुत्तं सो ॥२२॥
उट्ठियमेत्तेण तओ, रावणपुत्तेण अद्धयन्देणं । हणुयस्स कणयदण्डो, वाणरचिन्धो धओ च्छिन्नो ॥२३॥
कप्पेऊणं तस्स वि, हणुएणं झत्ति धणूवरं छिन्नं । उक्कत्तियं च कवयं, नज्जइ पोराणयं वत्थं ॥२४॥

वज्राक्षः क्षपितारी मृगेन्द्रदमनो विधिश्च शम्भुश्च । भवति स्वयंभूश्च तथा चन्द्रार्को वज्रोदरश्च ॥१२॥
क्रोधभटेन रणमुखे सहसाऽऽकारितः क्षपितारी । अथ स मृगादिदमनो बाहुबलिना समाहूतः ॥१३॥
वज्रोदरेण निहतः शार्दूलो गुरुकशक्तिप्रहारेण । कोपेन च क्षपितारी शम्भु घातयति च विशालम् ॥१४॥
विजयश्च यष्टिप्रहतो मरणमेव प्रापितः स्वयंभूवा । एवमन्येऽपि भटाः घात्यन्ते निशाचरैः ॥१५॥
वानरेकेतुना बलमवसीदयन्तं रणे प्रलोक्य । स्वयमेव पवनपुत्रः समुत्थितो रथवरारुढः ॥१६॥
आयान्तं दृष्ट्वा रणे हनुमन्तं जल्पन्ति राक्षसा भीताः । अद्यायं विधवाः करिष्यति बहवो महिलाः ॥१७॥
हनुमतोऽभिमुखः समुस्थितो राक्षसोत्तमो माली । शरनिवहं मुञ्चन्मेघ इव सलिलधाराः ॥१८॥
सुनिशितक्षुरप्रछिन्नं तच्छरनिवहं क्षणेन कृत्वा । भनक्ति मालिनरेन्द्रं हनुमान् सिंह इव गजेन्द्रम् ॥१९॥
प्रविसरमुखो निरुद्धः सहसा वज्रोदरेण पवनसुतः । छिन्न ध्वज-छत्र-कवचः सोऽपि च विरथः कृत शीघ्रम् ॥२०॥
अन्य रथं विलग्नो युध्यमानःशक्ति-सर्वल-शरैः । हनुमता रणमुखे सोऽपि च वज्रोदरो निहतः ॥२१॥
दृष्ट्वा तं विपन्नं रुष्टो लङ्काधिपस्याङ्गरुहः । नाम्ना जम्बूमाल्याकारयति पवनपुत्रं सः ॥२२॥
उत्थितमात्रेण ततो रावणपुत्रेणार्द्धचन्द्रेण । हनुमतः कनकदण्डो वानरचिह्नो ध्वजश्छिन्नः ॥२३॥
कर्त्तित्वा तस्यापि हनुमता शीघ्रं धनुर्वरं छिन्नं । उत्कर्तितं च कवचं ज्ञायते पौराणकं वस्त्रम् ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुट्ठो य जम्बुमाली, अन्नं आबन्धिऊण सन्नाहं। पहरइ सरेसु हणुयं, देहे नीलुप्पलाभेसु ॥२५॥
पवणसुएणं तत्तो, सीहसयं सट्ठिसंजुयं मुक्कं। दाढाकरालवयणं, ललन्तजीहं जलियनेत्तं ॥२६॥
तं केसरीहि सेन्नं, विद्धत्थं गय-तुरङ्ग-पाइक्कं। संगामपराहुत्तं, दट्ठूण महोयरो कुद्धो ॥२७॥
जाव य महोयरेणं, समयं हणुयस्स वट्टए जुज्झं। ताव य निसायरेहिं, निवारिया केसरी सव्वे ॥२८॥
काऊण वसे सीहा, समुट्ठिया रक्खसा समन्तेणं। मुञ्चन्ताउहनिवहं, उवरिं हणुयस्स ते कुविया ॥२९॥
ते आउहसंघाया, मुक्का हणुयस्स रक्खसभडेहिं। समणस्स जहुक्कोसा, न कुणन्ति मणस्स परितावं ॥३०॥
रयणियरवेढियं तं, दट्ठूण कइद्धया महासुहडा। गय-तुरयसमारूढा, समुट्ठिया पवणपरिहत्था ॥३१॥
पीइंकरो सुसेणो, नलो य नीलो विराहिओ चेव। संतावो सीहकडी, रविजोई अइबलो सुहडो ॥३२॥
जम्बूणयपुत्ताई, रहेसु गय-तुरय-सीहजुत्तेसु। हणुयस्स सत्तुसेन्नं, जोहेऊणं समाढत्ता ॥३३॥
निद्दयपहराभिहयं, वाणरसुहडेसु रक्खसाणीयं। भग्गं परीसहेहि व, चित्तं असमत्थजोइस्स ॥३४॥
दट्ठूण भाणुकण्णो, निययबलं वाणरेसु भज्जन्तं। कुविओ तिसूलपाणी, अहिमुहिहूओ रिउभडाणं ॥३५॥
दट्ठूण य एज्जन्तं, वीरं रणसत्ति-कन्तिदिप्पन्तं। सुहडा सुसेणमाई, तस्स ठिया अभिमुहा पुरओ ॥३६॥
नामेण चन्दरस्सी, चन्दाभो चेव तह य जसकन्तो। रइवद्धणो य अङ्गो, सम्मेओ अङ्गओ चेव ॥३७॥
कुन्तो बली तुरङ्गो, चन्दो ससिमण्डलो सुसारो य। रयणजडी जयनामो, वेलक्खो वीवसंतो य ॥३८॥

रुष्टश्चजम्बूमाल्यन्यमाबध्य सन्नाहम्। प्रहरति शरैर्दारुणं देहे नीलोत्पलाभैः ॥२५॥
पवनसुतेन ततः सिंहशतं षष्टिसंयुक्तं मुक्तम्। दंष्ट्रा करालवदनं ललज्जीव्हं ज्वलितनेत्रम् ॥२६॥
तं केसरिभिः सैन्यं विध्वस्तं गज-तुरग-पादातिम्। संग्रामपराङ्मुखं दृष्ट्वा महोदरः क्रुद्धः ॥२७॥
यावच्च महोदरेण समकं हनुमतो वर्तते युद्धम्। तावच्च निशाचरैः निवारिताः केसरिणः सर्वे ॥२८॥
कृत्वा वशे सिंहान्समुत्थिता राक्षसाः समन्तेन। मुञ्चदायुधनिवहमुपरि हनुमतस्ते कुपिताः ॥२९॥
त आयुधसंघाता मुक्ता हनुमतो राक्षसभटैः। श्रमणस्य यथोत्क्रोशा न कुर्वन्ति मनसः परितापम् ॥३०॥
रजनिकरवेष्टितं तं दृष्ट्वा कपिध्वजा महासुभटाः। गज-तुरगसमारुढाः समुत्थिताः पवनदक्षाः ॥३१॥
प्रीतिकरः सुसेनो नलश्च नीलो विराधित एव। संतापः सिंहकटी रविज्योतिरतिबलः सुभटः ॥३२॥
जम्बूनदपुत्रादयो रथेषु गज-तुरग-सिंहयुक्तेषु। हनुमतः शत्रुसैन्यं योद्धुं समारब्धाः ॥३३॥
निर्दयप्रहाराभिहतं वानरसुभटै राक्षसानीकम्। भग्नं परिषहैरिव चित्तमसमर्थयोगिनः ॥३४॥
दृष्ट्वा भानुकर्णो निजबलं वानरै र्भज्यमानम्। कुपितस्त्रिशूलपाणिरभिमुखो रिपुभटानाम् ॥३५॥
दृष्ट्वा चायान्तं वीरं रणशक्तिकान्तिदीप्यन्तम्। सुभटाः सुसेनादयस्तस्य स्थिता अभिमुखाःपुरतः ॥३६॥
नाम्ना चन्द्ररश्मिश्चन्द्राभ एव तथा च यशःकान्तः। रतिवर्धनश्चाङ्गः सम्मेतोऽङ्गद एव ॥३७॥
कुन्तो बली तुरङ्गश्चन्द्रः शशिमण्डलः सुसारश्च। रत्नजटी जयनामो वैलक्ष्यो विवस्वांश्च ॥३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एए अन्ने य बहू, सुहडा कोलाहलाइबलसहिया । जोहन्ति भाणुकण्णं, सव्वल-सर-झसरघाएसु ॥३९॥
अह ते वाणरसुहडा, रयणासवनन्दणेण रुट्ठेणं । दरिसणआवरणीए, विज्जाए थम्भिया सव्वे ॥४०॥
निद्दाधुम्मियनयणाण ताण हत्थाण आउहवराइं । गाढं चिय मूढाणं, सिढिलीभूयाण निवडन्ति ॥४१॥
निद्दावसंगए चिय, निययभडे पेच्छिऊण सुग्गीवो । ताणं कएणसिग्घं, विज्जं पडिबोहणिं मुयइ ॥४२॥
अह ते विबुद्धसन्ता, हणुयाईया समच्छरुच्छाहा । अहिययरं तेण समं, जुज्झं काऊणमाढत्ता ॥४३॥
धय-कवय-छिन्नछत्तं, संचुण्णिज्जन्तरहवर-तुरङ्गं । आलोइऊण सबलं, दहवयणो जुज्झिउं महइ ॥४४॥
जुज्झं समुच्छहन्तं, पियरं विन्नवइ इन्दइकुमारो । सन्तेण मए तुज्झं, ताय ! न जुत्तं रणं काउं ॥४५॥
एयं चिय वित्थिण्णं, संघट्टुट्ठेन्तगयघडाडोवं । थोवन्तरेण पेच्छसु, भज्जन्तं वाणराणीयं ॥४६॥
जणयस्स सिरपणामं, काउं तेलोक्कमण्डणं हत्थी । सन्नद्धबद्धकवओ, आरूढो इन्दइकुमारो ॥४७॥
तं कइवराण सेन्नं, नाणाविहगय-तुरङ्ग-पाइक्कं । गसियं पिव निस्सेसं, उट्ठियमेत्तेण वीरेणं ॥४८॥
आयण्णपूरिएहिं, सरेहि परिहत्थदच्छमुक्केहिं । तं वाणराण सेन्नं, मेहेण व छाइयं सव्वं ॥४९॥
हयविहयविप्परद्धं, सुग्गीवो पेच्छिऊण नियबलं । भामण्डलेण समयं, समुट्ठिओ सुहडपरिकिण्णो ॥५०॥
तुरएसु समं तुया, आवडिया गयवर सह गएसु । सामियकज्जुज्जुत्ता, जुज्झन्ति भडा सह भडेहिं ॥५१॥
रुट्ठेण इन्दईणं, भणिओ किक्किन्धिनरवई एत्तो । लङ्काहिवं पमोत्तुं, जं सेवसि भूमिगोयरियं ॥५२॥

एत अन्ये च बहवः सुभटाः कोलाहलादिबलसहिताः । युध्यन्ते भानुकर्णं सर्वल-शर-झसरघातैः ॥३९॥
अथ ते वानरसुभटा रत्नश्रवोनंदनेन रुष्टेन । दर्शनावरण्या विद्यया स्तम्भिताः सर्वे ॥४०॥
निद्राधुर्णितनयनानां तेषां हस्तेभ्य आयुधवराणि । गाढमेव मूढानां शिथीलीभूतानां निपतन्ति ॥४१॥
निद्रावशंगतानेव निजभटान्द्रष्ट्वा सुग्रीवः । तेषां कृतेन शीघ्रं विद्यां प्रतिबोधिनीं मुञ्चति ॥४२॥
अथ ते विबुद्धाःसन्तो हनुमदादिकाः समत्सरोत्साहाः । अधिकतरं तेन समं युद्धं कर्तुमारब्धाः ॥४३॥
ध्वज-कवच-छिन्नछत्रं संचूर्यमाणरथवरतुरङ्गम् । आलोक्य स्वबलं दशवदनो योद्धुं काङ्क्षते ॥४४॥
युद्धं समुत्सहमानं पितरं विज्ञापयतीन्द्रजित्कुमारः । सता मया तव तात ! न युक्तं रणं कर्तुम् ॥४५॥
एवमेव विस्तीर्णं संघट्टोत्तिष्ट्द्गजघटाटोपम् । स्तोकान्तरेण पश्यतु भञ्जन्तं वानरानीकम् ॥४६॥
जनकस्य शिरः प्रणाम कृत्वा त्रैलोक्यमण्डनं हस्तिनम् । सन्नद्धबद्धकवच आरुढ इन्द्रजित्कुमारः ॥४७॥
तत्कपिवराणां सैन्यं नानाविधगज-तुरङ्ग-पदातिम् । ग्रसितमिव निःशेषमुत्थितमात्रेण वीरेण ॥४८॥
आकर्णपूरितैः शरैः परिपूर्णदक्षमुक्तैः । तद्वानराणां सैन्यं मेघेनेव छादितं सर्वम् ॥४९॥
हतविहतविपीडितं सुग्रीवो दृष्ट्वा निजबलम् । भामण्डलेन समकं समुत्थितः सुभटपरिकीर्णः ॥५०॥
तुरगैः सम तुरगा आपतिता गजवरा सह गजैः । स्वामिकार्योद्योता युध्यन्ते भटाः सह भटैः ॥५१॥
रुष्टेनेन्द्रजिता भणितः किष्किन्धिनरपतिरितः । लङ्काधिपं प्रमुच्य यत्सेवसे भूमिगोचरितम् ॥५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयं अज्ज तुह सिरं, सिग्घं छिन्दामि अद्धयन्देणं । सो कुणउ वाणराहम !, परिरक्खं सामिसालो ते ॥५३॥
तो भणइ वाणरवई, किं ते भड ! बोक्किएहि बहुएहिं ? । अज्ज तुह माणभङ्गं, करेमि न हु एत्थ संदेहो ॥५४॥
सो एव भणियमेत्तो, चावं अप्फालिऊण सरनिवहं । मुञ्चइ दसाणणसुओ, किक्किन्धिवइस्स आरुट्ठो ॥५५॥
सो वि य तं एज्जन्तं, आयण्णाऊरिएहि बाणेहिं । छिन्दइ बलपरिहत्थो, निययाणियरक्खणट्ठाए ॥५६॥
अह मेहवाहणेणं, समरे भामण्डलो समाहूओ । रुद्धो विराहिएणं, पविसन्तो वज्जणक्को वि ॥५७॥
चक्केण वज्जणक्को, पहओ य विराहिएण रुट्ठेणं । तेण वि सो वच्छयले, समाहओ चक्कपहरेणं ॥५८॥
वाणरवई निरत्थो, लङ्कानाहस्स नन्दणेण कओ । तेण वि य जट्ठियारी, आउहसयसंकुलं रइयं ॥५९॥
अवयरिऊण गयाओ, मन्दोयरिनन्दणो रहारूढो । पेसेइ वारुणत्थं, नवजलहरसद्दनिग्घोसं ॥६०॥
अन्धारियं समत्थं, सेन्नं दट्ठूण वाणराहिवई । नासेइ वारुणत्थं, सिग्घं सो मारुयत्थेणं ॥६१॥
घणवाहणो वि सत्थं, अग्गेयं मुयइ जणयतणयस्स । भामण्डलो नरिन्दो, नासेइह वारुणत्थेणं ॥६२॥
मन्दोयरीए पुत्तो, विरहं भामण्डलं रणे काउं । पेसेइ तामसत्थं, कज्जलघणकसिणसच्छायं ॥६३॥
न य पेच्छन्ति महियलं, आयासं नेव अप्पयं न परं । सुहडा पणट्ठचेट्ठा, अवहियचक्खू तओ जाया ॥६४॥
घणवाहणेण एत्तो, विसधूमुग्गारपज्जलन्तेहिं । भामण्डलोऽतिगाढं, बद्धो च्चिय नागपासेहिं ॥६५॥
वाणरवई वि सिग्घं, भुयङ्गपासेहि बन्धिउं गाढं । उच्छूढो धरणियले, रावणपुत्तेण जेट्ठेणं ॥६६॥

एतदद्य तव शिरःशीघ्रं छिन्दाम्यर्द्धचन्द्रेण । स करोतु वानराधम ! परिरक्षं स्वामी तव ॥५३॥
तदा भणति वानरपतिः किं ते भट ! गर्जितै र्बहुभिः । अद्य तव मानभङ्गं करोमि न ह्वत्र संदेहः ॥५४॥
स एवं भणितमात्रश्चापमास्फाल्य शरनिवहम् । मुञ्चति दशाननसुतः किष्किन्धिपतेरारुष्टः ॥५५॥
सोऽपि च तमायान्तमाकर्णापूरितैर्बाणैः । छिन्दति बलपरिपूर्णो निजकानिकरक्षणार्थे ॥५६॥
अथ मेघवाहनेन समरे भामण्डलः समाहूतः । रुद्धो विराधितेन प्रविशन् वज्रणक्रोऽपि ॥५७॥
चक्रेण वज्रणक्रः प्रहतश्च विराधितेन रुष्टेन । तेनापि स वक्षःस्थले समाहतश्चक्रप्रहारेण ॥५८॥
वानरपति निरस्त्रो लङ्कानाथस्य नंदनेन कृतः । तेनापि चेष्टाचारी आयुधशतसंकुलं रचितम् ॥५९॥
अवतीर्य गजान्मन्दोदरिनन्दनो रथारुढः । प्रेषयति वारुणास्त्रं नवजलधरशब्दनिर्घोषम् ॥६०॥
अन्धारितं समस्तं सैन्यं दृष्ट्वा वानराधिपतिः । नाशयति वारुणास्त्रं शीघ्रं स मारुतास्त्रेण ॥६१॥
घनवाहनोऽपि शस्त्रमाग्नेयं मुञ्चति जनकतनयस्य । भामण्डलो नरेन्द्रो नाशयति वारुणास्त्रेन ॥६२॥
मन्दोदर्याः पुत्रो विरथं भामण्डलं रणे कृत्वा । प्रेषयति तामसास्त्रं कज्जलघनकृष्णसच्छायम् ॥६३॥
न च पश्यन्ति महीतलमाकाशं नैवात्मानं न परम् । सुभटा प्रनष्टचेष्टा अपहितचक्षुसस्ततो जाताः ॥६४॥
घनवाहनेनेतो विषधूम्रोद्धारप्रज्वलद्भिः । भामण्डलोऽतिगाढं बद्ध एव नागपाशैः ॥६५॥
वानरपतिरपि शीघ्रं भुजङ्गपाशै र्बध्वा गाढम् । उत्क्षिप्तो धरणितले रावणपुत्रेण ज्येष्टेन ॥६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ते पेच्छिऊण दोण्णि वि, भुयङ्गपासेसु नरवई बद्धे । सह लक्खणेण पउमं, बिभीसणो भणइ निसुणेह ॥६७॥
अह पेच्छ इन्दईणं, सरसंघट्टेण छाइयं गयणं । भामण्डल-सुग्गीवा, बद्धा वि हु नागपासेहिं ॥६८॥
बद्धे वाणरनाहे, विजिए भामण्डले इहं अम्हं । संघायपिण्डियाणं, होहइ मरणं न संदेहो ॥६९॥
अम्हं बले महायस !, एए दो नायगा महापुरिसा । जाया अणायगा वि हु, विज्जाहर-वाणराण चमू ॥७०॥
विच्छित्तछत्त-केऊ, संचुण्णेऊण रहवरं सिग्घं । गहिओ च्चिय पवणसुओ, सुव्वन्तं भाणुकण्णेणं ॥७१॥
जाव य धरणिनिसण्णे, भामण्डल-वाणराहिवे एए । न य गिण्हन्ति निसियरा, ताव निवारेहि गन्तूणं ॥७२॥
जाव य सोमित्तिसुयं, आभासइ राहवो ससंभन्तो । जोहेइ भाणुकण्णं, ताव च्चिय अङ्गयकुमारो ॥७३॥
दोण्हं पि ताण जुज्झं, वट्टइ विवडन्तसत्थसंघायं । ताव य भुयपासाओ, विणिग्गओ मारुई सिग्घं ॥७४॥
हणुमन्त-अङ्गया ते, आरूढा वरविमाणसिहरेसु । लक्खण-विराहिया वि य, आसासेन्ती सयाणीयं ॥७५॥
एयन्तरम्मि पत्तो, बिभीसणो इन्दई समरकंखी । दट्ठूण तं कुमारो, इमाणि हियएण चिन्तेइ ॥७६॥
तायस्स य एयस्स य, को भेओ ? जइ गविस्सए ताओ । न य मारिऊण पियरं, हवइ जसो निम्मलो लोए ॥७७॥
भामण्डल-सुग्गीवा, भुयङ्गपासेसु दारुणा बद्धा । मरिहिन्ति निच्छएणं, जुत्तं अवसप्पणं अम्हं ॥७८॥
परिचिन्तिऊण एवं, विणियत्ता ते रणाउ दो वि जणा । लच्छीहरेण दिट्ठा, रावणपुत्ता बलसमग्गा ॥७९॥
अह भाणिउं पवत्तो सोमित्तो सुणसु नाह ! मह वयणं । भामण्डल-सुग्गीवा, बद्धा भीमेहि नागपासेहिं ॥८०॥

तौ दृष्ट्वा द्वावपि भुजङ्गपाशैर्नरपती बद्धौ । सहलक्ष्मणेन पद्मं बिभीषणो भणति निश्रुणुत ॥६७॥
अथ पश्येन्द्रजिता शरसंघट्टेनच्छादितं गगनम् । भामण्डलसुग्रीवौ बद्धावपि हु नागपाशैः ॥६८॥
बद्धे वानरनाथे विजिते भामण्डले इहास्माकम् । संघातपिण्डितानां भविष्यति मरणं न संदेहः ॥६९॥
अस्मद्बले महायश ! एतौ द्वौ नायकौ पुरुषौ । जाताऽनायकाऽपि हु विद्याधर-वानराणां चमू ॥७०॥
विच्छिन्नछत्रकेतू संचूर्ण्य रथवरं शीघ्रम् । गृहीत एव पवनसुतः सुव्यक्तं भानुकर्णेन ॥७१॥
यावच्च धरणिनिषण्णान्भामण्डल-वानराधिपनेतान् । न च गृह्णन्ति निशाचरास्तावन्निवारय गत्वा ॥७२॥
यावच्च सौमित्रिसुतमाभाषते राघवः ससंभ्रान्तः । योधयति भानुकर्णं तावदेवाङ्गदकुमारः ॥७३॥
द्वयोरपि तयो र्युद्धं वर्तते विपतच्छस्त्रसंघातम् । तावच्च भुजपाशाद्विनिर्गतो मारुतिः शीघ्रम् ॥७४॥
हनुमदङ्गदौ तावदारुढौ वरविमानशिखरेषु । लक्ष्मण-विराधितावपि चाश्वासयत स्वानीकम् ॥७५॥
एतदन्तरे प्राप्तो बिभीषण इन्द्रजितं समरकांक्षी । दृष्ट्वा तं कुमार इमानि हृदयेन चिन्तयति ॥७६॥
तातस्य चेतस्य च कोभेदः ? यदि गवेष्यते तातः । न च मारयित्वा पितरं भवति यशो निर्मलो लोके ॥७७॥
भामण्डल-सुग्रीवौ भुजङ्गपाशै र्दारुणौ बद्धौ । मरिष्यतो निश्चयेन युक्तमपसर्पणमस्माकम् ॥७८॥
परिचिन्त्यैवं विनिवृत्तौ तो रणाद्द्वावपि जनौ । लक्ष्मीधरेण दृष्टौ रावणपुत्रौ बलसमग्रौ ॥७९॥
अथ भणितुं प्रवृत सौमित्री श्रुणु नाथ ! मम वचनम् । भामण्डल-सुग्रीवौ बद्धौ भीमै र्नागपाशैः ॥८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रावणपुत्तेहि इमे, निज्जन्ता पेच्छ निययपुरिहुत्ता । एएहि विणा अम्हे, किं जिप्पइ दहमुहो को वि ? ॥८१॥

पुण्णोदएण एत्तो, रामो सरिऊण लक्खणं भणइ । चिन्तेहि वरं सिग्घं, जो उवसग्गे तया लद्धो ॥८२॥

सरिऊण लक्खणेणं, तत्थ महालोयणो सुरो सहसा । अवहिविसएण नाउं, रामसयासं समल्लीणो ॥८३॥

पउमस्स देइ तुट्ठो, नामेणं सीहवाहिणी विज्जं । गरुडा परियणसहिया, पणामिया लच्छिनिलयस्स ॥८४॥

दोण्णि य रहे पयच्छइ, दिव्वामलपहरणेणपडिपुण्णे । अग्गेय-वारुणाइं, अन्नाणि य सुरवरत्थाणि ॥८५॥

नामेण विज्जुवयणं, देइ गयं लक्खणस्स सुरपवरो । दिव्वं हलं च मुसलं, पउमस्स वि तं पणामेइ ॥८६॥

संपत्ता महिमाणं, परमं दसरहसुया सुकयपुण्णा । देवो वि पीइपमुहो, कमेण निययं गओ ठाणं ॥८७॥

परभवसुकएणं होन्ति वीरा मणुस्सा, बहुरयणसमिद्धा भोगभागी सुरूवा ।
अरिभडनियरोहे तत्थ पावन्ति कित्ती, विमलधवलचित्ता जे हु कुव्वन्ति धम्मं ॥८८॥

॥ इय पउमचरिए विज्जासन्निहाणं नाम एगूणसट्ठं पव्वं समत्तं ॥

रावणपुत्राभ्यामिमौ नीयमानौ पश्य निजपुर्याभिमुखौ । एतै र्विनाऽस्मद्भ्यः किं जीयते दशमुखः कोऽपि ? ॥८१॥

पुण्योदयेनेतो रामः स्मृत्वा लक्ष्मणं भणति । चिन्तय वरं शीघ्रं य उपसर्गे तदा लब्धः ॥८२॥

स्मृत्वा लक्ष्मणेन तत्र महालोचनः सुरः सहसा । अवधिविषयेण ज्ञात्वा रामसकाशं समालीनः ॥८३॥

पद्मस्य ददाति तुष्टे नाम्ना सिंहवाहिनीं विद्याम् । गरुडा परिजनसहिता ऽर्पिता लक्ष्मीनिलयाय ॥८४॥

द्वावपि च रथौ प्रयच्छति दिव्यामलप्रहरणेनपरिपूर्णौ । आग्नेयवारुणान्यन्यानि च सुरवरास्त्राणि ॥८५॥

नाम्ना विद्युद्वदनं ददाति गजं लक्ष्मणाय सुरप्रवरः । दिव्यं हलं च मुशलं पद्मायपि तमर्पयति ॥८६॥

संप्राप्तौ महिमानं परमं दशरथसुतौ सुकृतपुण्यौ । देवोऽपि प्रीतिप्रमुखः क्रमेण निजकं गतः स्थानम् ॥८७॥

परभवसुकृतेन भवन्ति वीरा मनुष्या बहुरत्नसमृद्धा भोगभाजः सुरुपाः ।
अरिभटनिजरोधे तत्र प्राप्नुवन्ति कीर्तिं विमलधवलचिता ये हु कुर्वन्ति धर्मम् ॥८८॥

॥ इति पद्मचरिते विद्यासन्निधानं नामैकोनषष्ठितमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६०. सुग्गीव-भामंडलसमागमपव्वं

एयन्तरम्मि पउमो, केसरिजुत्तं रहं समारूढो । लच्छीहरो वि एवं, हणुमाइभडेहि परिकिण्णो ॥१॥

संपत्तो रणभूमी, पढमं चिय लक्खणो गरुडकेऊ । दट्ठूण तं पलाणा, भुयङ्गपासा दसदिसासु ॥२॥

अह ते खेयरसामी, भीमोरगबन्धणाउ परिमुक्का । भामण्डल-सुग्गीवा, नियबलं आगया सिग्घं ॥३॥

तत्तो ते पवरभडा, सिरिविक्खाया भणन्ति पउमाभं । सामिय ! परमविभूई, कह तुज्झ खणेण उप्पन्ना ? ॥४॥

तो भणइ पउमनाहो, परिहिण्डन्तेण साहवो दिट्ठा । देसकुलभूसणा ते, गिरिसिहरे जायउवसग्गा ॥५॥

चउक्काणणं तु पडिमं, साहन्ताणं समत्थचित्ताणं । भवतिमिरनासणयरं, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥६॥

गरुडाहिवेण तइया, तुट्ठेणं अम्ह जो वरो दिन्नो । से चिन्तियमेत्तेणं, विज्जाण समागमो जाओ ॥७॥

एवं राहवभणियं, सोऊणं खेयरा सविम्हइया । मुणिवरकहाणुरत्ता, जाया हरिसाइयसरीरा ॥८॥

न तं पिया नेव करेन्ति बन्धू, न चेव मित्ता सकलत्त-भिच्चा ।
जहा मणुस्सस्स हिओवएसं, कुणन्ति साहू विमलप्पहावा ॥९॥

॥ इय पउमचरिए सुग्गीवभामण्डलसमागमं नाम सट्ठिमं पव्वं समत्तं ॥

---

६०. सुग्रीवभामण्डलसमागमपर्वम्

एतदन्तरे पद्मः केसरियुक्तं रथं समारूढः । लक्ष्मीधरोऽप्येवं हनुमानभटैः परिकीर्णः ॥१॥

संप्राप्तो रणभूमिं प्रथममेव लक्ष्मणो गरुडकेतुः । दृष्ट्वा तं पलायना भुजङ्गपाशा दशदिक्षु ॥२॥

अथ तौ खेचरस्वामिनौ भीमोरगबन्धनन्मुक्तौ । भामण्डल-सुग्रीवौ निजबलमागतौ शीघ्रम् ॥३॥

ततस्तौ प्रवरभटौ श्रीविख्यातौ भणतः पद्मनाभम् । स्वामिन् ! प्रवरविभूतिः कथं तव क्षणेनोत्पन्ना ? ॥४॥

तदा भणति पद्मनाभः परिहिण्डमानेन साधू दृष्टौ । देशकुलभूषणौस्तौ गिरिशिखरे जातोपसर्गौः ॥५॥

चतुराननं तु प्रतिमां साधयतोः समर्थचित्तयोः । भवतिमिरनाशकरं केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥६॥

गरुडाधिपेन तदा तुष्टेनास्मान्यो वरो दत्तः । तस्य चिन्तितमात्रेण विद्यानां समागमो जातः ॥७॥

एवं राघवभणितं श्रुत्वा खेचराः सविस्मिताः । मुनिवरकथानुरक्ता जाता हर्षायितशरीराः ॥८॥

न तत्पिता नैव कुर्वन्ति बन्धवो नैव मित्राः सकलत्रभृत्याः ।
यथा मनुष्यस्य हितोपदेशं कुर्वन्ति साधवो विमलस्वभावाः ॥९॥

॥ इति पद्मचिते सुग्रीव-भामण्डल समागमं नाम षष्ठितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६१. सत्तिसंपायपव्वं

अन्ने रणपरिहत्था, सूरा सन्नदधबद्धतोणीरा । वाणरभडाण समुहा, समुट्ठिया रक्खसा बहवे ॥१॥
पडुपडह-भेरि-झल्लरि-काहल-तलिमा-मुइङ्गसद्देणं । फुडियं पिव आयासं, दो अद्धे महियलं व गयं ॥२॥
एत्थन्तरे महप्पा, लङ्कापरमेसरो सह बलेणं । परिसक्कइ रणभूमिं, पुरओ देविन्दसमविहवो ॥३॥
नाणाउहगहियकरा, नाणाविहवाहणेसु आरूढा । नाणाविहबद्धचिन्धा, आवडिया समरसोडीरा ॥४॥
सर-झसर-सत्ति-सव्वल-करालकोन्तेहिं खिप्पमाणेहिं । जह निम्मलं पि गयणं, खणेण गहणंकियं सयलं ॥५॥
तुरयारूढेहि समं, आसवलग्गा तओ समावडिया । जोहा जोहल्लीणा, रहिया रहिए विवाएन्ति ॥६॥
मत्तगइन्दत्था वि य, अब्भिट्टा कुञ्जरोवरिठियाणं । एवं समसरिसबला, आलग्गा समरकम्मन्ते ॥७॥
तं वाणराण सेन्नं, भग्गं चिय रक्खसेहि परहुत्तं । नीलाइकइभडेहिं, पुणरवि आसासियं सव्वं ॥८॥
नियबलपरिभवं ते, दट्ठुं लङ्काहिवस्स सामन्ता । जोहन्ति सवडहुत्ता, अरिसेन्नं सत्थपहरेहिं ॥९॥
सुय-सारण-मारीची-चन्दक्का विज्जुवयणमाईया । जीमूतनायको वा, कयन्तवयणा समरसूरा ॥१०॥
तंम य संगाममुहे, भग्गं कइसाहणं पलोएउं । सुग्गीवसन्तिया जे, समुट्ठिया सुहडसंघाया ॥११॥

---

६१. शक्तिसम्पातपर्वम्

अन्ये रणदक्षाः शूराः सन्नद्धबद्धतोणीराः । वानरभटानां संमुखाः समुत्थिता राक्षसा वहवः ॥१॥
पटुपटहभेरिझल्लरि-काहलतलिमामृदंगशब्देन । स्फुटितमिवाकाशं द्व्यर्द्धे महितलमिव गतम् ॥२॥
अत्रान्तरे महात्मा लङ्कापरमेश्वरः सह बलेन । परिष्वकति रणभूमिं पुरतो देवेन्द्रसमविभवः ॥३॥
नानाऽऽयुधगृहीतकरा नानाविधवाहनेष्वारुढाः । नानाविधबद्धचिह्ना आपतिताः समरशौण्डिराः ॥४॥
शर-झसर-शक्ति-सर्वल-करालकौन्तैः क्षिप्यमानैः । यथा निर्मलमपि गगनं क्षणेन ग्रहणाङ्कितंसकलम् ॥५॥
तुरगारूढैः सममश्वलग्नास्ततः समापतिताः । योधा योधेन रथिका रथिकेन विपाद्यन्ते ॥६॥
मत्तगजेन्द्रस्था अपि च प्रवृत्ताः कुञ्जरोपरिस्थितानाम् । एवं समसदृशबला आलग्नाः समरकर्मान्ते ॥७॥
तद्वानराणां सैन्यं भग्नमेव राक्षसैः पराङ्मुखम् । नीलादिकपिभटैः पुनरप्याश्वासितं सर्वम् ॥८॥
निजबलपरिभवं तं दृष्ट्वा लङ्काधिपस्य सामन्ताः । युध्यन्तेऽभिमुखा अरिसैन्यं शस्त्रप्रहारैः ॥९॥
शुक्र-सारण-मारीचि-चन्द्रार्का विद्युद्वदनादयः । जीमूतनायको वा कृतान्तवदनाः समरशूराः ॥१०॥
तस्मिंश्च संग्राममुखे भग्नं कपिसाधनं प्रलोक्य । सुग्रीवसत्का ये समुत्थिताः सुभटसंघाताः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं वाणरेहि सेन्नं, दूरं ओसारियं अइबलेहिं । दट्ठुण रक्खसवई, वाहेइ रहं सवडहुत्तं ॥१२॥
अह तेण तक्खणं चिय, पवंगमा गरुयसत्थपहरेहिं । भग्गा पलोइऊणं, विहीसणोअहिमुहो हूओ ॥१३॥
तं भणइ रक्खसिन्दो, अवसर मह दिट्ठिगोयरपहाओ । न य हवइ जुत्तमेयं, हन्तुं एक्कोयरं समरे ॥१४॥
अह तं भणइ कुमारो, विहीसणो अमरिसं तु वहमाणो । उभयबलाण समक्खं, न देमि पट्ठिं सुकन्त व्व ॥१५॥
पुणरवि भणइ दहमुहो, दुट्ठ ! तुमं उज्झिउं निययवंसं । भिच्चत्तं पडिवन्नो, पुरिसाहमपायचारीणं ॥१६॥
पुणरवि भणइ सुभणिओ, विहीसणो रावणं मह सुणेहि । वयणं हियं च पच्छं, सुहजणणं उभयलोएसु ॥१७॥
एवगए वि जइ तुमं, इच्छसि धण-रज्जसंपयं विउलं । सह राहवेण पीइं, करेहि सीया समप्पेहि ॥१८॥
मोत्तूण निययमाणं, दसरहपुत्तं लहुं पसाएहि । मा अयसमलकलङ्कं, करेहि महिलानिमित्तम्मि ॥१९॥
सोऊण तस्स वयणं, दसाणणो तिव्वकोहपज्जलिओ । अल्लियइ गव्वियमई, आयड्ढियनिसियवरबाणो ॥२०॥
रह-गय-तुरयारूढा, सामिहिया गहियपहरणाऽऽवरणा । अन्ने वि य सामन्ता, आलग्गा वाणरभडाणं ॥२१॥
एन्तं दट्ठूण रणे, सहोयरं तस्स अद्धयन्देणं । छिन्दइ धयं सरोसो, बिहीसणो अहिमुहावडिओ ॥२२॥
तेण वि य तस्स धणुयं, छिन्नं लङ्काहिवेण रुट्ठेणं । चावं दुहा विरिक्कं, जेट्ठस्स विभीसणभडेणं ॥२३॥
बहुभडजीयन्तकरे, वट्टन्ते ताण दारुणे जुज्झे । जणयस्स परमभत्तो, समुट्ठिओ इन्दइकुमारो ॥२४॥
सो लक्खणेण रुद्धो, तुङ्गेण व सायरो समुल्ललिओ । पउमेण कुम्भकण्णो, सिग्घं आयारिओ एन्तो ॥२५॥

तद्वानरै सैन्यं दूरमपसारितमतिबलैः । दृष्ट्वा राक्षसपति र्वाहयति रथमभिमुखम् ॥१२॥
अथ तेन तत्क्षणमेव प्लवंगमान्गुरुकशस्त्रप्रहारैः । भग्नान्प्रलोक्य बिभीषणोऽभिमुखो भूतः ॥१३॥
तं भणति राक्षसवरेन्द्रोऽपसर मम दृष्टिगोचरपथाद् । न च भवति युक्तमेतद्धन्तुमेकोदरं समरे ॥१४॥
अथ तं भणति कुमारो बिभीषणोऽमर्शं तु वहन् । उभयबलानां समक्षं न ददामि पृष्टिं सुकान्तामिव ॥१५॥
पुनरपि भणति दशमुखो दुष्ट ! त्वमुझित्वा निजवंशम् । भृत्यत्वं प्रतिपन्नः पुरुषाधमपादचारीणाम् ॥१६॥
पुनरपि भणति सुभणितो बिभीषणो रावणं मम श्रुणु । वचनं हितं च पथ्यं सुखजननमुभयलोके ॥१७॥
एवंगतेऽपि यदि त्वमिच्छसि धनराज्यसंपद्विपुलम् । सह राघवेन प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥१८॥
मुक्त्वा निजमानं दशरथपुत्रं लघु प्रसादय । माऽयशोमलकलङ्कं कुरु महिलानिमित्ते ॥१९॥
श्रुत्वा तस्य वचनं दशाननस्तीव्रक्रोधप्रज्वलितः । आलीनाति गर्वितमतिराकृष्य निशीतवरबाणः ॥२०॥
रथ-गज-तुरगारुढाः स्वामिहिता गृहीतप्रहरणाऽऽवरणाः । अन्येऽपि च सामन्ता आलग्ना वानरभटानाम् ॥२१॥
आयान्तं दृष्ट्वा रणे सहोदरं तस्यार्द्धचन्द्रेण । छिन्दति ध्वजं सरोषो बिभीषणोऽभिमुखापतितः ॥२२॥
तेनाऽपि च तस्य धनुष्यं छिन्नं लङ्काधिपेन रुष्टेन । चापं द्विधाविभक्तं ज्येष्ठस्य बिभीषणभटेन ॥२३॥
बहुभटजीवान्तकरे वर्तमाने तयो र्दारुणे युद्धे । जनकस्य परमभक्तः समुत्थित इन्द्रकुमारः ॥२४॥
स लक्ष्मणेन रुद्धस्तुङ्गेनेव सागरः समुल्ललितः । पद्मेन कुम्भकर्णः शीघ्रमाकारित आयान् ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवडिओ सीहकडी, नीलेण समं नलो य सम्भूणं। सुहडो सयंभुनामो, आयारइ दुम्मइं समरे ॥२६॥
दुम्मरिसो घडउवरिं, कुद्धो इन्दासणी तहा काली। चन्दणभेण समाणं, कन्दो भिन्नञ्जणाभेण ॥२७॥
सिग्घं विराहिओ वि य, आयारइ अङ्गओ मयं कुद्धो। अह कुम्भयण्णपुत्तं, कुम्भं पत्तो य हणुवन्तो ॥२८॥
सुग्गीवो वि सुमाली, केउं भामण्डलो तहा काली। जोहेइ दढरहो वि य, रणकण्डुं चेव वहमाणो ॥२९॥
एवं अन्ने वि भडा, समसरिसबला रणम्मि आवडिया। आहव्वणमुहरवा, जुज्झन्ति समच्छरुच्छाहा ॥३०॥
हण छिन्द भिन्द निक्खिव, उत्तिट्ठुत्तिट्ठ लहु पडिच्छाहि। पप्फोड ताड मारय, सह घत्तुव्वत्तणिहणन्ति ॥३१॥
बहुतूरनिणाएणं, विमुक्कवुक्कारसुहडसद्देणं। गज्जन्तीव दिसाओ, घणसत्थतमन्धयाराओ ॥३२॥
सूरासूराण इमो, वट्टइ अहियं परिक्खणाकालो। जह भुञ्जइ आहारो, न तहा जुज्झिज्जए समरे ॥३३॥
मा भाहि कायर! तुमं दीणं न हणामि जं च परहुत्तं। तेन वि सो पडिभणिओ, अज्ज तुमं चेव नट्ठो सि ॥३४॥
कोवि भडो सन्नाहं, सहसा विच्छिन्नबन्धणं दट्ठुं। संघेइ साहुपुरिसो, जह नेहं विहडियं सन्तं ॥३५॥
दन्तेसु धरिय खग्गं, आबन्धेऊण परियरं सुहडो। जुज्झइ अविसन्नमणो, सामियपरितोसणुज्जुत्तो ॥३६॥
मत्तगयदन्तभिन्नो, विज्जिज्जन्तो य कण्णचमरेहिं। सामियकयकरणिज्जो, सुवइ भडो वीरसेज्जासु ॥३७॥
सीसग्गहिएक्कमेक्का, छुरियापहेरसु केइ पहरन्ति। असि-कणय-तोमरेहिं, सुहडा घाएन्ति अन्नोन्नं ॥३८॥
रत्तासोयवणं पिव, किंसुयरुक्खाण होज्जसंघायं। जायं खणेण सेन्नं, पयलियरत्तारुणच्छायं ॥३९॥

आपतितः सिंहकटी नीलेन समं नलश्च शम्भुना। सुभटः स्वयंभूवमाकारयति दुर्मतिं समरे ॥२६॥
दुर्मर्षः घटोदरिं क्रुद्ध इन्द्राशनिं तथा काली। चन्द्रप्रभेण समानं कन्दो भिन्नाञ्जनाम्ना ॥२७॥
शीघ्रं विराधितोऽपि चाकारयत्यङ्गदो मयं क्रुद्धः। अथ कुम्भकर्णपुत्रं कुंभं च प्राप्तश्च हनुमान् ॥२८॥
सुग्रीवोऽपि सुमालीकेतुं भामण्डलस्तथा कालीम्। युध्यते दृढरथोऽपि च रणकण्डूमेव वहन् ॥२९॥
एवमन्येऽपि भटाः समसदृशबला रण आपतिताः। आह्वानमुखरवा युध्यन्ते समत्सरोत्साहाः ॥३०॥
हण छिन्द भिन्द निक्षिपोतिष्ठोतिष्ठ लघु प्रतीच्छ। प्रस्फोट ताडय मारय सहस्व क्षिप्तोद्वर्तनिहणेति ॥३१॥
बहुतूर्यनिनादेन विमुक्तगर्जारवसुभटशब्देन। गर्जन्तीव दिशः घनशस्त्रतमोऽन्धकाराः ॥३२॥
सुरासुराणामयं वर्तते ऽधिकं परीक्षणाकालः। यथा भुज्यत आहारो न तथा युध्यते समरे ॥३३॥
मा भैषीः कातर! त्वां दीनं न हन्मि यं च पराङ्मुखम्। तेनापि स प्रतिभणितोऽद्य त्वमेव नष्टोऽसि ॥३४॥
कोऽपि भटः सन्नाहं सहसा विच्छिन्नबन्धनं दृष्ट्वा। संघाति साधुपुरुषो यथा स्नेहं विघटितं सन् ॥३५॥
दन्तै धृतं खड्गमाबध्य परिकरं सुभटः। युध्यतेऽविषण्णमनाः स्वामिपरितोषणोद्यतः ॥३६॥
मतगजदन्तभिन्नो विज्य्यमानश्च कर्णचामरैः। स्वामिकार्यकरणीयः स्वपिति भटो वीरशय्यासु ॥३७॥
शीर्षग्राहयेकमेकाश्च्छूरिकाप्रहारैः केऽपि प्रहरन्ति। असि-कनक-तोमरैः सुभटाः घातयन्त्यन्योन्यम् ॥३८॥
रक्ताशोकवनमिव किंशुकवृक्षाणां भवेत्संघातम्। जातं क्षणेन सैन्यं प्रगलितरक्तारुणच्छायम् ॥३९॥

केएत्थ गलियहत्था, गरुयपहाराहयाऽहिमाणेणं । पडिउट्ठियं करेन्ता, अन्ने लोलन्ति महिवट्टे ।।४०।।

हत्थी जज्जरियतणू, मुञ्चन्ता रुहिरकद्दमुद्दामं । छज्जन्ति जलयकाले, गिरि व्व जह गेरुयालिद्धा ।।४१।।

गयतुरयखुरखउक्खय-रएण उच्छाइए दिसाचक्के । अविभावियदिट्ठिपहा, नियया नियए विवाएन्ति ।।४२।।

एयारिसम्मि जुज्झे, इन्दइणा लक्खणो सवडहुत्तो । छन्नो सरेहि सिग्घं, तेण वि सो तह विसेसेणं ।।४३।।

अह रावणस्स पुत्तो, सिग्घं पेसेइ तामसं अत्थं । नासेइ लक्खणो तं, दिवायरत्थेण परिकुविओ ।।४४।।

पुणरवि दसाणणसुओ, भीमेहि सरेहि वेढिउं पयओ । आढत्तो सोमित्तिं, सरहं सतुरङ्गमावण्णं ।।४५।।

तेण वि य [1]वइयणतेयं, अत्थं च विसज्जियं पवणवेगं । ववगयविसाणलसिहा, भुयङ्गपासा निरायरिया ।।४६।।

जुज्झं काऊण चिरं, रामकणिट्ठेण इन्दइकुमारो । बद्धो निस्संदेह भुयङ्गपासेसु अइगाढं ।।४७।।

पउमो वि भाणुकण्णं, विरहं काऊण नायपासेहिं । बन्धइ बलपरिहत्थो, दिवायरत्थं पणासेउं ।।४८।।

मगहाहिव ! ते बाणा, भुयङ्गपासा हवन्ति निमिसेणं । अमरा आउहभेया, चिन्तियमेत्ता जहारूवा ।।४९।।

सो नागपासबद्धो, निच्चेट्ठो राहवस्स वयणेणं । भामण्डलेण गन्तु, नियरहे विलइओ सिग्घं ।।५०।।

इन्दइभडो वि एवं, बद्धो च्चिय लक्खणस्स आणाए । सिग्घं विराहिएण वि, आरुहिओ सन्दणे नियए ।।५१।।

एवं अन्ने वि भडा, घणवाहणमाइया रणे गहिया । बद्धा य वाणरेहिं, पवेसिया नियसिबिरं ते ।।५२।।

केऽत्र गलितहस्ता गुरुकप्रहाराऽऽहता अभिमानेन । प्रत्युत्थितं कुर्वन्तोऽन्ये लोलन्ति महीपृष्टे ।।४०।।

हस्तिनो जर्जरिततनवो मुञ्चन्तो रुधिरकर्दमोद्दामम् । छाद्यन्ति जलदकाले गिरिरिव यथा गेरुकलिप्ता: ।।४१।।

गजतुरगक्षुरखोत्क्षतरजश्च्छादिते दिशाचक्रे । अविभावितदृष्टिपथा निजका निजकान्विपादयन्ति ।।४२।।

एतादृशे युद्धे इन्द्रजिता लक्ष्मणोऽभिमुख: । छन्न: शरै: शीघ्रं तेनापि स तथा विशेषेण ।।४३।।

अथ रावणस्यपुत्र शीघ्रं प्रेषति तामसमस्त्रम् । नाशयति लक्ष्मणस्तं दिवाकरास्त्रेण परिकुपित: ।।४४।।

पुनरपि दशाननसुतो भीमै: शरैर्वेष्टयितुं प्रयत: । प्रारब्ध: सौमित्रिं सरथं सतुरङ्गमापन्नम् ।।४५।।

तेनापि च वैनेतेयमस्त्रं च विसर्जितं पवनवेगम् । व्यपगतविषानलशिखाभुजङ्गपाशा निराकृता: ।।४६।।

युद्धं कृत्वा चिरं रामकनिष्ठेनेन्द्रजित्कुमार: । बद्धो नि:संदेहं भुजङ्गपाशैरतिगाढम् ।।४७।।

पद्मोऽपि भानुकर्णं विरथं कृत्वा नागपाशै: । बध्नाति बलदक्षो दिवाकरास्त्रं प्रणाश्य ।।४८।।

मगधाधिप ! ते बाणा भुजङ्गपाशा भवन्ति निमिषेण । अमरा आयुधभेदाश्चिन्तितमात्रा यथारुपा: ।।४९।।

स नागपाशबद्धो निश्चेष्टो राघवस्य वचनेन । भामण्डलेन गत्वा निजरथे विगलित: शीघ्रम् ।।५०।।

इन्द्रजिद्भटोऽप्येवं बद्ध एव लक्ष्मणस्याज्ञया । शीघ्रं विराधितेनाप्यारोहित: स्यन्दने निजके ।।५१।।

एवमन्येऽपि भटा: घनवाहनादयो रणे गृहीता: । बद्धाश्च वानरै: प्रवेशिता निजशिबिरं ते ।।५२।।

---

१. वैनतेयं अस्त्रं गरुडास्त्रमित्यर्थ: ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयन्तरम्मि समरे, बिभीसणं भणइ दहमुहो रुट्ठो । विसहसु पहारमेक्कं, जइ रणकण्डुं समुव्वहसि ॥५३॥
तेण वि य धीरमइणा, भणिओ एक्केण किं व पहेरेणं ? । होऊण अप्पमत्तो, आहणसु मए जहिच्छाए ॥५४॥
सो एवभणियमेत्तो, घत्तइ सूलं सहोयरस्स रणे । तं पि य सरेहि एन्तं, रामकणिट्ठो निवारेइ ॥५५॥
दट्ठूण निरागरियं, सूलं लंकाहिवो परमरुट्ठो । गेण्हइ अमोहविजयं, सत्तिं उक्का इव जलन्ती ॥५६॥
ताव य जलहरसामं, पेच्छइ गरुडद्धयं ठियं पुरओ । वित्थिण्णविउलवच्छं, पलम्बबाहुं महापुरिसं ॥५७॥
तं भणइ रक्खसवई, अन्नस्स मए समुज्जयं सत्थं । को तुज्झ आहिगारो, धट्ठ ! ममं ठाविउं पुरओ ? ॥५८॥
जइ वा इच्छसि मरिउं, लक्खण ! इह भडसमूहसंघट्टे । तो ठाहि सवडहुत्तो, विसहसु सत्तीपहारं मे ॥५९॥
ओसारिऊण एत्तो, विहीसणं लक्खणो सह रिऊणं । जुज्झइ रणे महप्पा, दढववसाओ भयविमुक्को ॥६०॥
अह रावणेण सत्ती, मुक्का जालाफुलिङ्गनियरोहा । गन्तूण लक्खणं सा, भिन्दइ वच्छत्थलाभोगे ॥६१॥
सो तेण पहारेणं, सोमित्ती तिव्ववेयणुम्हविओ । मुच्छानिमीलियच्छो, धस त्ति धरणीयले पडिओ ॥६२॥
एयन्तरम्मि रामो, पडियं दट्ठूण लक्खणं समरे । अह जुज्झिउं पवत्तो, [1]समयं विज्जाहरिंदेहिं ॥६३॥

सो तेण तक्खणं चिय, दसाणणो छिन्नचावधयकवओ ।
विरहो कओ य माणी, चलणेसु ठिओ धरणिवट्टे ॥६४॥

अन्नं रहं विलग्गो, जाव य धणुयं लएइ तूरन्तो । ताव च्चिय दहवयणो, पउमेण कओ रणे विरहो ॥६५॥

एतदन्तरे समरे बिभीषणं भणति दशमुखो रुष्टः । विसहस्व प्रहारमेकं यदि रणकण्डूं समुद्वहसि ॥५३॥
तेनापि च धीरमतिना भणित एकेन किं वा प्रहारेण ? । भूत्वाऽप्रमत्त आजहि मां यथेच्छया ॥५४॥
स एवं भणितमात्रे क्षिपति शूलं सहोदरस्य रणे । तदपि च शरैरायान्तं रामकनिष्ठो निवारयति ॥५५॥
दृष्ट्वा निराकृतं शूलं लङ्काधिपः परमरुष्टः । गृह्णात्यमोघविजयां शक्तिमुल्कामिव ज्वलन्तीम् ॥५६॥
तावच्च जलधरश्यामं पश्यति गरुडध्वजं स्थितं पुरतः । विस्तीर्ण विपुलवक्षः प्रलम्बबाहुं महापुरुषम् ॥५७॥
तं भणति राक्षसपतिरन्यस्य मया समुद्यतं शस्त्रम् । कस्तवाधिकारो धृष्ट ! मम स्थातुं पुरतः ? ॥५८॥
यदि वेच्छसि मर्तुं लक्ष्मण ! इह भटसमूहसंघट्टे । ततस्तिष्ठाभिमुखो विसहस्व शक्तिप्रहारं मम ॥५९॥
अपसार्येतो विभीषणं लक्ष्मणः सहरिपुणा । युध्यते रणे महात्मा दृढव्यवसायो भयविमुक्तः ॥६०॥
अथ रावणेन शक्तिर्मुक्ता ज्वालास्फुर्लिंगनिजरोधा । गत्वा लक्ष्मणं सा भिन्दति वक्षःस्थलाभोगे ॥६१॥
स तेन प्रहारेण सौमित्रिस्तीव्रवेदनोष्मापितो । मुर्च्छानिमिलिताक्षः धसिति धरतीतले पतितः ॥६२॥
एतदन्तरे राम ! पतितं दृष्ट्वा लक्ष्मणं समरे । अथ योद्धुं प्रवृतः समकं विद्याधरेन्द्रेण ॥६३॥
स तेन तत्क्षणमेव दशाननश्छिन्नचापध्वजकवचः । विरथः कृतश्च मानी चरणाभ्यां स्थितो धरणीपृष्टे ॥६४॥
अन्यं रथं विलग्नो यावच्च धनुकं लाति त्वरमाणः । तावदेव दशवदनः पद्मेन कृतो रणे विरथः ॥६५॥

---

१. समयं चिय रक्खसिंदेणं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रामस्स सरवरेहिं, निसायरो विम्भलो कओ सिग्घं । न य गेण्हिउं समत्थो, बाणं न सरासणं चेव ॥६६॥
बाणेहि लोढिओ च्चिय, धरणियले राहवेण दहवयणो । दीसइ पुणो पुणो च्चिय, अन्नन्नरहे समारूढो ॥६७॥
विच्छिन्नचावकवओ, छव्वारा रावणो कओ विरहो । तह वि य न य साहिज्जइ, अब्भुयकम्मो समरसूरो ॥६८॥
पउमो विम्हियहियओ, जंपइ जो मह सराहओ न मओ । पुण्णेण रक्खिओ च्चिय, परभवजणिएण तुङ्गेणं ॥६९॥
निसुणेहि भणिज्जन्तं, मह वयणं रक्खसाहिवइ ! एक्कं । जो मज्झ तुमे भाया, निहओ सत्तीपहारेणं ॥७०॥
तस्साणुमग्गलग्गं, नेमि तुमे जमपुरिं न संदेहो । होउ त्ति एव भणिउं, दसाणणो अइगओ लङ्कं ॥७१॥
चिन्तेइ सावलेवो, एक्को मे वेरिओ मओ निहओ । किंचि हरिसाइयमणो, पविसइ निययं महाभवणं ॥७२॥
रुद्धे सोऊण सुए, तं चिय एक्कोयरं समरसूरं । सोयइ निसासु सुत्तो, दहवयणो तिव्वदुक्खन्तो ॥७३॥

केएत्थ पुव्वदुकएण रणम्मि भङ्गं, पावन्ति बन्धणमिणं अवरे हयासा ।
अन्ने पुणो सुचरिएण जयन्ति धीरा, लोए सया विमलकित्तिधरा भवन्ति ॥७४॥

॥ इय पउमचरिए सत्तिसंपायं नाम एगसट्ठं पव्वं समत्तं ॥

रामस्य शरवरै र्निशाचरो विह्वलः कृतः शीघ्रम् । न च ग्रहितुं समर्थो बाणं न शरासनमेव ॥६६॥
बाणैर्लोटित एव धरणितले राघवेन दशवदनः । दृश्यते पुनः पुनरेवान्योन्यरथं समारुढः ॥६७॥
विच्छिन्नचापकवचः षड्वारा रावणः कृतो विरथः । तथाऽपि च न साध्यतेऽद्भूतकर्मा समरशूरः ॥६८॥
पद्मो विस्मितहृदयो जल्पति यो मम शराहतो न मृतः । पुण्येन रक्षियेन तश्चैव परभवजनितेन तुङ्गेन ॥६९॥
निश्रुणु भण्यमानं मम वचनं राक्षसाधिपते ! एकम् । यो मम त्वया भ्राता निहतः शक्तिप्रहारेण ॥७०॥
तस्यानुमार्गलग्नं नयामि त्वां यमपुरिं न संदेहः । भवत्वित्येवं भणित्वा दशाननोऽतिगतो लङ्काम् ॥७१॥
चिन्तयति सावलेपमेको मे वैरिर्मृतो निहतः । किंचिद्धर्षायितमनाः प्रविशति निजकं महाभवनम् ॥७२॥
रुद्धांश्छुत्वा सुतांशतमेवैकोदरं समरशूरम् । शोचति निशासु सुप्तो दशवदनस्तीव्रदुःखान्तः ॥७३॥

केऽत्र पूर्वदुष्कृतेन रणे भङ्गं प्राप्नुवन्ति बन्धनमिदमपरे हताशाः ।
अन्ये पुनः सुचरितेन जयन्ति धीरा लोके सदा विमलकीर्त्तिधरा भवन्ति ॥७४॥

॥ इति पद्मचरिते शक्तिसंपातं नामैकषष्ठितमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६२. रामविप्पलावपव्वं

तत्तो समाउलमणो, पउमो सोगेण ताडिओ गाढं । पत्तो य तुरियवेगो, जत्थऽच्छइ लक्खणो ठाणे ॥१॥

दट्ठूण सत्तिभिन्नं, सहोयरं महियलम्मि पल्हत्थं । रामो गलन्तनयणो, मुच्छावसविम्भलो पडिओ ॥२॥

सीयलजलोल्लियङ्गो, आसत्थो वाणरेहि परिकिण्णो । अह विलिविउं पयत्तो, रामो कलुणेण सद्देणं ॥३॥

हा वच्छ ! सायवरं, उत्तरिऊणं इमं अइदुलङ्घं । विहिजोएण अणत्थं, एरिसयं पाविओ सि तुमं ॥४॥

किं माणेण महाजस ! ण य वायं देसि विलवमाणस्स । जाणसि य विओगं, ते, न सहामि मुहुत्तमेत्तं पि ॥५॥

तुह मे गुरूहि वच्छय ! समप्पिओ आयरेण निक्खेवो । किं ताण उत्तरमिणं, दाहामि विमुक्कलज्जोऽहं ? ॥६॥

सुलभा नरस्स लोए, कामा अत्था अणेयसंबन्धा । नवरं इहं न लब्भइ, भाया माया य जणओ य ॥७॥

अहवा परम्मि लोए, पावं अइदारुणं मए चिण्णं । तस्सेयं पावफलं, जायं सीयानिमित्तम्मि ॥८॥

अज्ज महं एयाओ, भुयाउ केऊरकिणइयङ्काओ । देहस्स भारमेत्तं, जायाओ कज्जरहियाओ ॥९॥

एयं मे हयहिययं, वज्जमयं निम्मियं कयन्तेणं । जेणं चिय न य फुट्टइ, दट्ठूण सहोयरं पडियं ॥१०॥

सत्तुं दमेण तइया, सत्तीओ पञ्च करविमुक्काओ । गहियाउ तुमे सुपुरिस !, संपइ एक्का वि न नरुद्धा ॥११॥

---

६२. रामविप्रलापपर्वम्

ततः समाकूलमनाः पद्मः शोकेन ताडितो गाढम् । प्राप्तश्च त्वरितवेगो यत्रास्ते लक्ष्मणः स्थाने ॥१॥

दृष्ट्वा शक्तिभिन्नं सहोदरं महीतले पर्यस्तम् । रामो गलन्नयनो मूर्च्छावशविह्वलः पतितः ॥२॥

शीतलजलार्द्रिताङ्ग आश्वस्तो वानरैःपरिकीर्णः । अथ विलपितुं प्रवृत्तो रामः करुणेन शब्देन ॥३॥

हा वत्स ! सागरवरमुत्तीर्येममतिदुर्लङ्घ्यम् । विधियोगेनावस्थामेतादृशीं प्राप्तोऽसि त्वम् ॥४॥

किं मानेन महायशः ! न च वाचां ददासि विलपमानस्य । जानासि च वियोगं ते न सहे मुहूर्तमात्रमपि ॥५॥

त्वं मां गुरुभिर्वत्स ! समर्पित आदरेण निक्षेपः । किं तेभ्य उत्तरमिदं दास्यामि विमुक्तलज्जोऽहम् ॥६॥

सुलभा नरस्य लोके कामा अर्था अनेकसंबन्धाः । नवरमिह न लभ्यते भ्राता माता च जनकश्च ॥७॥

अथवा परेलोके पापमतिदारुणं मया चीर्णम् । तस्येदं पापफलं जातं सीतानिमित्ते ॥८॥

अद्य ममैतेभुजे केयुरशोभिताङ्के । देहस्य भारमात्रं जाते कार्यरहिते ॥९॥

एतन्मे हतहृदयं वज्रमयं निर्मितं कृतान्तेन । येनैव न च स्फुटति दृष्ट्वा सहोदरं पतितम् ॥१०॥

शत्रुंदमेन तदा शक्तयः पञ्च करविमुक्ताः । गृहीतास्त्वया सत्पुरुष ! संप्रत्येकाऽपि न निरुद्धा ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुणिया य निच्छएणं, सत्ती वज्जद्दलेहि निम्माया । सिरिवच्छभूसियं पि हु, जा भिन्दइ लक्खणस्स उरं ॥१२॥
उट्ठेहि लच्छिवल्लह !, धणुयं घेत्तूण मा चिरावेहि । मज्झागया वहत्थे, एए सत्तू निवारेहि ॥१३॥
ताव य एस परियणो, वच्छय ! रिद्धीसु रमइ पुरिसस्स । आवइपडियस्स पुणो, सो चेव परम्मुहो ठाइ ॥१४॥
ताव य गज्जन्ति परा, अणुजीविगया मणोहरं वयणं । जाव बहुसत्थदाढं, वेरियसीहं न पेच्छन्ति ॥१५॥
माणुन्नओ वि पुरिसो, एगागी वेरिएहि पडिरुद्धो । अवलोइउं दिसाओ, सुमरइ एक्कोयरं सूरं ॥१६॥
मोत्तूण तुमं वच्छय !, एत्थ महाविग्गहे समावडिए । को ठाहिइ मह पुरओ, नियय़ं तु हियं विचिन्तेन्तो ॥१७॥
तुज्झ पसाएण मए, निव्वूढं दुक्खसंकडं एयं । न य नज्जइ एत्ताहे, कह य भमि(?वि)स्सामि एगागी ॥१८॥
भो मित्त वाणराहिव !, साहणसहिओ कुलोचियं देसं । वच्चसु य अविग्घेणं, सिग्घं भामण्डल ! तुमं पि ॥१९॥
न तहा विहीसण ! ममं वाहइ सीयाविओयदुक्खं पि । जह अकयत्थेण तुमे, डज्झइ हिययं निरवसेसं ॥२०॥
सुग्गीवाई सुहडा, सव्वे जाहिन्ति नियनयराइं । तुह पुण अहो विहीसण !, [१]कयमं देसं पवज्जिहिसि ? ॥२१॥
पढमं चिय उवयारं, कुणन्ति इह उत्तमा नरा लोए । पच्छा पुण मज्झिमया, अहमा उभएसु वि विरत्ता ॥२२॥
सुग्गीवय ! भामण्डल !, चियया मे रयह मा चिरावेह । जामि अहं परलोगं, तुब्भे वि जहिच्छियं कुणह ॥२३॥
मरणे कयववसायं, पउमं दट्ठूण जम्बवो भणइ । धीरत्तणं पवज्जसु, मुञ्चसु सोगं इमं सामि ! ॥२४॥

मुणिता च निश्चयेन शक्ति र्वज्रदलैर्निर्माता । श्रीवत्सभूषितमपि हु या भिन्दति लक्ष्मणस्योरः ॥१२॥
उत्तिष्ट लक्ष्मीवल्लभ ! धनुकं गृहीत्वा मा चिराय । मध्यागतान्वधार्थे एतान् शत्रून्निवारय ॥१३॥
तावच्चैष परिजनो वत्सक ! ऋद्धिभी रमते पुरुषस्य । आपत्पतितस्य पुनः स एव पराङ्मुखस्तिष्ठति ॥१४॥
तावच्च गर्जन्ति परा अनुजीविका मनोहरं वचनम् । यावद्बहुशस्त्रदंष्ट्रं वैरिसिंहं न पश्यन्ति ॥१५॥
मानोन्नतोऽपि पुरुष एकाकी वैरिभिः प्रतिरुद्धः । अवलोक्य दिशः स्मरत्येकोदरं शूरम् ॥१६॥
मुक्त्वा त्वां वत्स ! अत्र महाविग्रहे समापतिते । कःस्थास्यति मम पुरतो निजकं तु हितं विचिन्तयन् ॥१७॥
तव प्रसादेन मया निर्व्यूढं दुःखसंकटमेतद् । न च ज्ञायत एतावता कथं भविष्याम्येकाकी ॥१८॥
भो मित्र वानराधिप ! साधनसहितः कुलोचितं देशम् । व्रज चाविघ्नेन शीघ्रं भामण्डल ! त्वमपि ॥१९॥
न तथा बिभीषण ! मां बाधते सीतावियोगदुःखमपि । यथाऽकृतार्थेन तव दह्यते हृदयं निरवशेषम् ॥२०॥
सुग्रीवादयः सुभटा ! सर्वे यास्यन्ति निजनगराणि । त्वं पुनरहो विभीषण ! कतमं देशं प्रतिपत्स्यसि ? ॥२१॥
प्रथममेवोपकारं कुर्वन्तीहोत्तमा नरालोके । पश्चात्पुन र्मध्यमा अधमा उभयेष्वपिविरक्ता : ॥२२॥
सुग्रीव ! भामण्डल ! चिता मे रचयत मा चिरायत । याम्यहं परलोकं यूयमपि यथेच्छितं कुरुत ॥२३॥
मरणे कृतव्यवसायं पद्मं दृष्ट्वा जम्बवान्भणति । धीरत्वं प्रपद्यस्व मुञ्च शोकमिदं स्वामिन् ! ॥२४॥

---

१. कं सरणं तं पव०-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विज्जासत्थेण इमो, पहओ लच्छीहरो गओ मोहं। जीविहिइ तुज्झ भाया, सामिय ! नत्थिऽत्थ संदेहो ॥२५॥
तम्हा किंचि उवायं, तूरन्ता कुणह रयणिसमयम्मि। लच्छीहरो निरुत्तं, मरइ पुणो उग्गए सूरे ॥२६॥
तत्तो ते कइसुहडा, भीया तिण्णेव गोउरपुराइं। सत्तेव य पायारा, कुणन्ति विज्जानिओगेणं ॥२७॥
रह-गय-तुरङ्गमेहिं, सहिओ जोहेहि बद्धकवएहिं। नीलो चावविहत्थो, पढमम्मि पइट्ठिओ दारे ॥२८॥
बीए नलो महप्पा, अहिट्ठिओ दारुणो गयाहत्थो। तइए बिहीसणो वि य, तिसूलपाणी ठिओ सूरो ॥२९॥
दारे चउत्थयम्मि उ, कुमुओ सन्नद्धबद्धतोणीरो। कुन्ते घेत्तूण ठिओ, तह य सुसेणो वि पञ्चमए ॥३०॥
घेत्तूण भिण्डिमालं, सुग्गीवो छट्ठए ठिओ दारे। सत्तमए असिहत्थो, अहिट्ठिओ जणयपुत्तो वि ॥३१॥
पुव्वदुवारम्मि ठिओ, सरहो सरहद्धओ रणपचण्डो। अह अङ्गओ कुमारो, अहिट्ठिओ गोउरे अवरे ॥३२॥
नामेण चन्दरस्सी, वालिसुओ कढिणदप्पमाहप्पो। रक्खइ उत्तरदारं, जो जिणइ जमं पि सत्तेणं ॥३३॥
एवं जे केइ भडा, अन्ने बलसत्तिकित्तिसंपन्ना। सन्नद्धबद्धकवया, अहिट्ठिया दक्खिणदिसाए ॥३४॥
एवं तु संनिवेसं, खेयरवसभेसु विरइयं सव्वं। नक्खत्तेहि व गयणं, अइरेहइ उज्जलसिरीयं ॥३५॥

न तं सुरा नेव य दाणविन्दा, कुणन्ति जीवस्स अणुग्गहत्थं।
समज्जियं जं विमलं तु कम्मं, जहा निवारेइ नरस्स दुक्खं ॥३६॥

॥ इय पउमचरिए राविप्पलावं नाम बासट्ठं पव्वं समत्तं ॥

विद्याशस्त्रेणायं प्रहतो लक्ष्मीधरो गतो मोहम्। जीविष्यति तव भ्राता स्वामिन्नास्त्यत्र संदेहः ॥२५॥
तस्मात् किंचिदुपायं त्वरयो कुरुत रजनीसममाणाः। लक्ष्मीधरो निश्चित्तं मियते पुनरुद्गते सूर्ये ॥२६॥
ततस्ते कपिसुभटा भीतास्त्रिण्येव गोपुराणि। सप्तैव प्राकाराः कुर्वन्ति विद्यानियोगेण ॥२७॥
रथ-गज-तुरङ्गमैः सहितो यौधै र्बद्धकवचैः। नीलश्चापविहस्तः प्रथमे प्रतिष्ठितो द्वारे ॥२८॥
द्वितीये नलो महात्माऽधिष्ठितो दारुणो गदाहस्तः। तृतीये बिभीषणोऽपि च त्रिशूलपाणिः स्थितः शूरः ॥२९॥
द्वारे चतुर्थे तु कुमुदः सन्नद्धबद्धतोणीरः। कुन्तान्गृहीत्वा स्थितस्तथा च सुसेनोऽपि पञ्चमे ॥३०॥
गृहीत्वा भिण्डिमालं सुग्रीवः षष्टे स्थितो द्वारे। सप्तमेऽसिहस्तोऽधिष्ठितो जनकपुत्रोऽपि ॥३१॥
पूर्वद्वारे स्थितः शरभः शरभध्वजो रणप्रचण्डः। अथाङ्गदःकुमारोऽधिष्ठितो गोपुरेऽपरे ॥३२॥
नाम्ना चन्द्ररश्मि र्वालिसुतः कठिनदर्पमाहात्म्यः। रक्षत्युत्तरद्वारं यो जयति यममपि सत्त्वेन ॥३३॥
एवं ये केऽपि भटा अन्ये बलशक्तिकीर्त्तिसंपन्नाः। सन्नद्धबद्धकवचा अधिष्ठिता दक्षिणदिशि ॥३४॥
एवं तु संनिवेशं खेचरवृषभैर्विरचितं सर्वम्। नक्षत्रैरिव गगनमतिराजत उज्ज्वलश्रीकम् ॥३५॥

न तं सुरा नैव च दानवेन्द्राः कुर्वन्ति जीवस्यानुग्रहार्थम्।
समर्जितं यद्विमलं तु कर्म यथा निवारयति नरस्य दुःखम् ॥३६॥

॥ इति पद्मचरिते रामविप्रलापं नाम द्वाषष्ठितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६३. विसल्लापुव्वभवकित्तणपव्वं

नाऊण य सोमित्ती, भरणावत्थं दसाणणो एत्तो । एक्कोयरं च बद्धं, सोयइ पुत्ते य पच्छन्नं ॥१॥

हा भाणुयण्ण ! वच्छय, निच्चं चिय मह हिउज्जओ सि तुमं ।
कह बन्धणम्मि पत्तो, विहिपरिणामेण संगामे ? ॥२॥

हा पुत्त मेहवाहण !, इन्दइ ! सुकुमालकोमलसरीरा । कह वेरियाण मज्झे, चिट्ठह अइदुक्खिया बद्धा ? ॥३॥
बद्धाण असरणाणं, कालगए लक्खणे ससोगत्ता । मह पुत्ताण रिपुभडा, न य नज्जइ किं पि काहिन्ति ? ॥४॥
हिययस्स वल्लहेहिं तुब्भेहिं दुक्खिएहि बद्धेहिं । अहिययरं चिय बद्धो, अहयं नत्थेत्थ संदेहो ॥५॥
एवं गए व्व बद्धे, महागओ दुक्खिओ सजूहम्मि । चिट्ठइ तह दहवयणो, बन्धूसु य सोगसंतत्तो ॥६॥
सोऊण सत्तिपहयं, सोमित्तिं जणयनन्दिणी एत्तो । अह विलविउं पयत्ता, सोगसमुच्छइयसव्वङ्गी ॥७॥
हा भद्द लक्खण ! तुमं, उत्तरिऊणं इमं सलिलनाहं । मज्झ कएण महायस !, एयावत्थं पवन्नो सि ॥८॥
मोत्तूण बन्धवजणं, निययं जेट्ठस्स कारणुज्जुत्तो । सुपुरिस ! रक्खसदीवे, कह सि तुमं पाविओ मरणं ? ॥९॥
बालत्ते किं न मया, अहयं दुक्खस्स भाइणी पावा ? । जेण इमो गुणनिलओ, मज्झ कए लक्खणो वहिओ ॥१०॥
सोमित्ति ! तुज्झ देवा, कुणन्तु जीवस्स पालणं सव्वे । सिग्घं च विसल्लत्तं, वच्चसु अम्हं पि वयणेणं ॥११॥

---

६३. विशल्यापूर्वभवकीर्त्तनपर्वम्

ज्ञात्वा च सौमित्रिं मरणावस्थं दशानन इतः । एकोदरं च बद्धं शोचति पुत्रौ च प्रच्छन्नम् ॥१॥
हा भानुकर्ण ! वत्स ! नित्यमेव मम हितोद्यतोऽसि त्वम् । कथं बंधने प्राप्तो विधिपरिणामेन संग्रामे ॥२॥
हा पुत्र मेघवाहन ! इन्द्रजित् ! सुकुमालकोमलशरीराः । कथं वैरीणां मध्ये तिष्ठथातिदुःखिता बद्धाः ? ॥३॥
बद्धानामशरणानां कालगते लक्ष्मणे सशोकार्त्ताः । मम पुत्राणां रिपुभटा न च ज्ञायते किमपि करिष्यन्ति ॥४॥
हृदयस्य वल्लभैर्युस्माभि र्दुःखितैर्बद्धैः । अधिकतरमेव बद्धोऽहं नास्त्यत्र संदेहः ॥५॥
एवं गजे वा बद्धे महागजो दुःखितः स्वयूथे । तिष्ठति तथा दशवदनो बन्धुषु च शोकसंतप्तः ॥६॥
श्रुत्वा शक्तिप्रहतं सौमित्रिं जनकनन्दिनीतः । अथ विलपितुं प्रवृता शोकसमाच्छादितसर्वाङ्गी ॥७॥
हा भद्र लक्ष्मण ! त्वमुत्तीर्येमं सलिलनाथम् । मम कृतेन महायशः ! एतदवस्थां प्रपन्नोऽसि ॥८॥
मुक्त्वा बन्धवजनं निजकं ज्येष्ठस्य कारणयुक्तः । सुपुरुष ! राक्षसद्वीपे कथमसि त्वं प्राप्तो मरणम् ? ॥९॥
बालत्वे किं न मृताऽहं दुःखस्य भागिनी पापा ? । येनायं गुणनिलयो मम कृते लक्ष्मणो हतः ॥१०॥
सौमित्रे ! तव देवाः कुर्वन्तु जीवस्य पालनं सर्वे । शीघ्रं च विशल्यत्वं गच्छास्माकमपि वचनेन ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं सा जणयसुया, रोयन्ती[1] निययदेवरगुणोहा । कह कह वि खेयरीहिं, उवएससएसु संथविया ॥१२॥

तुह देवरस्स भद्दे !, अज्ज वि मरणं न नज्जइ निरुत्तं । वीरस्स विलवमाणी, मा सुयणु ! अमङ्गलं कुणसु ॥१३॥

किंचि अणाउलहियया, सीया विज्जाहरीण वयणेणं । जावऽच्छइ तावऽन्नं, सेणिय ! निसुणेसु संबन्धं ॥१४॥

ताव च्चिय संपत्तो, दारं दुग्गस्स खेयरो एक्को । भामण्डलेण रुद्धो, पविसन्तो अमुणियायारो ॥१५॥

विज्जाहरो पवुत्तो, जीवन्तं जइह इच्छसि कुमारं । दावेह मज्झ पउमं, तस्स उवायं परिकहेमि ॥१६॥

एव भणियम्मि तो सो, नीओ भामण्डलेण तुट्ठेणं । पउमस्स सन्नियासं, लक्खणकज्जुज्जयमणेणं ॥१७॥

पायप्पडणोवगओ, जंपइ सो सामि ! सुणसु मह वयणं । जीवइ एस कुमारो, पहओ विज्जाउहेण पहू ! ॥१८॥

ससिमण्डलस्स पुत्तो, नामेणं चन्दमण्डलो सामि ! । सुप्पभदेवीतणओ, सुरगीयपुराहिवो अहयं ॥१९॥

विहरन्तो गयणयले, वेलाजक्खस्स नन्दणेण अहं । दिट्ठो उ वेरिएणं, सहस्सविजएण पावेणं ॥२०॥

अह मेहुणियावेरं, सुमरिय सो दारुणं रणं काउं । पहणइ चण्डरवाए, सत्तीए ममं परमरुट्ठो ॥२१॥

पडिओ गयणयलाओ, तत्थ महिन्दोदए वरुज्जाणे । दढसत्तिसल्लिओ हं, दिट्ठो भरहेण नरवइणा ॥२२॥

चन्दणजलेण सित्तो, अहयं भरहेण कलुणजुत्तेणं । जाओ य विगयसल्लो, अईवबलकन्तिसंपन्नो ॥२३॥

एयन्तरम्मि रामो, पुच्छइ तं खेयरं ससंभन्तो । जइ जाणसि उप्पत्ती, साहसु मे तस्स सलिलस्स ॥२४॥

एवं सा जनकसुता रोचयन्ती निजदेवरगुणौघान् । कथंकथमपि खेचरिभिरुपदेशशतैस्संस्थापिता ॥१२॥

तव देवरस्य भद्रे ! अद्यापि मरणं न ज्ञायते निश्चितम् । वीरस्य विलपमानी मा सुतनु ! अमङ्गलं कुरु ॥१३॥

किंचिदनाकूलहृदया सीता विद्याधरीणां वचनेन । यावदास्ते तावदन्यं श्रेणिक ! निश्रुणु संबन्धम् ॥१४॥

तावदेव संप्राप्तो द्वारं दुर्गस्य खेचर एकः । भामण्डलेन रुद्धः प्रविशन्नमुणिताचारः ॥१५॥

विद्याधरः प्रोक्तो जीवन्तं यदीच्छसि कुमारम् । दर्शय मम पद्मं तस्योपायं परिकथयामि ॥१६॥

एवं भणिते तदा स नीतो भामण्डलेन तुष्टेन । पद्मस्य संनिकाशं लक्ष्मणकार्योद्यतमनसा ॥१७॥

पादपतनोपगतो जल्पति सः स्वामिन् ! श्रुणु मम वचनम् । जीवत्येष कुमारः प्रहतो विद्यायुधेन प्रभो ! ॥८॥

शशिमण्डलस्य पुत्रो नाम्ना चन्द्रमण्डलः स्वामिन् ! । सुप्रभादेवीतनयः सुरग्रीवपुराधिपोऽहम् ॥१९॥

विहरन्गगनतले वेलायक्षस्य नन्दनेनाऽहम् । दृष्टस्तु वैरिणा सहस्रविजयेन पापेन ॥२०॥

अथ[2] मैथुनिकावैरं स्मृत्वा स दारुणं रणं कृत्वा । प्रहन्ति चण्डरवया शक्त्या मां परमरुष्टः ॥२१॥

पतितो गगनतलात्तत्र महेन्द्रोदये वरोद्याने । दृढशक्तिशल्यितोऽहं दृष्टो भरतेन नरपति ॥२२॥

चन्दनजलेन सिक्तोऽहं भरतेन करुणायुक्तेन । जातश्च विगतशल्योऽतीवबलकान्तिसंपन्नः ॥२३॥

एतदन्तरे रामः पृच्छति तं खेचरं ससंभ्रान्तः । यदि जानास्युत्पत्तिः कथय मे तस्य सलिलस्य ॥२४॥

---

१. रोचयन्ती स्मरन्तीत्यर्थः । २. फोईनी दिकरी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो भणइ देव ! निसुणसु, अहयं जाणामि तस्स उप्पत्ती । परिपुच्छिएण सिट्ठं, भरहनरिन्देण मे सव्वं ॥२५॥
जह किल नयरसमग्गो, देसो रोगेण पीडिओ सव्वो । उवघाय-जरय-फोडय-दाहाऽरुइ-सूलमाईसु ॥२६॥
नवरं पुण इह नयरे, राया नामेण दोणमेहो त्ति । पसुमन्तिसयणपरियण-सहिओ सो जाउ नीरोगो ॥२७॥
सद्दाविओ य भणिओ कह रोगवज्जिओ सि तं जाओ ? । मामय ! साहेहि फुडं, एयं मे कोउयं परमं ॥२८॥
सो भणइ मज्झ दुहिया, अत्थि विसल्ला गुणाहिया लोए । जीसे गब्भत्थाए, जणणी रोगेण परिमुक्का ॥२९॥
जिणसासणाणुरत्ता, निच्चं पूयासमुज्जयमईया । बन्धूहि परियणेण य, पूइज्जइ देवया चेव ॥३०॥
ण्हाणोदएण तीए, सुरहिसुयन्धेण देव ! सित्तो हं । समयं निययजणेणं, तेण निरोगत्तणं पत्तो ॥३१॥
सुणिऊण वयणमेयं, विज्जाहरतो मए वरुज्जाणे । चरियं तु विसल्लाए, सत्तहिओ पुच्छिओ समणो ॥३२॥

लक्ष्मणस्य विशल्यायाश्च चरितम् -

जलहरगम्भीरसरो, चउनाणी साहिउं मह पवत्तो । अह पुण्डरीयविजए, नयरं चक्कद्धयं नाम ॥३३॥
तत्थेव चक्कवट्टी, धीरो परिवसइ तिहुयणाणन्दो । नामेण अणङ्गसरा, तस्स उ गुणसलिणी धूया ॥३४॥
अह अन्नया कयाई, सुपइट्ठपुराहिवेण सा कन्ना । हरिया पुणव्वसूणं, घणलोहायत्तचित्तेणं ॥३५॥
चक्कहरस्साऽऽणाए, सहसा विज्जाहरेहिं गन्तूणं । जुज्झं कयं महन्तं, तेण समं पहरविच्छड्डुं ॥३६॥
अह तस्स वरविमाणं, भग्गं चिय खेयरेहि रुट्ठेहिं । तत्तो विवडइ बाला, सोहा इव सरयचन्दस्स ॥३७॥

स भणति देव ? निश्रुण्वहं जानामि तस्योत्पत्तिः । परिपृष्टेन शिष्टं भरतनरेन्द्रेण मे सर्वम् ॥२५॥
यथा किल नगरसमग्रो देशो रोगेन पीडितः सर्वः । उपघात-ज्वर-स्फोट-दाहारुचि-शूलादिभिः ॥२६॥
नवरं पुनरिह नगरे राजा नाम्ना द्रोणमेघ इति । पशुमन्त्रिस्वजनपरिजनसहितः स जातो निरोगः ॥२७॥
शब्दायितश्च जातः भणितः कथं रोगविवर्जितोऽसित्वं ? । मामा ! कथय स्फुटमेतन्मेकौतुकं परमम् ॥२८॥
स भणति मम दुहिताऽस्ति विशल्या गुणाधिकालोके । यस्या गर्भस्थाया जननी रोगेन परिमुक्ता ॥२९॥
जिनशसानानुरक्ता नित्यं पूजासमुद्यतमतिका । बन्धुभिः परिजनेन च पूज्यते देवतैव ॥३०॥
स्नानोदकेन तस्याः सुरभिसुगन्धेन देव ! सिक्तोऽहम् । समकं निजजनेन तेन निरोगत्वं प्राप्तः ॥३१॥
श्रुत्वा वचनमेतद्विद्याधरान्मया वरोद्याने । चरितं तु विशल्यायाः सत्त्वहितः पृष्टः श्रमणः ॥३२॥

लक्ष्मणस्य विशल्यायाश्च चरितम् -

जलधरगम्भीरस्वरश्चतुर्ज्ञानी कथयितुं मम प्रवृत्तः । अथ पुण्डरिकविजये नगरं चक्रध्वजं नाम ॥३३॥
तत्रैव चक्रवर्त्ती धीरः परिवसति त्रिभुवनानन्दः । नाम्नाऽनङ्गश्वरा तस्य तु गुणशालिनी दुहिता ॥३४॥
अथान्यदा कदाचित्सुप्रतिष्ठपुराधिपेन सा कन्या । हृता पूनर्वसुना घनलोभायत्तचित्तेन ॥३५॥
चक्रधरस्याज्ञया सहसा विद्याधरैर्गत्वा । युद्धं कृतं महत्तेन समं प्रहरविच्छर्दम् ॥३६॥
अथ तस्य वरविमानं भग्नमेव खेचरै रुष्टैः । ततो विपतति बाला शोभेव शरदचन्द्रस्य ॥३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुण्णलहुयाए तो सा, विज्जाए पुणव्वसूनिउत्ताए। सावयपउररवाए, पडिया अडवीए घोराए ॥३८॥
विविहतरुसंकडुट्ठिय-अन्नोन्नालीढवेणुसंघाया। विसमगिरिदुप्पवेसा, सावयसससंकुला भीमा ॥३९॥
सा तत्थ वुण्णहियया, दस वि दिसाओ खणं पलोएउं। सुमरिय बन्धुसिणेहं, कुणइ पलावं महुरवाणी ॥४०॥
हा ताय ! सयललोयं परिवालसि विक्कमेण जियसत्तू।
कह अणुकम्पं न कुणसि, एत्थ अरण्णम्मि पावाए ? ॥४१॥
हा जणणि ! उदरदुक्खं, तारिसयं विसहिऊण अइगरुयं। भयविहलदुम्मणाए, कह मज्झ तुमं न संभरसि? ॥४२॥
हा परिवग्ग ! गुणायर, वच्छल्लं तारिसं करेऊणं। कह पावयारिणीए, संपइ मे अवहियं सव्वं ॥४३॥
काऊण विप्पलावं, सा य तहिं गग्गरेण कण्ठेणं। अच्छइ दुक्खियविमणा, बाला घारोडवीमज्झे ॥४४॥
असण-तिसाअभिभूया, पत्त-फलाहारिणी तहिं बाला। भुञ्जइ य एक्कवेलं, अट्ठमदसमोववासेहिं ॥४५॥
गमिओ य सिसिरकालो, सीयमहावेयणं सहन्तीए। अग्गीतावणरहिओ, कुड्डुनिवासेण परिहीणो ॥४६॥
पत्तो वसन्तमासो, नाणाविहकुसुमगन्धरिद्धिल्लो। तत्तो गिम्हो पत्तो, संतावकरो य सत्ताणं ॥४७॥
घणगज्जियतूररवो, धारासंजणियतडयडारावो। चञ्चलतडिच्छडालो, पाउसकालो वि नित्थिण्णो ॥४८॥
एवं साऽणङ्गसरा, वाससहस्साणि तिण्णि तवचरणं। काऊण य संविग्गा, ववसइ संलेहणं तत्तो ॥४९॥
पच्चक्खिय आहारं, चउव्विहं देहमाइयं सव्वं। भणइ य हत्थसयाओ, एत्तो परओ न गन्तव्वं ॥५०॥

पुण्यलघुतया तदा सा विद्यया पुनर्वसुनियुक्त्या। श्वापदप्रचुररवायां पतिताऽटव्यां घोरायाम् ॥३८॥
विविधतरुसंकटोत्थितान्योन्यालीढवेणुसंघातायाम्। विषमगिरिदुष्प्रवेशायां श्वापदशतसंकुलायां भीमायाम् ॥३९॥
सा तत्र भीतहृदया दशापि दिशः क्षणं प्रलोक्य। स्मृत्वा बन्धुस्नेहं करोति प्रलापं मधुरवाणी ॥४०॥
हा तात ! सकललोकं परिपालयसि विक्रमेण जितशत्रुः। कथमनुकम्पां न करोष्यत्रारण्ये पापायाः ? ॥४१॥
हा जननी ! उदरदुःखं तादृशं विसह्यातिगुरुकम्। भयविह्वलदुर्मनां कथं मां त्वं न स्मरसि ? ॥४२॥
हा परिवर्ग ! गुणाकर ! वात्सल्यं तादृशं कृत्वा। कथं पापाचरिण्याः संप्रति मे ऽपहितं सर्वम् ॥४३॥
कृत्वा विप्रलापं सा च तत्र गद्गदेन कण्ठेन। आस्ते दुःखितविमना बाला घोराटवीमध्ये ॥४४॥
अशन-तृषाभिभूता पत्र-फलाहारिणी तत्र बाला। भुङ्क्ते चैकवेलमष्टमदशमोपवासैः ॥४५॥
गतश्च शिशिरकालः शीतमहावेदना सहमानायाः। अग्नितापनरहितः कुड्यनिवासेन परिहीणः ॥४६॥
प्राप्तो वसन्तमासो नानाविधकुसुमगन्धर्द्धिः। ततो ग्रीष्मः प्राप्तः संतापकरश्च सत्त्वानाम् ॥४७॥
घनगर्जिततूर्यरवो धारासंजनिततडतडारावः। चञ्चलतडिच्छटालः प्रावृट्कालोऽपि निस्तीर्णः ॥४८॥
एवं साऽनंगशरा वाससहस्राणि त्रिणि तपश्चरणम्। कृत्वा च संविग्ना व्यवसति संलेखनं ततः ॥४९॥
प्रत्याख्यायाहारं चतुर्विधं देहादिकं सर्वम्। भणति च हस्तशतादितः परतो न गन्तव्यम् ॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियमस्स छट्ठदिवसे, वोलीणे नवरि खेयरो एक्को । नामेण लद्धियासो, पणमिय मेरुं पडिनियत्तो ॥५१॥
तं दट्ठूणऽवइण्णो, नेन्तो पिइगोयरं निरुद्धो सो । भणिओ वच्चसु देसं, को वावारो तुमं एत्थं ? ॥५२॥
तुरियं च लद्धियासो, संपत्तो चक्कवट्टिणो मूलं । आगच्छइ तेण समं, जत्थऽच्छइ जोयजुत्ता सा ॥५३॥
अवइण्णो चक्कहरो, पेच्छइ तं अयगरेण खज्जन्तिं । काऊण विप्पलावं, निययपुरं पत्थिओ सिग्घं ॥५४॥
बावीससहस्सेहिं, पुत्ताणं जाय तिव्वजायसंवेगो । समणत्तं पडिवन्नो, चक्कहरो तिहुयणाणन्दो ॥५५॥
खज्जन्तीए वि तहिं, बालाए सो हु अयगरो पावो । [1]नो मारिओ किवाए, मन्तं जाणन्तियाए वि ॥५६॥
धम्मज्झाणोवगया, खद्धा मरिऊण देवलोगम्मि । उववन्ना कयपुण्णा, देवी दिव्वेण रूवेणं ॥५७॥
जिणिऊण खेयरिन्दे, पुणव्वसू तीए विरहदुक्खत्तो । सणियाणो पव्वइओ, दुमसेणमुणिस्स पासम्मि ॥५८॥
तत्तो सो चरिय तवं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो । चविऊण दसरहसुओ, जाओ च्चिय लक्खणो एसो ॥५९॥
तत्तो साऽणङ्गसरा, कमेण चइऊण देवलोगाओ । दोणघणरायधूया, विसल्लनामा समुप्पन्ना ॥६०॥
जेणं चिय अन्नभवे, तव-चरणं अज्जियं सउवसग्गं । तेणं इमा विसल्ला, बहुरोगपणासिणी जाया ॥६१॥
बहुविहरोगामूलं, वाऊ अइदारूणो समुप्पन्नो । परिपुच्छिएण मुणिणा, तस्स वि य समुब्भवो सिट्ठो ॥६२॥

नियमस्य षष्टदिवसं व्यतीते नवरि खेचर एकः । नाम्ना लब्धिदासः प्रणम्य मेरुं प्रतिनिवृत्तः ॥५१॥
तां दृष्ट्वाऽवतीर्णो नयन्पितृगोचरं निरुद्धः सः । भणतिः व्रज देशं को व्यापारस्तवात्र ? ॥५२॥
त्वरितं च लब्धिदासः संप्राप्तश्चक्रवर्तिनो मूलम् । आगच्छति तेन समं यत्रास्ते योगयुक्ता सा ॥५३॥
अवतीर्णश्चक्रधरः पश्यति तामजगरेण खाद्यमानाम् । कृत्वा विप्रलापं निजपुरं प्रस्थितः शीघ्रम् ॥५४॥
द्वाविंशतिसहस्रैः पुत्राणां जात तीव्रजातसंवेगः । श्रमणत्वं प्रतिपन्नश्चक्रधरस्त्रिभुवनानन्दः ॥५५॥
खाद्यमानयापि तत्र बालया स खलु अजगरः पापः । न मारितः कृपया मन्त्रं जानन्त्याऽपि ॥५६॥
धर्मध्यानोपगता भक्षिता मृत्वा देवलोके । उत्पन्ना कृतपुण्या देवी दिव्येन रुपेण ॥५७॥
जित्वा खेचरेन्द्रान्पुनर्वसुस्तस्या विरहदुखार्तः । सनिदानः प्रव्रजितो द्रुमसेन मुनेः पार्श्वे ॥५८॥
ततः स चरित्वा तपः कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः । च्युत्वा दशरथसुतो जात एव लक्ष्मण एषः ॥५९॥
ततः साऽनङ्गशरा क्रमेण च्युत्वा देवलोकात् । द्रोणघनराजसुता विशल्यानामा समुत्पन्ना ॥६०॥
येनैवान्यभवे तपश्चरणमर्जितं सोपसर्गम् । तेनेमा विशल्या बहुरोगप्रणाशिनी जाता ॥६१॥
बहुविधरोगामूलं वायुरतिदारुणः समुत्पन्नः । परिपृष्टेन मुनिना तस्यापि च समुद्भवः शिष्टः ॥६२॥

---

१. णोसारिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुरोगोत्पत्तिकारणम् -

गयपुरनयरनिवासी, विञ्झो नामेण बहुधणापुण्णो । भण्डं घेत्तूण गओ, साएयपुरिं महिसएहिं ॥६३॥

सो तत्थ मासमेगं, अच्छइ भण्डस्स कारणे सेट्ठी । ताव य से वरमहिसो, पडिओ भाराइरेगेणं ॥६४॥

कम्मपरिनिज्जराए, मओ य पवणासुरो समुप्पन्नो । सेयंकरपुरसामी, पवणावत्तो त्ति नामेणं ॥६५॥

अवहिविसएण देवो, नाऊणं पुव्वजम्मसंबन्धं । ताहे जणस्स सिग्घं, चिन्तेइ वहं परमरुट्ठो ॥६६॥

जो सो मज्झ जणवओ, पायं ठविऊण उत्तमङ्गम्मि । वच्चन्तओ य लोगो, तस्स फुडं निग्गहं काहं ॥६७॥

एव परिचिन्तिऊणं, सहसा देसे पुरे य आरुट्ठो । देवो पउञ्जइ तओ, बहुरोगसमुब्भवं वाउं ॥६८॥

सो तारिसो उ पवणो, बहुरोगसमुब्भवो विसल्लाए । नीओ खणेण पलयं, तेणं चिय ण्हाणसलिलेणं ॥६९॥

भरहस्स जहा सिट्ठं, साहूणं सव्वभूयसरणेणं । भरहेण वि मज्झ पहू, मए वि तुज्झं समक्खायं ॥७०॥

अहिसेयजलं तीए, तुरियं आणेह तत्थ गन्तूणं । जीवइ तेण कुमारो, न पुणो अन्नेण भेएणं ॥७१॥

अहो ! नराणं तु समत्थलोए, अवट्ठियाणं पि हु मच्चुमग्गे ।
समज्जियं जं विमलं तु कम्मं, करेइ ताणं सरणं च खिप्पं ॥७२॥

॥ इय पउमचरिए विसल्लापुव्वभवाणुकित्तणं नाम तिसट्ठं पव्वं समत्तं ॥

वायुरोगोत्पत्तिकारणम्-

गजपुरनगरनिवासी विंध्यो नाम्ना बहुधनापूर्णः । भाण्डं गृहीत्वा गतः साकेतपुरिं महिषिभिः ॥६३॥

स तत्र मासमेकमास्ते भाण्डस्य कारणे श्रेष्ठिः । तावच्च तस्य वरमहिषः पतितो भारातिरेकेण ॥६४॥

कर्मपरिनिर्जरया मृतश्च पवनासुरः समुत्पन्नः । श्रेयंकरपुरस्वामी पवनावर्त्त इति नाम्ना ॥६५॥

अवधिविषयेण देवो ज्ञात्वा पूर्वजन्मसम्बन्धम् । तदा जनस्य शीघ्रं चिन्तयति वधं परमरुष्टः ॥६६॥

यः स मम जनपदः पादं स्थापयित्वोत्तमाङ्गे व्रजंश्च लोकस्तस्य स्फुटं निग्रहं करिष्ये ॥६७॥

एवं परिचिन्त्य सहसा देशे च पुरे चारुष्टः । देवः पर्युञ्जति ततो बहुरोगसमुद्भवं वायुम् ॥६८॥

स तादृशस्तु पवनो बहुरोग समुद्भवो विशल्यायाः । नीतः क्षणेन प्रलयं तेनैव स्नानसलिलेन ॥६९॥

भरतस्य यथा शिष्टं साधुना सर्वभूतशरणेन । भरतेनापि मम प्रभो ! मयाऽपि त्वां समाख्यातम् ॥७०॥

अभिषेकजलं तस्यास्त्वरितमानय तत्र गत्वा । जीवति तेन कुमारो न पुनरन्येन भेदेन ॥७१॥

अहो ! नराणां तु समस्तलोक अवस्थितानामपि हु मृत्युमार्गे ।
समर्जितो यद्विमलं तु कर्म करोति त्राणं शरणं च क्षिप्रम् ॥७२॥

॥ इथि पद्मचरिते विशल्यापूर्वभवानुकीर्त्तनं नाम त्रिषष्टितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६४. विसल्लाआगमणपव्वं

सुणिऊण वयणमेयं, सेणिय ! रामो तओ सुपरितुट्ठो । विज्जाहरेहि समयं, करेइ मन्तं गमणकज्जे ॥१॥
जम्बूनयाइएहिं, मन्तीहिं राहवो तओ भणिओ । पेसेह जलस्स इमे, अङ्गय-हणुयन्त-जणयसुया ॥२॥
भामण्डलो य हणुओ, सुग्गीवसुओ य रामदेवेणं । भणिया साएयपुरी, वच्चह उदयस्स कज्जेणं ॥३॥
आणं पडिच्छिऊणं, अह ते विज्जाहरा खणद्धेणं । पत्ता साएयपुरिं, नरिन्दभवणम्मि ओइण्णा ॥४॥
संगीयएण भरहो, उवगिज्जन्तो विबोहिओ सिग्घं । भवणाउ समोइण्णो, अह पुच्छइ खेयरे तुट्ठो ॥५॥
सीयाहरणनिमित्ते, पहओ लच्छीहरो य सत्तीए । भरहस्स तेहि सिट्ठं, कहियं संखेवओ सव्वं ॥६॥
सोऊण इमं भरहो, रुट्ठो दावेइ तो महाभेरी । हय-गय-रहेहि समयं, सन्नद्धो तक्खणं चेव ॥७॥
सोण भेरिसद्दं, सव्वो साकेयपुरवरीलोगो । किं किं ? ति उल्लवन्तो, भयविहलविसंठलो जाओ ॥८॥
भणइ जणो किं एसो, अइविरियसुओ इहागओ रत्तिं ? । भरहस्स छिद्दहाई, जो निययं चेव पडिकूलो ॥९॥
एयं घेत्तूण लहुं, मणिकणयं रुप्पयं पवालं च । वत्थाहरणं च बहुं, करेह भूमीहरल्लीणं ॥१०॥
रह-गय-तुरयारूढा, सुहडा सत्तुग्घयाइया सव्वे । सन्नद्धबद्धकवया, भरहस्स घरं समल्लीणा ॥११॥

---

६४. विशल्यागमन पर्वम्

श्रुत्वा वचनमिदं श्रेणिक ! रामस्ततः परितुष्टः । विद्याधरैः समकं करोति मन्त्रं गमनकार्ये ॥१॥
जम्बूनदादिभि र्मन्त्रिभी राघवस्ततो भणितः । प्रेष्यध्वं जलस्येमे ऽङ्गद-हनुमान्-जनकसुताः॥२॥
भामण्डलश्च हनुमान् सुग्रीवसुतश्च रामदेवेन । भणिता साकेतपुरिं गच्छतोदकस्य कार्येण ॥३॥
आज्ञां प्रतीच्छयाथ ते विद्याधराः क्षणार्द्धेन । प्राप्ताः साकेतपुरिं नरेन्द्रभवनेऽवतीर्णाः ॥४॥
संगीतकेन भरत उपगीयमानो विबोधितः शीघ्रम् । भवनात्समवतीर्णोऽथ पृच्छति खेचरांस्तुष्टः ॥५॥
सीताहरणनिमित्ते प्रहतो लक्ष्मीधरश्च शक्त्या । भरतस्य तैः शिष्टं कथितं संक्षेपतः सर्वम् ॥६॥
श्रुत्वेदं भरतो रुष्टो दापयति तदा महाभेरिम् । हय-गज-रथैः समकं सन्नद्धस्तत्क्षणमेव ॥७॥
श्रुत्वा भेरिशब्दं सर्वः साकेतपुरिलोकः । किं किंमित्युल्लपन्भयविह्वलविसंस्थूलो जातः ॥८॥
भणति जनः किमेष अतिवीर्यसुत इहागतो रात्रिम् ? । भरतस्य छिद्रघाति र्यो नित्यमेव प्रतिकूलः ॥९॥
एतद्गृहीत्वा लघु मणिकनकं रुप्यकं प्रवालं च । वस्त्राभरणं च बहुं कुरुत भूमिगृहलीनम् ॥१०॥
रथ-गज-तुरगारुढाः सुभटाः शत्रुघ्नादयः सर्वे । सन्नद्धबद्धकवचा भरतस्य गृहं समालीनाः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रणद्धरिहत्थुच्छाहं, भरहं दट्ठूण गमणतत्तिल्लं। तो भणइ जणयतणओ, जं भण्णसि तं निसामेहि ॥१२॥

लङ्कापुरी नराहिव !, दूरे लवणो य अन्तरे उयही। भीमो अणोरपारो, कह तं लङ्केसि पयचारी ? ॥१३॥

भरहेण वि सो भणिओ, कायव्वं किं मएत्थ करणिज्जं ?। साहेहि मज्झ सिग्घं, जेण पणामेमि ते सव्वं ॥१४॥

तो भणइ जणयतणओ, एयं ण्हाणोदयं विसल्लाए। अम्हं देहि महायस !, मा वक्खेवं कुणसु एत्तो ॥१५॥

एएण सित्तमेत्तो, जीवइ लच्छीहरो निरुत्तेणं। वच्चामो तेण लहुं, मरइ पुणो उग्गए सूरे ॥१६॥

भरहेण वि सो भणिओ, किं गहणं पाणिएण एएणं ?। सयमेव सा विसल्ला, जाउ तहिं दोणमेहसुया ॥१७॥

आइट्ठं चिय मुणिणा, जह एसा तस्स पढमकल्लाणी। होही महिलारयणं, न चेव अन्नस्स पुरिसस्स ॥१८॥

दोणघणस्स सयासं, भरहेण य पेसिओ तओ दूओ। न य देइ सो विसल्लं, सन्नद्धो पुत्तबलसहिओ ॥१९॥

सो केगईए गन्तुं, पबोहिओ सुमहुरेहि वयणेहिं। ताहे परितुट्ठमणो, दोणो धूयं विसज्जेइ ॥२०॥

भामण्डलेण तो सा, आरुहिया अत्तणो वरविमाणे। कन्नाण सहस्सेणं, सहिया य नरिन्दधूयाणं ॥२१॥

उप्पइऊण गया ते, सिग्घं संगाममेइणी सुहडा। अग्घाइकयाडोवा, अवइण्णा वरविमाणा णं ॥२२॥

सा वि य तहिं विसल्ला, सुललियसियचामरेहि विज्जन्ती। हंसीव संचरन्ती, संपत्ता लक्खणसमीवं ॥२३॥

सा तीए फुसिय सन्ती, सत्ती वच्छत्थलाउ निप्फिडिया। कामुयघरस्स नज्जइ, पदुट्ठमहिला इव पणट्ठा ॥२४॥

विप्फुरियाणलनिवहा, सा सत्ती नहयलेण वच्चन्ती। हणुवेण समुप्पइउं, गहिया अईवेगवन्तेणं ॥२५॥

रणदक्षोत्साहं भरतं दृष्ट्वा गमनतत्परम्। तदा भणति जनकतनयो यद्भण्यसे तन्निशामय ॥१२॥

लङ्कापुरी नराधिप ! दूरे लवणश्चान्तर उदधिः। भीमोऽनोरपारः कथं तं लङ्घयसि पादाचारी ? ॥१३॥

भरेतनाऽपि स भणितः कर्त्तव्यं किं मयात्रकरणीयम् ?। कथय मम शीघ्रं येनार्पयामि ते सर्वम् ॥१४॥

तदाभणति जनकतनय एतत्स्नानोदकं विशल्यायाः। अस्मान्देहि महायशः ! मा व्याक्षेपं कुरुतः ॥१५॥

एतेन सिक्तमात्रो जीवति लक्ष्मीधरो निश्चयेन। व्रजामस्तेन लघु म्रियते पुनरुद्गते सूर्ये ॥१६॥

भरतेनापि स भणितः किं ग्रहणं पानीयेनैतेन ?। स्वयमेव विशल्या यातुतत्र द्रोणमेघसुता ॥१७॥

आदिष्टमेव मुनिना यथैषा तस्य प्रथमकल्याणी। भविष्यति महिलारत्नं न चैवान्यस्य पुरुषस्य ॥१८॥

द्रोणघनस्य सकाशं भरतेन च प्रेषितस्ततो दूतः। न च ददाति स विशल्यां सन्नद्धः पुत्रबलसहितः ॥१९॥

स केकय्या गत्वा प्रबोधितः सुमधुरै र्वचनैः। तदा परितुष्टमनाः द्रोणो दुहितरं विसर्जयति ॥२०॥

भामण्डलेन तदा साऽरोहिताऽऽत्मनो वरविमाने। कन्यानां सहस्रेण सहिता च नरेन्द्रदुहितृणाम् ॥२१॥

उत्पत्य गतास्ते शीघ्रं संग्राममेदिनीं सुभटाः। अर्घ्यादिकृताटोपा अवतीर्णा वरविमानेभ्यः ॥२२॥

साऽपि च तत्र विशल्या सुललितश्वेतचामरै विज्यमानी। हंसीव संचरन्ती संप्राप्ता लक्ष्मणसमीपम् ॥२३॥

सा तया स्पृष्टा सती शक्ति वक्षःस्थलान्निस्फिटिता। कामुकगृहाज्ज्ञायते प्रदुष्टमहिलैव प्रनष्टा ॥२४॥

विस्फुरितानलनिवहा सा शक्ति र्नभःस्थलेन गच्छन्ती। हनुमता समुत्पत्य गृहीताऽतिवेगवता ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमोघविजयाशक्तिः-

अह सा खणेण जाया, वरमहिला दिव्वरूवसंपन्ना । भणइ तओ हणुयन्तं, मुञ्चसु मं नत्थि मे दोसो ॥२६॥
सत्ती अमोहविजया, नामेण अहं तिलोगविक्खाया । लङ्काहिवस्स दिन्ना, तुट्ठेणं नागराएणं ॥२७॥
कइलासपव्वओवरि, तइया वालिस्स जोगजुत्तस्स । उक्कत्तेऊण भुया, कया य वीणा दहमुहेणं ॥२८॥
चेइयधराण पुरओ, जिणचरियं तत्थ गायमाणस्स । परितोसिएण दिन्ना, धरणेण अहं दहमुहस्स ॥२९॥
सा हं न केणइ पहू !, पुरिसेणं निज्जिया तिहुयणम्मि । मोत्तूण विसल्लं वि हु, दुस्सहतेयं गुणकरालं ॥३०॥
एयाए अन्नजम्मे, घोरं समुवज्जियं तवोकम्मं । असण-तिसा-सीया-ऽऽयवसरीरपीडं सहन्तीए ॥३१॥
जिणवरतवस्स पेच्छसु, माहप्पं परभवे सुचिण्णस्स । जेणेरिसाइं सुपुरिस !,साहिज्जन्तीह कज्जाइं ॥३२॥
अहवा को इहलोगम्मि विम्हओ साहिएण कज्जेणं ? । पावइ जेण सिवसुहं, जीवो कम्मक्खयं काउं ॥३३॥
मुञ्च परायत्ता हं, इमाए परिनिज्जिया तवबलेण । वच्चामि निययठाणं, खमसु महं सामि ! दुच्चरियं ॥३४॥
काऊण समुल्लावं, एवं तो सत्तिदेवयं हणुओ । मुञ्चइ संभमहियओ, नियट्ठाणं च संपत्ता ॥३५॥
सा दोणमेहधूया, समयं कन्नाहि विणयसंपन्ना । नमिऊण रामदेवं, उवविट्ठा लक्खणसमीवे ॥३६॥
परिमुसइ लक्खणं सा, मुद्धा वरकमलकोमलकरेसु । गोसीसचन्दणेण य, अणुलिम्पइ अङ्गमङ्गाइं ॥३७॥
अन्नं पिव संपत्तो, जम्मं लच्छीहरो सुहपसुत्तो । आयम्बनयणजुयलो, पचलियबाहू समुस्ससिओ ॥३८॥

अमोघविजयाशक्तिः -

अथ सा क्षणेन जाता वरमहिला दिव्यरुपसंपन्ना । भणति ततो हनुमन्तं मुञ्च मां नास्ति मे दोषः ॥२६॥
शक्तिरमोघविजया नाम्नाहं त्रिलोकविख्याता । लङ्काधिपस्य दत्ता तुष्टेन नागराजेन ॥२७॥
कैलाशपर्वतोपरि तदा वाले र्योगयुक्तस्य । उत्कर्त्य भूजां कृता च वीणा दशमुखेन ॥२८॥
चैत्यगृहाणां पुरतो जिनचरितं तत्र गीयमानस्य । परितोषितेन दत्ता धरणेनाहं दशमुखस्य ॥२९॥
साऽहं न केनचित्प्रभो ! पुरुषेण निर्जिता त्रिभुवने । मुक्त्वा विशल्यामपि हु दुस्सहतेजसं गुणकरालाम् ॥३०॥
अनयाऽन्यजन्मनि घोरं समुपार्जितं तपः कर्म । अशन-तृषा-शीताऽऽतप शरीरपीडां सहमानया ॥३१॥
जिनवरतपसः पश्य माहत्म्यं परभवे सुचीर्णस्य । येनेदृशानि सत्पुरुष ! साध्यन्त इह कार्याणि ॥३२॥
अथवा क इहलोके विस्मयः साधितेन कार्येण ? । प्राप्नोति येन शिवसुखं जीवः कर्मक्षयं कृत्वा ॥३३॥
मुञ्च परायत्ताऽहमनया परिनिर्जिता तपोबलेन । व्रजामि निजस्थानं क्षमस्व मम स्वामिन् ! दुश्चरितम् ॥३४॥
कृत्वा समुल्लापमेव ततः शक्तिदेवतां हनुमान् । मुञ्चति संभ्रमहृदयो निजस्थानं च संप्राप्ता ॥३५॥
सा द्रोणमेघ दुहिता समकं कन्याभि र्विनयसंपन्ना । नत्वा रामदेवमुपविष्टा लक्ष्मणसमीपे ॥३६॥
परिमार्ष्टि लक्ष्मणं सा मुग्धा वरकमलकोमलकरैः । गोशीर्षचन्दनेन चानुलिम्पत्यङ्गमङ्गानि ॥३७॥
अन्यदिव संप्राप्तो जन्म लक्ष्मीधरः सुखप्रसुप्तः । आताम्रनयनयुगलः प्रचलितबाहुः समुच्छ्वसितः ॥३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संगीयएण तो सो, उवगिज्जन्तो समुट्ठिओ सहसा । रुट्ठो पलोयमाणो, जंपइ सो रावणो कत्तो ? ॥३९॥

रोमञ्चकक्कसेणं, वियसियनयणेण पउमनाहेणं । अवगूहिओ कणिट्ठो, भणिओ य रिवू पणट्ठो सो ॥४०॥

सिट्ठं च निरवसेसं, सत्तीपहराइयं जहावत्तं । जणिओ य महाणन्दो, मन्दरपमुहेहि सुहडेहिं ॥४१॥

पउमवयणेण दिन्नं, करेण तं चन्दणं विसल्लाए । दिव्वाउहपहयाणं, इन्दइपमुहाण सुहडाणं ॥४२॥

ते चन्दणोदएणं, अहिसित्ता खेयरा गया तुरिया । जाया य विगयसल्ला, संपत्ता निव्वुइं परमं ॥४३॥

सा तत्थ चन्दवयणा, दोणसुया ललियरूवलायण्णा । लच्छीहरस्स पासे, विभाइ देवि व्व इन्दस्स ॥४४॥

सव्वम्मि सुपडिवत्ते, सोमित्ती राहवस्स वयणेणं । परिणेइ दढधिईओ, तत्थ विसल्ला विभूईए ॥४५॥

एवं नरा पुव्वभवज्जिएणं, धम्मेण जायन्ति विमुक्कदुक्खा ।
पावन्ति दिव्वाणि जहिच्छियाणि, लोए पहाणं विमलं जसं च ॥४६॥

॥ इय पउमचरिए विसल्लाआगमणं नामं चउसट्ठिमं पव्वं समत्तं ॥

संगीतकेन तदा स उपगीयमानः समुस्थितः सहसा । रुष्टः प्रलोक्यमानो जल्पति स रावणः कुतः ? ॥३९॥

रोमाञ्चकर्कशेन विकसितनयनेन पद्मनाथेन । आलिङ्गितः कनिष्ठो भणितश्चरिपुः प्रनष्टः सः ॥४०॥

शिष्टं च निरवशेषं शक्तिप्रहारादिकं यथावृत्तम् । जनितश्च महान्दो मन्दरप्रमुखैः सुभटः ॥४१॥

पद्मवचनेन दत्तं करेण तं चन्दनं विशल्यया । दिव्यायुधप्रहतानामिन्द्रजित्प्रमुखानां सुभटानाम् ॥४२॥

ते चन्दनोदकेनाभिसिक्तः खेचराः गतास्त्वरिताः । जाताश्च विगतशल्याः संप्राप्ता निवृत्तिं परमाम् ॥४३॥

सा तत्र चन्द्रवदना द्रोणसुता ललितरुपलावण्या । लक्ष्मीधरस्य पार्श्वे विभाति देवीवेन्द्रस्य ॥४४॥

सर्वस्मिन्सुप्रयुक्ते सौमित्री राघवस्य वचनेन । परिणयति दृढधृतिस्तत्र विशल्यां विभूत्या ॥४५॥

एवं नराः पूर्वभवार्जितेन धर्मेण जायन्ति विमुक्तदुःखाः ।
प्राप्नुवन्ति दिव्यानि यथेच्छितानि लोके प्रधानं विमलं यशश्च ॥४६॥

॥ इति पद्मचरिते विशल्याऽऽगमनं नाम चतुषष्ठितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६५. रावणदूयाभिगमणपव्वं

अह लक्खणं विसल्लं, चरियपुरिसेहिं साहियं एत्तो । सुणिऊण रक्खसवई, मन्तीहि समं कुणइ मन्तं ॥१॥

विविहकलागमकुसलो, मियङ्कनामो तओ भणइ मन्ती ।
रूससि जइ वा तूससि, तह वि य निसुणेहि मह वयणं ॥२॥

रामेण लक्खणेण य, विज्जाओ सीह-गरुडनामाओ । लद्धाउ अयत्तेणं, तुज्झ समक्खं इहं सामि ! ॥३॥

बद्धो य भाणुकण्णो, समयं पुत्तेहि तुज्झ संगामे । सत्तीए निरत्थत्तं, जायं च अमोहविजयाए ॥४॥

जइ जीवइ निक्खुत्तं, सोमित्ती तह वि तुज्झ पुत्ताणं । दीसइ सामि ! विणासो,समयं चिय कुम्भयण्णेणं ॥५॥

सयमेव एवमेयं, नाऊणऽम्हेहि जाइओ सन्तो । अणुचरसु धम्मबुद्धिं, सामिय ! सीयं समप्पेहि ॥६॥

पुव्वपुरिसाणुचिण्णा, मज्जाया पालिया सह जणेणं । [१]बन्धवमित्ताण हियं, होइ फुडं सन्धिकरणेणं ॥७॥

पयवडिएहि एवं, जं भणिओ मन्तिणेहि दहवयणो । गमियं करेइ दूयं, सामन्तं नाम नामेणं ॥८॥

मन्तीहि समुदएणं, संदिट्ठं सुन्दरं तु दूयस्स । नवरं महोसहं पिव, सुदूसियं रावणऽत्थेणं ॥९॥

उत्तमकुलसंभूओ, दूओ नय-विणय-सत्तिसंपन्नो । रामस्स सन्नियासं, सामन्तो पत्थिओ सिग्घं ॥१०॥

पायवडिओ निविट्ठो, सामन्तो भणइ राहवं एत्तो । लङ्काहिवस्स वयणं, कहिज्जमाणं निसामेहि ॥११॥

---

६५. रावणदूताभिगमनपर्वम्

अथ लक्ष्मणं विशल्यं चरपुरुषैःकथितमितः । श्रुत्वा राक्षसपति र्मन्त्रिभिः समं करोति मन्त्रम् ॥१॥

विविधकलागमकुशलो मृगाड्कनाम ततो भणति मन्त्रिः । रुष्यसि यदिवा तुष्यसि तथा पि च निश्रुणु मम वचनम् ॥२॥

रामेण लक्ष्मणेन च विद्या सिंह-गरुडनामा । लब्धाऽयत्नेन तव समक्षमिह स्वामिन् ! ॥३॥

बद्धश्च भानुकर्णः समकं पुत्रैस्तवसंग्रामे । शक्त्या निरर्थकं जातं चामोघविद्यायाः ॥४॥

यदि जीवति निश्चितं सौमित्रिस्तथापि तव पुत्राणाम् । दृश्यते स्वामिन् ! विनाशः समकमेव कुम्भकर्णेन ॥५॥

स्वयमेवेवमेतज्ज्ञात्वाऽस्माभिर्याचितस्सन् । अनुचर धर्मबुद्धिं स्वामिन् ! सीतां समर्पय ॥६॥

पूर्वपुरुषाणुचीर्णा मर्यादा पालिता सह जनेन । बान्धवमित्राणां हितं भविष्यति स्फुटं सन्धिकरणेन ॥७॥

पादपतितैरेव यद्भणितो मन्त्रिभि र्दशवदनः । गमनं करोति दूतः सामन्तो नाम नाम्ना ॥८॥

मन्त्रिभिः समुदयेन संदिष्टं सुन्दरं तु दूतस्य । नवरं महौषधमिव सुदुषितं रावणार्थेन ॥९॥

उत्तमकुलसंभूतो दूतो नय-विनय-शक्तिसंपन्नः । रामस्य सन्निकाशं सामन्तः प्रस्थितः शीघ्रम् ॥१०॥

पादपतितो निविष्टः सामन्तो भणति राघवमितः । लड्काधिपस्य वचनं कथ्यमानं निशामय ॥११॥

---

१. बन्धवपुत्ताण-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जुज्झेण किर न कज्जं, सपच्चवाएण जणविणासेणं । बहवो गया खयन्तं, पुरिसा जुज्झाहिमाणेणं ॥१२॥
जंपइ लङ्काहिवई, कुणसु पयत्तेण सह मए संधी । न य घेप्पइ पञ्चमुहो, विसमगुहामज्झयारत्थो ॥१३॥
बद्धो जेण रणमुहे, इन्दो परिनिज्जिया भडा बहवे । सो रावणो महप्पा, राहव ! किं ते असुयपुव्वो ? ॥१४॥
पायाले गयणयले, जले थले जस्स वच्चमाणस्स । न खलिज्जइ गइपसरो, राहव ! देवासुरेहिं पि ॥१५॥
लवणोदहिपरियन्तं, वसुहं विज्जाहरेसु य समाणं । लङ्कापुरीए भागे, दोण्णि तुमं देमि तुट्ठो हं ॥१६॥
पेसेहि मज्झ पुत्ते, मुञ्चसु एक्कोयरं नियबन्धुं । अणुमण्णसु जणयसुया, जइ इच्छसि अत्तणो खेमं ॥१७॥
तो भणइ पउमनाहो, न य मे रज्जेण कारणं किंचि । जं अन्नपणइणिसमं, भोगं नेच्छामि महयं पि ॥१८॥
पेसेमि तुज्झ पुत्ते, सहोयरं चेव रावण ! निरुत्तं । होहामि सुपरितुट्ठो, जइ मे सीयं समप्पेहि ॥१९॥
एयाए समं रण्णे, भमिहामि सुमित्तिपरिमिओ अहयं । भुञ्जसु तुमं दसाणण !, सयलसमत्थं इमं वसुहं ॥२०॥
एयं चिय दूय ! तुमं, तं भणसु तिकूडसामियं गन्तुं । एयं तुज्झ हिययरं, न अन्नहा चेव कायव्वं ॥२१॥
सुणिऊण वयणमेयं, दूओ तो भणइ राहवं एत्तो । महिलापसत्तचित्तो, अप्पहियं नेव लक्खेसि ॥२२॥
गरुडाहिवेण जइ वि हु, पवेसियं जाणजुवलयं तुज्झ । जइ वा छिद्देण रणे, मह पुत्तसहोयरा बद्धा ॥२३॥
तह वि य किं नाम तुमं, गव्वं अइदारुणं समुव्वहसि । जेणं करेसि जुज्झं ?, न य सीया नेय जीयं ते ॥२४॥
सुणिऊण वयणमेयं, अहिययरं जणयनन्दणो रुट्ठो । भडभिउडिकयाडोवो, जंपइ महएण सद्देणं ॥२५॥

युद्धेन किल न कार्यं संप्रत्यपायेन जनविनाशेन । बहवो गताः क्षयान्तं पुरुषा युद्धाभिमानेन ॥१२॥
जल्पति लङ्काधिपतिः कुरु प्रयत्तेन सह मया संधिम् । न च गृह्णाति पञ्चमुखो विषमगुहामध्यस्थः ॥१३॥
बद्धो येन रणमुखे इन्द्रः परिनिर्जिता भटा बहवः । स रावणो महात्मा राघव ! किं तेऽश्रुतपूर्वः ॥१४॥
पाताले गगनतले जले स्थले यस्य व्रजतः । न स्खल्यते गतिप्रसरो राघव ! देवासुरैरपि ॥१५॥
लवणोदधि पर्यन्तां वसुधां विद्याधरैश्च समानम् । लङ्कापूर्या भागौ द्वौ त्वां दामि तुष्टोऽहम् ॥१६॥
प्रैषय मम पुत्रान् मुञ्चैकोदरं निजबन्धुम् । अनुमन्यस्व जनकसुतां यदीच्छस्यात्मनः क्षेमम् ॥१७॥
तदा भणति पद्मनाभो न च मे राज्येन कारणं किंचिद् । यदन्यप्रणयिनी समं भोगं नेच्छामि महान्तमपि ॥१८॥
प्रेषयामि तव पुत्रान्सहोदरमेव रावण ! निश्चितम् । भविष्यामि सुपरितुष्टो यदि मे सीतां समर्पयेः ॥१९॥
अनया सममरण्ये भ्रमिष्यामि सौमित्रिपरिमितोऽहम् । भुङ्ग्धि त्वं दशानन ! सकल समस्तामिमां वसुधाम् ॥२०॥
एवमेव दूत ! त्वं तं भण त्रिकुटस्वामिनं गत्वा । एतत्तवहितकरं नान्यथैव कर्त्तव्यम् ॥२१॥
श्रुत्वा वचनमेतदूतद्स्तदा भणति राघवमितः । महिलाप्रसक्तचित्त आत्महितं नैव लक्ष्यसि ॥२२॥
गरुडाधिपेन यद्यपि खलु प्रवेशितं यानयुगलं तव । यदि वा छिद्रेण रणे मम पुत्रसहोदरा बद्धाः ॥२३॥
तथापि च किं नाम त्वं गर्वमतिदारुणं समुद्धहसि । येन करोषि युद्धं ? न च सीता नैव जीवितं ते ॥२४॥
श्रुत्वा वचनमिदमधिकतरं जनकनन्दनो रुष्टः । भटभृकुटिकृताटोपो जल्पति महता शब्देन ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रे पावदूयकोल्हुय !, दुव्वयणावास ! निब्भओ होउं । जेणेरिसाणि जंपसि, लोगविरुद्धाणि वयणाणि ॥२६॥
सीयाए कहा का वि हु, किं वा अहिखिवसि सामियं अम्हं ? । को रावणो त्ति नामं, दुट्ठो य पसू अचारित्तो? ॥२७॥
भणिऊण वयणमेयं, जाव य खग्गं लएइ जणयसुओ । लच्छीहरेण ताव य, रुद्धो नयचक्खुणा सहसा ॥२८॥
पडिसद्दएण को वि हु, भामण्डल ! हवइ दारुणो कोवो । एएण मारिएणं, दूएण जसो न निव्वडइ ॥२९॥
न य बम्भणं न समणं, न य दूयं नेय बालयं वुड्ढं । न य घायन्ति मणुस्सा, हवन्ति जे उत्तमा लोए ॥३०॥
लच्छीहरेण रुद्धे, एत्तो भामण्डले भणइ दूओ । राहव ! वेयारिज्जसि, इमेहि भिच्चेहि मूढेहिं ॥३१॥
नाऊण य अप्पहियं, अहवा हियएण मुणिय दोस-गुणं । परिचयसु जणयतणयं, भुञ्जसु पुहविं चिरं कालं ॥३२॥
पुप्फविमाणारूढो, सहिओ कन्नाण तिहि सहस्सेहिं । राहव ! लीलायन्तो, इन्दो इव भमसु तेलोक्कं ॥३३॥
एवं समुल्लवन्तो, भडेहि निब्भच्छिओ गओ दूओ । साहइ रक्खसवइणो, जं भणियं रामदेवेणं ॥३४॥
बहुगाम-नयर-पट्टणसमाउला वसुमई महं सामी । देइ तुह गय-तुरङ्गे, पुप्फविमाणं च मणगमणं ॥३५॥
वरकन्नाण सहस्सा, तिण्णि उ सीहासणं दिणयराभं । ससिनिम्मलं च छत्तं, जइ से अणुमन्नसे सीया ॥३६॥
वयणाणि एवमाई, पुणरुत्तं देव ! सो मए भणिओ । पउमो एगग्गमणो, सीयागाहं न छड्डेइ ॥३७॥
भणइ पउमो महाजस !, जह तुज्झ इमाणि जंपमाणस्स । जीहा कह न य पडिया, पसिढिलवासिप्फलं चेव ? ॥३८॥
सुरवरभोगेसु वि मे, सीयाए विणा न निव्वुई मज्झं । भुञ्जसु तुमं दसाणण !, सयलसमत्थं इमं वसुहं ॥३९॥

रे प्रावदूकशृगाल ! दुर्वचनावास ! निर्भयो भूत्वा । येनेदृशानि जल्पति लोकविरुद्धानि वचनानि ॥२६॥
सीतायाः कथा काऽपि खलु किं वाधिक्षिपसि स्वामिनमस्माकम् । को रावण इति नाम दुष्टश्च पशुरचारित्रः ? ॥२७॥
भणित्वा वचनमेतद्यावच्च खड्गं लाति जनकसुतः । लक्ष्मीधरेण तावच्च रुद्धो नयचक्षुषा सहसा ॥२८॥
प्रतिशब्देन कोऽपि खलु भामण्डल ! भवति दारुणः कोपः । एतेन मारितेन दुतेन यशो न निवर्तते ॥२९॥
न च ब्राह्मणं न श्रमणं न च दूतं नैव बालकं वृद्धम् । न च घातयन्ति मनुष्या भवन्ति य उत्तमा लोके ॥३०॥
लक्ष्मीधरेण रुद्ध इतो भामण्डले भणति दूतः । राघव ! वितार्यष एभि भृत्यै मूढैः ॥३१॥
ज्ञत्वा चात्महितमथवा हृदयेन मुणितगुणदोषम् । परित्यज जनकतनयां भुङ्क्ष्व पृथिवीं चिरं कालम् ॥३२॥
पुष्पविमानारुढः सहितः कन्यानां त्रिभिः सहस्रैः । राघव ! लीलायन्निन्द्र इव भ्रम त्रैलोक्यम् ॥३३॥
एवं समुल्लपन्भटैर्निभर्त्सितो गतो दूतः । कथयति राक्षसपते र्यद्भणितं रामदेवेन ॥३४॥
बहु ग्राम नगर पत्तनसमाकूलां वसुमतिं र्मम स्वामी । ददाति तुभ्यं गज-तुरङ्गान्पुष्पविमानं च मनोगमनम् ॥३५॥
वरकन्यानां सहस्राणि त्रिणि तु सिंहासनं दिनकराभम् । शशिनिर्मलं च छत्रं यदि तस्यानुमन्यसे सीताम् ॥३६॥
वचनान्येवमादिनि पुनरुक्तं देव ! स मया भणितः । पद्म एकाग्रमनाः सीताग्राहं न मुञ्चति ॥३७॥
भणति पद्मो महायशः ! यदि तवेमानि जल्पतः । जीह्वा कथं न च पतिता प्रतिशिथीलवासीफलमिव ? ॥३८॥
सुरवरभोगैरपि मे सीताया विना न निवृत्ति र्मम । भुङ्ग्धि त्वं दशानन ! सकलसमस्तामिमां वसुधाम् ॥३९॥

मण-नयणहारिणीओ, भयसु तुमं चेव सव्वजुवईओ । पत्त-फलाहारो हं, सीयाए समं भमीहामि ॥४०॥

वाणरवई वि एत्तो, हसिऊणं भणइ जह तुमं सामी । किं सो गहेण गहिओ, वाऊण व साऽऽसितो होज्जा ? ॥४१॥

जेणेरिसाणि पलवइ, विवरीयत्थाणि चेव वयणाइं । किं तत्थ नत्थि वेज्जा, जे तुह सामिं तिगिच्छन्ति ? ॥४२॥

संगाममण्डले वि हु, आवासं सरवरेसु काऊणं । हरिही लक्खणवेज्जो, कामग्गहवेयणं तस्स ॥४३॥

सुणिऊण वयणमेयं, तो मे रुट्ठेण वाणराहिवई । भणिओ अहिक्खिवन्तो, तुज्झ वि मरणं समासन्नं ॥४४॥

भणिओ मे दासरही, कुवुरिसवेयारिओ तुमं संधी । न कुणसि कुणसि विरोहं, कज्जाकज्जं अयाणन्तो ॥४५॥

पायालवीइपउरं, मयगलगाहाउलं रहावत्तं । राहव ! भुयासु तरिउं, किं इच्छसि रावणसमुद्दं ? ॥४६॥

चण्डाणिलेण वि जहा, न चलिज्जइ पउम ! दिणयरो गयणे ।
तह य तुमे दहवयणो, न य जिप्पइ समरमज्झम्मि ॥४७॥

सोऊण मज्झ वयणं, रुट्ठो भामण्डलो सहामज्झे । खग्गं समुक्खिवन्तो, निवारिओ लक्खणेणं तु ॥४८॥

वाणरभडेसु वि अहं, अहियं निब्भच्छिओ भउव्विग्गो । पक्खी व समुप्पइउं, तुज्झ सयासं समल्लीणो ॥४९॥

पवयभडसमक्खं तिव्वसीयाणुबन्धं, रहुवइभणियं जं तं मए तुज्झ सिट्ठं ।
कुणसु निययकज्जं साणुरूवं तुमं तं, विमलजसविसालं भुञ्ज रज्जं समत्थं ॥५०॥

॥ इय पउमचरिए रावणदूयाभिगमणं नाम पञ्चसट्ठं पव्वं समत्तं ॥

मनोनयनहारिण्यो भज त्वमेव सर्वयुवतयः । पत्रफलाहारोऽहं सीतायाः समं भ्रमिष्यामि ॥४०॥

वानरपतिरपीतो हसित्वा भणति यथा त्वं स्वामी । किं संग्रहेण गृहीतो वायुना वा साश्वासितो भवेत् ? ॥४१॥

येनेदृशानि प्रलपति विपरितार्थान्येव वचनानि । किं तत्र न सन्ति वैद्या ये तव स्वामिनं चिकित्सन्ति ? ॥४२॥

संग्राममण्डलेऽपि खल्वावासं शरवरैः कृत्वा । हरिष्यति लक्ष्मणवैद्यः कामग्रहवेदनां तस्य ॥४३॥

श्रुत्वा वचनमेतत्तदा मया रुष्टेन वानराधिपतिः । भणितोऽधिक्षिपंस्तवापि मरणं समासन्नम् ॥४४॥

भणितो मया दाशरथी कुपुरुषवैतारितस्त्वं संधिम् । न करोषि करोषि विरोधं कार्याकार्यमजानन् ॥४५॥

पातालवीचीप्रचूरं मदगलग्राहाकूलं रथावर्त्तम् । राघव ! भुजाभ्यां तरितुं किमिच्छसि रावणसमुद्रम् ? ॥४६॥

चण्डानिलेनापि यथा न चाल्यते पद्म ! दिनकरो गगने । तथा च त्वया दशवदनो न च जीयते समरमध्ये ॥४७॥

श्रुत्वा मम वचनं रुष्टो भामण्डलः सभामध्ये । खड्गं समुत्क्षिपन्निवारितो लक्ष्मणेन तु ॥४८॥

वानरभटैरप्यहमधिकं निर्भर्त्सितो भयोद्विग्नः । पक्षीव समुत्पत्य तव सकाशं समालीनः ॥४९॥

प्लवंगभटसमक्षं तीव्रसीतानुबन्धं रघुपतिभणितं यत्तन्मया तव शिष्टम् ।
कुरु निजकार्यं सानुरुपं त्वं तद्विमलयशोविशालं भुङ्ग्धि राज्यं समस्तम् ॥५०॥

॥ इति पद्मचरिते रावणदूताभिगमनं नाम पञ्चषष्टितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

६६. फग्गुणट्ठाहियामह-लोगनियमकरणपव्वं

सोऊण दूयवयणं, दसाणणो नियमन्तिसमसहिओ। मन्तं कुणइ जयत्थे, गाढं सुयसोगसंतत्तो ॥१॥
जइ वि हु जिणामि सत्तुं, संगामे बहुनरिन्दसंघट्टे। तह वि य मज्झ सुयाणं, दीसइ नियमेण य विणासो ॥२॥
अहवा निसासु गन्तुं, सुत्ताणं वेरियाण उक्खन्दं। दाऊण कुमारवरे, आणेमि अवेइओ सहसा ॥३॥
एव परिचिन्तयन्तस्स तस्स सहसा समागया बुद्धी। साहेमि महाविज्जं, बहुरूवं नाम नामेणं ॥४॥
न य सा सुरेहि जिप्पइ, होहिज्जइ अइबला महाविज्जा। परिचिन्तिऊण एवं, सद्दाविय किंकरा भणइ ॥५॥
सन्तीहरस्स सोहं, सिग्घं चिय कुणह तोरणादीसु। विरएइ महापूयं, जिणवरभवणेसु सव्वेसु ॥६॥
मन्दोयरीए एत्तो, सो चेव भरो समप्पिओ सव्वो। कोइलमुहलग्गीओ, तइया पुण फग्गुणो मासो ॥७॥
मुणिसुव्वयस्स तित्थे, जिणभवणालंकियं इमं भरहं। गामउड-सेट्ठि-गहवइ-भवियजणाणन्दियं मुइयं ॥८॥
सो नत्थि एत्थ गामो, नेवपुरं संगमं गिरिवरो वा। तिय चच्चरं चउक्कं, जत्थ न भवणं जिणिन्दाणं ॥९॥
ससिकुन्दसन्निभाइं, नाणासंगीयतूरसद्दाइं। नाणाधयचिन्धाइं, नाणाकुसुमच्चियतलाइं ॥१०॥
साहुजणसंकुलाइं, तेसंझं भवियवन्दियरवाइं। कञ्चण-रयणमईणं, जिणपडिमाणं सुपुण्णाइं ॥११॥

---

६६. फाल्गुनाष्टाह्निकामहो-लोकनियमकरणपर्वम्

श्रुत्वा दूतवचनं दशाननो निजमन्त्रिसमसहितः। मन्त्रं करोति जयार्थे गाढसुतशोकसंतप्तः ॥१॥
यद्यपि हु जयामि शत्रुं संग्रामे बहुनरेन्द्रसंघट्टे। तथापि च मम सुतानां दृश्यते नियमेन च विनाशः ॥२॥
अथवा निशायां गत्वा सुतानां वैरीणामवस्कन्दम्। दत्वा कुमारवरानानयाम्यवेदितः सहसा ॥३॥
एवं परिचिन्तयतस्तस्य सहसा समागता बुद्धिः। साधयामि महाविद्यां बहुरुपां नाम नाम्ना ॥४॥
न च सा सुरैर्जीयते भविष्यत्यतिबला महाविद्या। परिचिन्त्यैवं शब्दायित्वा किंकरान्भणति ॥५॥
शान्तिगृहस्य शोभां शीघ्रमेव कुरुत तोरणादिभिः। विरचयत महापूजां जिनवरभवनेषु सर्वेषु ॥६॥
मन्दोदर्या इतः स एव भरः समर्पितः सर्वः। कोकिलमुखरोद्गीतस्तदा पुनः फल्गुनो मासः ॥७॥
मुनिसुव्रतस्य तीर्थे जिनभवनालङ्कृतमिदं भरतम्। ग्रामकूटश्रेष्ठि-गृहपति-भविक-जनानन्दितं मुदितम् ॥८॥
स नास्त्यत्र ग्रामो नैव पुरं संगमं गिरिवरो वा। त्रिकश्चत्वरश्चतुष्कं यत्र न भवनं जिनेन्द्राणाम् ॥९॥
शशिकुन्दसन्निभानि नानासंगीततूर्यशब्दानि। नानाध्वजचिह्नानि नानाकुसुमार्चिततलानि ॥१०॥
साधुजनसंकुलानि त्रिसंध्यभविकबन्दिकरवाणि। कञ्चनरत्नमयिभि र्जिनप्रतिमाभिः सुपूर्णानि ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धयवडय-छत्त-चामर-लम्बूसा-ऽऽदरिसविरइयघराइं । मणुएहि जिणिन्दाणं, विभूसियाइं समत्थाइं ॥१२॥

फाल्गुनमासे अष्टाह्निकामहोत्सवः—

लङ्कापुरी वि एवं, जिणवरभवणेसु मणभिरामेसु । उवसोहिएसु छज्जइ, महिन्दनयरि व्व पच्चक्खा ॥१३॥

एवं फग्गुणमासे, [७]वट्टन्ते धवलअट्ठमीमाई । जाव च्चिय पञ्चयसी, अट्ठाहिमहूसवो लग्गो ॥१४॥

एवं उभयबलेसु वि, नियमग्गहणुज्जओ जणो जाओ । दियहाणि अट्ठ सेणिय !, अन्नो वि हु संजमं कुणइ ॥१५॥

देवा वि देवलोए, चेइयपूयासमुज्जयमईया । सयलपरिवारसहिया, हवन्ति एएसु दियहेसु ॥१६॥

नन्दीसरवरदीवं, देवा गन्तूण अट्ठ दियहाइं । जिणचेइयाण पूयं, कुणन्ति दिव्वेहि कुसुमेहिं ॥१७॥

देवा कुणन्ति ण्हवणं, कञ्चणकलसेसु खीरवारीणं । पत्तपुडएसु वि इहं, जिणाभिसेओ विहेयव्वो ॥१८॥

पूयं कुणन्ति देवा, कञ्चणकुसुमेसु जिणवरिन्दाणं । इह पुण चिल्लदलेसुं, नरेण पूया विरइयव्वा ॥१९॥

लङ्कापुरीए लोगो, अहियं उच्छाहजणियदढभावो । भूसेइ चेइयहरे, धय-छत्त-पडायमाईसु ॥२०॥

गोसीसचन्दणेणं, सिग्घं सम्मज्जिओवलित्ताइं । कणयाइरएण पुणो, रङ्गावलिचित्तियतलाइं ॥२१॥

वज्जिन्दनील-मरगय-मालालम्बन्तदारसोहाइं । सुरहिसुगन्धेसु पुणो, कुसुमेसु कयाइं पूयाइं ॥२२॥

दारेसु पुण्णकलसा, ठविया दहि-खीर-सप्पिसंपुण्णा । वरपउमपिहियवयणा, जिणवरपूयाभिसेयत्थे ॥२३॥

झल्लरि-हुडुक्क-तिलिमाउलाइं पडुपडह-भेरिपउराइं । वज्जन्ति जिणहरेहिं, जलहरघोसाइं तूराइं ॥२४॥

ध्वजपट छत्रालम्बुसकादर्शविरचितगृहाणि । मनुष्यै र्जिनेन्द्राणां विभूषितानि समस्तानि ॥१२॥

फाल्गुनमासे अष्टाह्निका महोत्सवः -

लङ्कापूर्यप्येवं जिनवरभवनै र्मनोभिरामैः । उपशोभितैराजते महेन्द्रनगरीव प्रत्यक्षा ॥१३॥

एवं फाल्गुनमासे वर्तमाने धवलाष्टम्यादौ । यावदेव पञ्चदश्यष्टाह्निका महोत्सवो लग्नः ॥१४॥

एवमुभयबलेष्वपि नियमग्रहणोद्यतो जनो जातः । दिवसान्यष्टौ श्रेणिक ! अन्योऽपि हु संयमं करोति ॥१५॥

देवा अपि देवलोकं चैत्यपूजासमुद्यतमतिकाः । सकलपरिवारसहिता भवन्त्येतेषु दिवसेषु ॥१६॥

नन्दीश्वरद्वीपं देवा गत्वाऽष्टौ दिवसानि । जिनचैत्यानां पूजां कुर्वन्ति दिव्यैः कुसुमैः ॥१७॥

देवाः कुर्वन्ति स्नपनं कञ्चनकलशैः क्षीरवारीणाम् । पत्रपूटैरपीह जिनाभिषेको विधातव्यः ॥१८॥

पूजां कुर्वन्ति देवाः कञ्चनकुसुमै र्जिनवरेन्द्राणाम् । इह पुनश्चिल्लदलै र्नरेण पूजा विरचितव्या ॥१९॥

लङ्कापूर्या लोकोऽधिकमुत्साहजनितदृढभावः । भूषयति चैत्यगृहान् ध्वज-छत्र-पताकादिभिः ॥२०॥

गोशीर्षचन्दनेन शीघ्रं समर्जितोपलिप्तानि । कनकादिरजसा पुना रङ्गावलिचित्रिततलानि ॥२१॥

वज्रेन्द्रनीलमरकतमालाऽऽलम्बद्द्वारशोभानि । सुरभिसुगन्धैः पुनः कुसुमैः कृतानि पूजानि ॥२२॥

द्वारेषु पुण्यकलशाः स्थापिता दधि-क्षीरसर्पिःपूर्णाः । वरपद्मपिहितवदना जिनवरपूजाभिषेकार्थे ॥२३॥

झल्लरि-हुडुक्क-तिलिमाकूलानि पटुपटहभेरिप्रचुराणि । वाद्यन्ते जिनगृहेषु जलधरघोषाणि तूर्याणि ॥२४॥

---

७. बज्झे रामवलअट्ठमी-प्र० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नयरीए भूसणं पिव, भवणालिसहस्समज्झयारत्थं । छज्जइ दसाणणहरं, तुङ्गं कइलाससिहरं व ॥२५॥
तस्स वि य समल्लीणं, तवणिज्जुज्जलविचित्तभित्तीयं । जिणसन्तिसामिभवणं, थम्भसहस्साउलं रम्मं ॥२६॥
उवसोहियं समन्ता, नाणाविहरयणकुसुमकयपूयं । विज्जाए साहणट्ठे, पविसइ तं रावणो धीरो ॥२७॥
पडुपडहतूरबहुविह-रवेण संखोहियं व तेल्लोक्कं । ण्हवणाहिसेयवण्णय-रएण गयणं पि पिञ्जरियं ॥२८॥
बलिकम्म-गन्ध-धूवाइएहि पूया करेइ कुसुमेहिं । लङ्काहिवो महप्पा, विसुद्धगन्धेहि भावेणं ॥२९॥
सेयम्बरपरिहाणो, नियमत्थो कुण्डलुज्जलकवोलो । तिविहेण पणमिऊणं, उवविट्ठो कोट्टिमतलम्मि ॥३०॥
सन्तिजिणस्स अहिमुहो, धीरो होऊण अद्धपलियङ्कं । गहियक्खमालहत्थो, आढत्तो सुमरिउं विज्जं ॥३१॥
पुव्वं समप्पियभरा, एत्तो मन्दोयरी भणइ मन्तिं । जमदण्डनद्दधेयं, देहि तुमं घोसणं नयरे ॥३२॥
अव्वो ! जहासमग्गो, लोगो तव-नियम-सीलसंजुत्तो । जिणवरपूयानिरओ, दयावरो होउ जीवाणं ॥३३॥
जो पुण कोहवसगओ, करेइ पावं इमेसु दियहेसु । सो होइ घाइयव्वो, जह वि पिया किं पुणं इयरो ? ॥३४॥
जमदण्डेण पुरजणो, भणिओ मन्दोयरीए वयणेणं । मा कुणउ कोइ पावं, एत्थ नरो दुव्विणीओ वि ॥३५॥
सोऊण मन्तिवयणं वि लोगो, जाओ जिणिन्दवरसासणभत्तिजुत्तो ।
सिद्धालयाण विमलाण ससिप्पहाणं, पूयानिओयकरणेसु सया पसत्तो ॥३६॥

॥ इय पउमचरिए फग्गुणट्ठाहियामहलोगनियमकरणं नाम छासट्ठं पव्वं समत्तं ॥

नगर्या भूषणमिव भवनालिसहस्रमध्यस्थम् । राजते दशाननगृहंतुङ्गं कैलाशशिखरमिव ॥२५॥
तस्यापि च समालीनं तपनीयोज्वलविचित्रभित्तिकम् । जिनशान्तिस्वामिभवनं स्तम्भसहस्राकूलं रम्यम् ॥२६॥
उपशोभितं समन्तान्नानाविधरत्नकुसुमकृतपूजम् । विद्यायाः साधनार्थं प्रविशति तं रावणो धीरः ॥२७॥
पटुपटहतूर्यबहुविधरवेण संक्षुब्धमिव त्रैलोक्यम् । स्नपनाभिषेकवर्णकरजसा गगनमपि पिञ्जरितम् ॥२८॥
बलिकर्मगन्धधूपादिभिः पूजां करोति कुसुमैः । लङ्काधिपो महात्मा विशुद्धगन्धै र्भावेन ॥२९॥
श्वेताम्बरपरिधानो नियमस्थः कुण्डलोज्वलकपोलः । त्रिविधेन प्रणम्योपविष्टः कुट्टिमतले ॥३०॥
शान्तिजिनस्याभिमुखो धीरो भूत्वाऽर्धपर्यङ्कम् । गृहीताक्षमालहस्त आरब्धः स्मर्तुं विद्याम् ॥३१॥
पूर्वं समर्पितभारेतो मन्दोदरी भणति मन्त्रिम् । यमदण्डनामधेयं देहि त्वं घोषणां नगरे ॥३२॥
अहो ! यथा समग्रो लोकस्तपोनियमशीलसंयुक्तः । जिनवरपूजानिरतो दयापरो भवतु जीवानाम् ॥३३॥
यः पुनः क्रोधवशगतः करोति पापमेतेषु दिवसेषु । स भवति घातितव्यो यद्यपि पिता किं पुनरितरः ॥३४॥
यमदण्डेन पुर्जनो भणितो मन्दोदर्या र्वचनेन । मा करोतु कोऽपि पापमत्र नरो दुर्विनीतोऽपि ॥३५॥
श्रुत्वा मन्त्रिवचनमपि लोको जातो जिनेन्द्रवरशासनभक्तियुक्तः ।
सिद्धालयानां विमलानां शशिप्रभाणां पूजानियोगकरणेषु सदा प्रसक्तः ॥३६॥

॥ इति पद्मचरिते फाल्गुनाष्टाह्निकामहोलोकनियमकरणं नाम षट्षष्टितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६७. सम्मद्दिट्ठिदेवकित्तणपव्वं

तं चेव उ वित्तन्तं, चारियपुरिसाण मूलओ सुणिउं । जंपन्ति वाणरभडा, एक्केक्कं रिउजयामरिसा ॥१॥
जह किल सन्तिजिणधरं, पविसेउं रावणो महाविज्जा । नामेण य बहुरूवा, देवाण वि जम्भणी जा सा ॥२॥
जाव न उवेइ सिद्धिं, सा विज्जा ताव तत्थ गन्तूणं । खोभेह रक्खसवइं, नियमत्थं मा चिरावेह ॥३॥
जइ सा उवेइ सिद्धिं, राहव ! बहुरूविणी महाविज्जा । देवा वि जिणइ सव्वे, किं पुण अम्हेहि खुद्देहिं ? ॥४॥
भणिओ बिभीसणेणं, रामो इह पत्थवम्मि दहवयणो । सन्तीहरं पविट्ठो, नियमत्थो घेप्पऊ सहसा ॥५॥
पउमेण वि पडिभणिओ, भीयं न हणामि रणमुहे अहयं । किं पुण नियमारूढं, पुरिसं जिणचेइयहरत्थं ? ॥६॥
अह ते वाणरसुहडो, मन्तं काऊण अट्ठ दियहाइं । पेसन्ति कुमारवरे, लङ्कानयरिं बलसमग्गे ॥७॥
चलिया कुमारसीहा, लङ्काहिवइस्स खोभणट्ठाए । सन्नद्धबद्धचिन्धा, रह-गय-तुरएसु आरूढा ॥८॥
मयरद्धओ कुमारो, आडोवो तह य गरुयचन्दाभो । रइवद्धणो य सूरो, महारहो दढरहो चेव ॥९॥
वायायणो य जोई, महाबलो नन्दणो य नीलो य । पीइंकरो नलो वि य, सव्वपिओ सव्वदुट्ठो य ॥१०॥
सायरघोसो खन्दो, चन्दमरीई सुपुण्णचन्दो य । एत्तो समाहिबलो, सीहकडी दासणी चेव ॥११॥

---

६७. सम्यग्दृष्टिदेव कीर्तनपर्वम्

तदेव तु वृत्तान्तं चारपुरुषेभ्यो मूलतश्च्छ्रुत्वा । जल्पन्ति वानरभटा एकैकं रिपुजयामर्षाः ॥१॥
यथा किल शान्तिजिनगृहं प्रविश्य रावणो महाविद्या । नाम्ना च बहुरुपा देवानामपि जृम्भणी या सा ॥२॥
यावन्नोपैति सिद्धिं सा विद्या तावत्तत्र गत्वा । क्षोभयत राक्षसपतिं नियमस्थं मा चिरायत ॥३॥
यदि सोपैति सिद्धिं राघव ! बहुरुपिणी महाविद्या । देवा अपि जीयते सर्वे किं पुनरस्माभिः क्षुद्रैः ॥४॥
भणितो बिभीषणेन राम इह प्रस्तावे दशवदनः । शांतिगृहं प्रविष्टो नियमस्थो गृह्णातु सहसा ॥५॥
पद्मेनापि प्रतिभणितो भीतं न हन्मि रणमुखे अहम् । किं पुन र्नियमारुढं पुरुषं जिनचैत्यगृहस्थम् ? ॥६॥
अथ ते वानरसुभटा मन्त्रं कृत्वाऽष्टौ दिवसानि । प्रेषयन्ति कुमारवराल्लङ्कानगरिं बलसमग्रान् ॥७॥
चलिताः कुमारसिंहा लङ्काधिपस्य क्षोभणार्थे । सन्नद्धबद्धचिह्ना रथ-गज-तुरगेष्वारुढाः ॥८॥
मकरध्वजः कुमार आटोपस्तथा च गुरुकचन्द्राभः । रतिवर्धनश्च शूरो महारथो दृढरथ एव ॥९॥
वातायनश्च ज्योति र्महाबलो नन्दनश्च नीलश्च । प्रीतिंकरो नलोऽपि च सर्वप्रियः सर्वदुष्टश्च ॥१०॥
सागरघोषः स्कन्दश्चन्द्रमरीचिः सुपूर्णचन्द्रश्च । इतः समाधिबहुलः सिंहकटी दाशन्येव ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूणओ य एत्तो, संकडवियडो तहेव जयसेणो । एए अन्ने य बहू, लङ्कानयरिं गया सुहडा ॥१२॥
पेच्छन्ति नवरि लङ्का-पुरीए लोयं भउज्झियं सयलं । अह जंपिउं पवत्ता, अहो ! हु लङ्काहिवो धीरो ॥१३॥
बद्धो य भाणुकण्णो, इन्दइ घणवाहणो य संगामे । वहिया य रक्खसभडा, बहवो वि य अक्खमाईया ॥१४॥
तह वि य रक्खसवइणो, खणं पि न उवेइ कावि पडिसङ्का । काऊण समुल्लावं, एवं ते विम्हयं पत्ता ॥१५॥
अह ते बिभीसणसुओ, सुभूसणो भणइ उज्झिउं सङ्कं । पविसह लङ्कानयरिं, लोलह जुवईउ मोत्तूणं ॥१६॥
ते एव भणियमेत्ता, सकवाडं भञ्जिऊण वरदारं । लङ्कापुरी पविट्ठा, पवयभडा चञ्चला चण्डा ॥१७॥
सोऊण दुन्दुभिरवं, ताण पविट्ठाण जणवओ खुभिओ । किं किं ? ति उल्लवन्तो, भयविहलविसंठुलो जाओ ॥१८॥
संपत्तं पवयबलं, हा ताय ! महा भयं समुप्पन्नं । पविससु घरं तुरन्तो, मा एत्थ तुमं विवाइहिसि ॥१९॥
हा भद्द ! परित्तायह, भाउय ! मा जाह लहु नियत्तेह । अवि धाह किं न पेच्छह, परबलवित्तासियं नयरिं ॥२०॥
नायरजणेण एवं, गाढं हाहारवं करेन्तेणं । खुब्भइ दसाणणहरं, अन्नोन्नं लङ्घयन्तेणं ॥२१॥
काएत्थ गलियरयणा, भउद्दुया तुडियमेहलकलावा । हत्थावलम्बियकरा, अन्ना पुण वच्चइ तुरन्ती ॥२२॥
अन्ना भएण विलया गरुयनियम्बा सणेण तूरन्ती । हंसि व्व पउमसण्डे, कह कह वि पयं परिट्ठवइ ॥२३॥
पीणुन्नयथणजुयला, अइगरुयपरिस्समाउला बाला । अह दारुणे वि य भए, वच्चइ लीलाए रच्छासु ॥२४॥
अन्नाए गलइ हारो, अन्नाए कडयकुण्डलाहरणं । अन्नाए उत्तरिज्जं, विवडियवडियं न विन्नायं ॥२५॥

जम्बूनदश्चेत: संकटविकटस्तथैव जयसेन: । एतेऽन्ये च बहवो लङ्कानगरिं गता: सुभटा: ॥१२॥
पश्यन्ति नवरि लङ्कापूर्यां लोकं भयोज्झितं सकलम् । अथ जल्पितुं प्रवृत्ता अहो ! खलु लङ्काधिपो धीरः ॥१३॥
बद्धश्च भानुकर्ण इन्द्रजित्घनवाहनश्च संग्रामे । हताश्च राक्षसभटा बहवोऽपि चाक्षादिका: ॥१४॥
तथापि च राक्षसपते: क्षणमपि नोपैति काऽपि प्रतिशङ्का । कृत्वा समुल्लापमेवं ते विस्मयं प्राप्ता: ॥१५॥
अथ तान् बिभीषणसुतः सुभूषणो भणति त्यक्त्वा शङ्काम् । प्रविशत लङ्कानगरिं लोलयत युवतीनां मुक्त्वा ॥१६॥
त एवं भणितमात्रा सकपाटं भङ्क्त्वा वरद्वारम् । लङ्कापुरिं प्रविष्य प्लवंगभटाश्चञ्चलाश्चण्डा: ॥१७॥
श्रुत्वा दुन्दुभिरवं तान्प्रविष्टान्जनपद: क्षुभित: । किं किमित्युल्लपन्भयविह्वलविसंस्थूलो जात: ॥१८॥
संप्रातं प्लवंगबलं हा तत ! महाभयं समुत्पन्नम् । प्रविश गृहं त्वरमाणो माऽत्र त्वं विपादिष्यषि ॥१९॥
हा भद्र ! परित्रायस्व भ्रात ! मा गच्छ लघु निवर्तय । अरे ! धावत किं न पश्यत परबलवित्रासितां नगरीम् ॥२०॥
नगरजनेनैवं गाढं हाहारवं कुर्वता । क्षुभ्यति दशाननगृहमन्योन्यं लङ्घयता ॥२१॥
काऽत्र गलितरत्ना भयोपद्रुता त्रुटितमेखलकलापा । हस्तावलम्बितकराऽन्या पुन व्रजति त्वरमाणा ॥२२॥
अन्या भयेन वनिता गुरुकनितम्बा स्वनेन त्वरमाणा । हंसीव पद्मखण्डे कथं कथमपि पदं परिस्थापयति ॥२३॥
पीनोन्नतस्तनयुगलाऽतिगुरुकपरिश्रमाकुला बाला । अथ दारुणेऽपि च भये गच्छति लीलया रथ्यासु ॥२४॥
अन्यस्या गलति हारोऽन्यस्या: कटककुण्डलाभरणम् । अन्यस्या उत्तरियं विपतितपतितं न विज्ञातम् ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं तु नायरजणे, भयविहलविसंठुले मओ राया । सन्नसिज्झिऊण सबलो, रावणभवणं समल्लीणो ॥२६॥

जुज्झं समुव्वहन्तो, तेहि समं रावणस्स महिलाए । मन्दोयरीए रुद्धो, जिणवरसमयं सरन्तीए ॥२७॥

एयन्तरम्मि दट्ठुं, नयरजणं भयसमाउलं देवा । सन्तीहराहिवासी, वच्छल्लं उज्जया काउं ॥२८॥

सन्तीहराउ सहसा, उप्पइया नहयलं महाघोरा । दाढाकरालवयणा, निदाहरविसन्निहा कूरा ॥२९॥

आसा हवन्ति हत्थी, सीहा वग्घा य दारुणा सप्पा । मेहा य अग्गिपवणा, होन्ति पुणो पव्वयसरिच्छा ॥३०॥

अह ते घारोयारे, देवे दट्ठूण वाणराणीयं । भग्गं भउद्दुयमणं, संपेल्लोपेल्लं कुणमाणं ॥३१॥

विद्धत्थं पवयबलं, सन्तीहरवासिएहि देवेहिं । नाऊण सेसचेइय-भवणनिवासी सुरा रुट्ठा ॥३२॥

देवाण य देवाण य, आवडियं दारुणं महाजुज्झं । विच्छूढघायपउरं, अन्नोन्नाहव्वणारावं ॥३३॥

सन्तीहरसुरसेन्नं, दूरं, ओसारियं तु देवेहिं । दट्ठूण वाणरभडा, पुणरवि य ठिया नयरिहुत्ता ॥३४॥

नाऊण पुण्णभद्दो, रुट्ठो तो भणइ माणिभद्दं सो । पेच्छसु किं व विमुक्का, वाणरकेऊ महापावा ? ॥३५॥

सन्तीहरमल्लीणं, नियमत्थं रावणं विगयसङ्गं । हन्तूण समुज्जुत्ता, मिच्छादिट्ठी महाघोरा ॥३६॥

तो भणइ माणिभद्दो, नियमत्थं रावणं जिणायतणे । खोभेऊण न तीरइ, जइ वि सुरिन्दो सयं चेव ॥३७॥

भणिऊण एवमेयं, रुट्ठा जक्खाहिवा तहिं गन्तुं । तह जुज्झिउं पवत्ता, जेण सुरा लज्जिया नट्ठा ॥३८॥

अह ते जक्खाहिवई, पत्थरपहरेसु वाणराणीयं । गन्तूण उवलहन्ते, गयणत्थं राहववं ताहे ॥३९॥

एवं तु नागरजने भयविह्वलविसंस्थूले मयो राजा । सन्नह्य सबलो रावणभवनं समालीनः ॥२६॥

युद्धं समुद्वहंस्तैः समं रावणस्य महिलया । मन्दोदर्या रुद्धो जिनवरसमकं सरन्त्या ॥२७॥

एतदन्तरे दृष्ट्वा नगरजनं भयसमाकूलं देवाः । शान्तिगृहाधिवासिनो वात्सल्यमुद्यताः कर्तुम् ॥२८॥

शान्तिगृहात्सहसोत्पतिता नभस्तलं महाघोराः । दंष्ट्राकरालवदना निदाहरविसंनिभाः कूराः ॥२९॥

अश्वा भवन्ति हस्तिः सिंहा व्याघ्राश्च दारुणाः सर्पाः । मेघाश्चाग्निपवना भवन्ति पुनः पर्वतसदृशाः ॥३०॥

अथ तान्घोराकारान्देवान्दृष्ट्वा वानरानीकम् । भग्नं भयोपद्रुतमनसं संपीडोत्पीडं क्रीयमाणम् ॥३१॥

विध्वस्तं पल्वङ्गबलं शान्तिगृहाधिवासिभि र्देवैः । ज्ञात्वा शेषचैत्यभवननिवासिनः सुरा रुष्टाः ॥३२॥

देवानां च देवानां चापतितं दारुणं महायुद्धम् । विक्षिप्तघातप्रचुरमन्योन्याह्वानारावम् ॥३३॥

शान्तिगृहसुरसैन्यं दूरमपसारितं तु देवैः । दृष्ट्वा वानरभटाः पुरनपि च स्थिता नगर्यभिमुखाः ॥३४॥

ज्ञात्वा पूर्णभद्रो रुष्टस्तदा भणति मणिभद्रं सः । पश्य किं वा विमुक्ता वानरकेतवो महापापाः ? ॥३५॥

शान्तिगृहमालीनं नियमस्थं रावणं विगतसङ्गम् । हन्तुं समुद्युक्ता मिथ्यादृष्टयो महाघोराः ॥३६॥

तदा भणति मणिभद्रो नियमस्थं रावणं जिनायतने । क्षोभयितुं न शक्यर्यते यद्यपि सुरेन्द्रः स्वयमेव ॥३७॥

भणित्वेवमेतद्रुष्टा यक्षाधिपास्तत्र गत्वा । तथा योद्धुं प्रवृत्ता येन सुरा लज्जिता नष्टाः ॥३८॥

अथ ते यक्षाधिपतयः प्रस्तरप्रहारै र्वानरानीकम् । गत्वोपलभन्ते गगनस्थं राघवं तदा ॥३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ पुण्णभद्दो, राम ! तुमं सुणसु एक्क मह वयणं । उत्तमकुलसंभूओ, विक्खाओ दहरहस्स सुओ ॥४०॥
जाणसि धम्माधम्मं, कुसलो नाणोदहिस्स पारगओ । होऊण एरिसगुणो, कह कुणसि इमं अकरणिज्जं ? ॥४१॥
नियमत्थे दहवयणे, धीरे सन्तीहरं समल्लीणे । लङ्कापुरीए लोयं, वित्तासिसि नियभिच्चेहिं ॥४२॥
जो जस्स हरइ दव्वं, निक्खुत्तं हरइ तस्स सो पाणे । नाऊण एवमेयं, राहव ! सुहडा निवारेहि ॥४३॥
तं भणइ लच्छिनिलओ, इमस्स रामस्स गुणनिही सीया । रक्खसनाहेण हिया, तस्स तुमं कुणसु अणुकम्पं ॥४४॥
कञ्चणपत्तेण तओ, अग्घं दाऊणं वाणराहिवई । भणइ य जक्खनरिन्दं, मुञ्चसु एयं महाकोवं ॥४५॥
इहरा वि न साहिज्जइ, दहवयणो गरुयदप्पमाहप्पो । बहुरूविणीए किं पुण, विज्जाए वसं उवगयाए ? ॥४६॥
पेच्छसु ममं महायस !, वच्च तुमं अत्तणो निययठाणं । ववगयकोवारम्भो, पसन्नचित्तो य होऊणं ॥४७॥
तो भणइ पुण्णभद्दो, एव इमं एत्थ नवरि नयरीए । जह न वि करेह पीडं, जुण्णतणादीसु वि अकज्जं ॥४८॥
भणिऊण वयणमेयं, साहम्मियवच्छला तओ जक्खा । परमेट्ठिसंपउत्ता, गया य निययाइं ठाणाइं ॥४९॥

एवं जिणिन्दवरसासणभत्तिमन्ता, उच्छाहनिच्छियमणा इह जे मणुस्सा ।
विज्जाए किं व सुहसाहणसंपयाए, सिद्धालयं पि विमलं खलु जन्ति धीरा ॥५०॥

॥ इय पउमचरिए सम्मद्दिट्ठिदेवकित्तणं नाम सत्तसट्ठं पव्वं समत्तं ॥

अथ भणति पूर्णभद्रो राम ! त्वं श्रुणु एकंमम वचनम् । उत्तमकुलसंभूतो विख्यातो दशरथस्य सुतः ॥४०॥
जानासि धर्माधर्मकुशलो ज्ञानोदधेः पारगतः । भूत्वेतादृशगुणः कथं करोषीदमकरणीयम् ? ॥४१॥
नियमस्थे दशवदने धीरे शान्तिगृहं समालीने । लङ्कापूर्या लोकं वित्रासयसि निजभृत्यैः ॥४२॥
यो यस्य हरति द्रव्यं निश्चितं हरति तस्य स प्राणान् । ज्ञात्वेवमेतद्राघव ! सुभटान्निवारय ॥४३॥
तं भणति लक्ष्मीनिलय एतस्य रामस्य गुणनिधिः सीता । राक्षसनाथेन हृता तस्य त्वं कुर्वनुकम्पाम् ॥४४॥
कञ्चनपात्रेण ततोऽर्घ्यं दत्वा वानराधिपतिः । भणति च यक्षनरेन्द्रं मुञ्चेदं महाकोपम् ॥४५॥
इतरथाऽपि न साध्यते दशवदनो गुरुकदर्पमाहात्म्यः । बहुरुपिण्यायाः किं पुनर्विद्याया वशंमुपागतायाः ? ॥४६॥
पश्य मम महायशः ! गच्छ त्वमात्मनो निजस्थानम् । व्यपगतकोपारम्भः प्रसन्नचित्तश्च भूत्वा ॥४७॥
तदा भणति पूर्णभद्र एवमिदमत्र नवरि नगर्याम् । यदि नापि कुरुत पीडां जीर्णतृणादिष्वप्यकार्यम् ॥४८॥
भणित्वा वचनमेतत्साधर्मिकवत्सलास्ततो यक्षाः । परमेष्ठिसंप्रयुक्ता गताश्च निजकानि स्थानानि ॥४९॥

एवं जिनेन्द्रवरशासनभक्तिमन्त उत्साहनिश्चितमनस इह ये मनुष्याः ।
विद्यया किं वा सुखसाधनसंपदा सिद्धालयमपि विमलं खलु यान्ति धीराः ॥५०॥

॥ इति पद्मचरिते सम्यग्दृष्टिदेवकीर्तनं नाम सप्तषष्ठितमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६८. बहुरूवासाहणपव्वं

नाऊण य उवसमियं, जक्खवइं अङ्गओ गयवरिन्दं । किक्किन्धिदण्डनामं, आरूढो दप्पियामरिसो ॥१॥

लङ्कापुरी पविट्ठा, सुहडा कुमुइन्दणीलमाईया । नाणाउहगहियकरा, नाणाविहवाहणारूढा ॥२॥

कुङ्कुमकयङ्गराया, नाणालंकारभूसियसरीरा । विसमाहयतूररवा, कुमारसीहा बला चण्डा ॥३॥

अह ते वाणरसुहडा, अङ्गयपमुहा बलेण परिपुण्णा । लङ्कापुरिं पविट्ठा, धयछत्तसमुज्जलसिरीया ॥४॥

भेसन्ता नयरजणं, दहमुहभवणङ्गणं समणुपत्ता । दट्ठूण कोट्टिमतलं, जलगाहसमाउलं भीया ॥५॥

अचलन्तनयणरूवाइं तत्थ नाऊण कोट्टिमकयाइं । रावणभवणदुवारं, संपत्ता गिरिगुहायारं ॥६॥

तो इन्दनीलकोट्टिम-तलम्मि सीहा करालमुहजन्ता । दट्ठूण वाणरा ते, जाया य पलायणुज्जुत्ता ॥७॥

परिमुणियकारणेणं, नियत्तिया अङ्गएण दुक्खेहिं । पुणरवि पविसन्ति घरं, सव्वत्तो दिन्नदिट्ठीया ॥८॥

फलिहमयविमलकुड्डे, आगासं चेव मन्नमाणा ते । कढिणसिलावडियसिरा, पडिया बहवे पवयजोहा ॥९॥

परिफुडियजन्नु-कोप्पर, अइगाढं वेयणापरिग्गहिया । पविसन्ति जाणियपहा, अन्नं कच्छन्तरं भीया ॥१०॥

तत्थ वि य कज्जलनिभा, वसुंधरा इन्दनीलनिम्माया । संसइयदिन्नपसरा, नाउं कढिणं न देन्ति पयं ॥११॥

---

६८. बहुरुप साधनपर्वम्

ज्ञात्वा चोपशमितं यक्षपतिमङ्गदो गजवरेन्द्रम् । किष्किन्धिदण्डनाममारुढो दर्पितामर्षः ॥१॥

लङ्कापुरिं प्रवृष्टाः सुभटाः कुमुदेन्द्रनीलादयः । नानायुधगृहीतकरा नानाविधवाहनारुढाः ॥२॥

कुङ्कुमकृताङ्गरागा नानालङ्कारभूषितशरीराः । विषमाहततूर्यरवाः कुमारसिंहा बलाश्चण्डाः ॥३॥

अथ ते वानरसुभटा अङ्गदप्रमुखा बलेन परिपूर्णाः । लङ्कापुरिं प्रविष्टा ध्वजछत्रसमुज्वलितश्रियः ॥४॥

भेषयन्तो नगरजनं दशमुखभवनाङ्गणं समनुप्राप्ताः । दृष्ट्वा कुट्टिमतलं जलग्राहसमाकुलं भीताः ॥५॥

अचलन्नयनरूपानि तत्र ज्ञात्वा कोट्टिमकृतानि । रावणभवनद्वारं संप्राप्ता गिरिगुहाकारम् ॥६॥

तदेन्द्रनीलकुट्टिमतले सिंहान् करालमुखयन्त्रान् । दृष्ट्वा वानरास्ते जाताश्च पलायनोद्युक्ताः ॥७॥

परिमुणितकारणेन निवर्त्तिता अङ्गदेन दुःखैः । पुनरपि प्रविशन्ति गृहं सर्वतो दत्तदृष्टिकाः ॥८॥

स्फटिकमयविमलकुडयमाकाशमिव मन्यमानास्ते । कठिनशिलाऽऽपतितशिरसः पतिता बहवः पवङ्गयोद्धाः ॥९॥

परिस्फुटितजानुकुर्परा अतिगाढ वेदनापरिगृहीताः । प्रविशन्ति जानितपथा अन्यं कक्षान्तरं भीताः ॥१०॥

तत्रापि च कज्जलनिभा वसुंधरेन्द्रनीलनिर्माता । शंसयितदत्तप्रसरा ज्ञात्वा कठिनं न ददति पदम् ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिट्ठा य तत्थ एक्का, तरुणी फलिहामयम्मि सोवाणे । पुच्छन्ति दिसामूढा, भद्दे ! कत्तो जिणहरं तं ? ॥१२॥
जाहे सा पडिवयणं, न देइ ताणं विमग्गमाणाणं । ताहे करेहि फुसियं, लेप्पयमहिला विजाणन्ति ॥१३॥
अह ते विलक्खवयणा, अन्नं कच्छन्तरं समल्लीणा । तत्थ महानीलमए, कुड्डे सहस त्ति आवडिया ॥१४॥
ते चक्खुवज्जिया इव, सुहडा एक्केक्कमं अपेच्छन्ता । परिमुसिऊणाऽऽढत्ता, करेसु अइदीहकुड्डाइं ॥१५॥
परिमुसमाणेहि नरो, सज्जीवो जाणिअण य वायाए । केसेसु खरं गहिओ, भणिओ दावेहि सन्तिहरं ॥१६॥
एवं ते पवयभडा, पुरओ पहदेसयं नरं काउं । सव्वे वि समणुपत्ता, सन्तिजिणिन्दस्स वरभवणं ॥१७॥
दिट्ठं सरयब्भनिभं, नाणाविहिचित्तयम्मकयसोहं । ऊसियधयावडायं, सग्गविमाणं व ओइण्णं ॥१८॥
वज्जिन्दनील-मरगय-मालाओऊलभूसियदुवारं । नाणारयणसमुज्जल-सुयन्धवरकुसुमकयपूयं ॥१९॥
विच्छड्डिय बलियम्मं, कालागरुबहलधूवगन्धड्ढं । तक्खणमेत्तुप्पाडिय-वरकमलकयच्चणविहाणं ॥२०॥
एयारिसं च दट्ठुं, जिणभवणं विम्हिया तओ जोहा । पणमन्ति सन्तिनाहं, तिक्खुत्तपयाहिणावत्तं ॥२१॥
एवं सो नियबलं, बाहिरकच्छन्तरे ठवेऊणं । पविसरइ सन्तिभवणं, दढहियओ अङ्गयकुमारो ॥२२॥
भावेणवन्दणं सो, काऊणं तस्स पेच्छए पुरओ । कोट्टिमतले निविट्ठं, जोगत्थं रक्खसाहिवइं ॥२३॥
अह भणइ अङ्गओ तं, रावण ! किं ते समुट्ठिओ डम्भो । तिजगुत्तमस्स पुरओ, हरिऊणं जणयरायसुयं ? ॥२४॥
धिद्धि ! त्ति रक्खसाहम !, दुच्चरियावास ! तुज्झ एत्ताहे । तं ते करेमि जं ते, न य कुणइ जमो सुरुट्ठो वि ॥२५॥

दृष्टा च तत्रैका तरुणीस्फटिकमये सोपाने । पृच्छन्ति दिङ्मुढा भद्रे ! कुतो जिनगृहं तत् ? ॥१२॥
यदा सा प्रतिवचनं न ददाति तेषां विमार्ग्यमाणानाम् । तदा करैः स्पृष्टं लेप्यमहिला विजानन्ति ॥१३॥
अथ ते विलक्षवदना अन्यं कक्षान्तरं समालीनाः । तत्र महानीलमयां कुड्यां सहसेत्यापतिताः ॥१४॥
ते चक्षुर्वर्जिता इव सुभटा एकेमेकमपश्यन्तः । परिस्पर्शितुमारब्धा करैरतिदीर्घकुड्यानि ॥१५॥
परिस्पृशद्भि र्नः सजीवो ज्ञात्वाच वाच । केशैः खरं गृहीतो भणितो दर्शय शान्तिगृहम् ॥१६॥
एवं ते प्लवङ्गभटाः पुरतः पथदेशकं नरं कृत्वा । सर्वेऽपि समनुप्राप्ताः शान्तिजिनेन्द्रस्य वरभवनम् ॥१७॥
द्रष्टं शरदाभ्रनिभं नानाविधचित्रकर्मकृतशोभम् । उच्छ्रितध्वजपताकं स्वर्गविमानमिवावतीर्णम् ॥१८॥
वज्रेन्द्रनील-मरकतमालावचूलभूषितद्वारम् । नानारत्नसमुज्वलसुगन्धवरकुसुमकृतपूजम् ॥१९॥
विच्छिर्दित बलिकर्म कलागुरुबहलधूपगन्धाढ्यम् । तत्क्षणमात्रोत्पातितवरकमलकृतार्चनविधानम् ॥२०॥
एतादृशं च दृष्ट्वा जिनभवनं विस्मितास्ततो योधाः । प्रणमन्ति शान्तिनाथं त्रिःकृतप्रदक्षिणावर्त्तम् ॥२१॥
एवं स निजबलं बहिः कक्षान्तरे स्थापयित्वा । प्रविशति शान्तिभवनं दृढहृदयोङ्गदकुमारः ॥२२॥
भावेन वन्दनं स कृत्वा तस्य पश्यति पुरतः । कुट्टिमतले निविष्टं योगार्थं राक्षसाधिपतिम् ॥२३॥
अथ भणत्यङ्गदस्तं रावण ! किं त्वया समुत्थितो दम्भः । त्रिजगदुत्तमस्य पुरतो हृत्वा जनकराजसुताम् ? ॥२४॥
धिग्धिगिति राक्षसाधम ! दुश्चरितावास ! तवेदानीम् । तत्ते करोमि यत्ते न च करोति यमः सुरुष्टोऽपि ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह सो सुग्गीवसुओ, महयं काऊण कलयलारावं । आरुट्ठो दहवयणं, पहणइ वत्थेण वलहत्थो ॥२६॥
तस्स पुरओ ठियाइं, तुरियं घेत्तूण सहसपत्ताइं । धरणिनिविट्ठं, अहोमुहं जुवइवग्गं सो ॥२७॥
सो तस्स अक्खमालं, कराउ हरिऊण तोडइ कुमारो । पुणरवि संधेइ लहुं, भूओ अप्पेइ विहसन्तो ॥२८॥
सा तस्स अक्खमाला, करम्मि सुविसुद्धफलिहनिम्माया । रेहइ डोलायन्ती, मेहस्स बलाहपन्ति व्व ॥२९॥
वररयणपज्जलन्ती, छेत्तूण य कण्ठियं अइतुरन्तो । निययंसुएण बन्धइ, गलए लङ्काहिवं एत्तो ॥३०॥
घेत्तूण य तं वत्थं, उल्लम्बइ रहसपूरियामरिसो । पुणरवि य भवणथम्भे, दहवयणं बन्धइ कुमारो ॥३१॥
दीणारेसु हसन्तो, पञ्चसु विक्केइ रक्खसाहिवई । नियपुरिसस्स हत्थे, सवइ पुणो तिव्वसद्देण ॥३२॥
कण्णेसु कुण्डलाइं, जुवईण लएइ अङ्गयकुमारो । सिरभूसणाइं गेण्हइ, चलणेसु य नेउराइं पुणो ॥३३॥
अन्नाए हरइ वत्थं, अन्नुन्नं बन्धिऊण केसेसु । सहसा करेण पेल्लइ, बलपरिहत्थो परिभमन्तो ॥३४॥
एवं समाउलं तं, सहसा अन्तेउरं कुमारेणं । आलोडियं नराहिव !, वसहेण व गोउलं सव्वं ॥३५॥
पुणरवि भणइ दहमुहं, रे पाव ! छलेण एस जणयसुया । माया काऊण हिया, एक्कागी हीणसत्तेणं ॥३६॥
संपइ तुज्झ समक्खं, एयं दइयायणं समत्थं ते । दहमुह ! हरामि रुम्भसु, जइ दढसत्ती समुव्वहसि ॥३७॥
एव भणिऊण तो सो, सिग्घं मन्दोयरी महादेवी । केसेसु समायड्ढइ, लच्छी भरहो व्व चक्कहरो ॥३८॥
पेच्छसु मए दसाणण !, नीया हिययस्स वल्लहा तुज्झ । वाणरवइस्स होही, अह चामरगाहिणी एसा ॥३९॥

अथ स सुग्रीवसुतो महत्कृत्वा कलकलरावम् । आरुष्टो दशवदनं प्रहन्ति वस्त्रेण बलहस्तः ॥२६॥
तस्य पुरतः स्थितानि त्वरितं गृहीत्वा सहस्रपत्राणि । प्रहन्ति धरणिनिविष्टमधोमुखं युवतिवर्गं सः ॥२७॥
स तस्याक्षमालं कराद्धृत्वा त्रोटयति कुमारः । पुनरपि संदधाति लघु भूयोऽर्पयति विहसन् ॥२८॥
सा तस्याक्षमाला करे सुविशुद्धस्फटिकनिर्मिता । राजते दोलायन्ती मेघस्य बलाहकपङ्क्तिरिव ॥२९॥
वररत्नप्रज्वलन्तीं छित्वा च कण्ठिकमतित्वरन् । निजांशुकेन बध्नाति गलके लङ्काधिपमतः ॥३०॥
गृहीत्वा च तद्वस्त्रमुल्लम्बति रभसपूरितामर्षः । पुनरपि च भवनस्तम्भे दशवदनं बध्नाति कुमारः ॥३१॥
दीनारैर्हसन् पञ्चभिविक्रीणाति राक्षसाधिपतिम् । निजपुरुषस्य हस्ते शपति पुनस्तीव्रशब्देन ॥३२॥
कर्णेभ्योः कुण्डलानि युवतीनां लात्यङ्गदकुमारः । शिरोभूषणानि गृह्णाति चरणेभ्योश्च नूपुराणि पुनः ॥३३॥
अन्यस्या हरति वस्त्रमन्योन्यं बध्वा केशैः । सहसा करेण पीड्यति बलदक्षः परिभ्रमन् ॥३४॥
एवं समाकुलं तं सहसाऽन्तः पुरं कुमारेण । आलोडितं नराधिप !वृषभेनेव गोकुलं सर्वम् ॥३५॥
पुनरपि भणति दशमुखं रे पाप ! छलेनैषा जनकसुता । मायां कृत्वा हतैकाकिनी हीनसत्त्वेन ॥३६॥
संप्रति तव समक्षमेतद्दयिताजनं समस्तं ते । दशमुख ! हरामि रुद्ध यदि दृढशक्तिं समुद्वहसि ॥३७॥
एवं भणित्वा तदा स शीघ्रं मन्दोदरीं महादेवीम् । कैशैः समाकर्षति लक्ष्मीं भरत इव चक्रधरः ॥३८॥
पश्य मया दशानन ! नीता हृदयस्य वल्लभा तव । वानरपते र्भविष्यत्यथ चामरग्राहिण्येषा ॥३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पचलियसव्वाहरणा, हत्थेण घणंसुयं समारन्ती । पगलियनयणंसुजला, पविसइ दइयस्स भुयविवरं ॥४०॥
हा नाह ! परित्तायसु, नीया हं वाणरेण पावेणं । तुज्झ पुरओ महायस !, विलवन्ती दीणकलुणाइं ॥४१॥
किं तुज्झ होहइ पहू !, एएण उवासिएण झाणेणं । जेण इमस्स न छिन्दसि, सीसं चिय चन्दहासेणं ॥४२॥
एयाणि य अन्नाणि य, विलवइ मन्दोयरी पयलियंसू । तह वि य गाढयरं सो, धीरो झाणं समारुहइ ॥४३॥
न य सुणइ नेय पेच्छइ, सव्वेसु य इन्दिएसु गुत्तेसु । विज्जासाहणपरमो, नवरं झाणेक्कगयचित्तो ॥४४॥
मेरु व्व निप्पकम्पो, अक्खोभो सायरो इव महप्पा । चिन्तेइ एगमणसो, विज्जं रामो व्व जणयसुयं ॥४५॥
एयम्मि देसयाले, उज्जोयन्ती दिसाउ सव्वाओ । जयसद्दं कुणमाणी, बहुरूवा आगया विज्जा ॥४६॥
तो भणइ महाविज्जा, सिद्धा हं तुज्झ कारणुज्जुत्ता । सामिय ! देहाऽऽणत्तिं, सज्झं मे सयलतेलोक्कं ॥४७॥
एक्कं मोत्तूण पहू !, चक्कहरं तिहुयणं अपरिसेसं । सिग्घं करेमिह वसे, लक्खण-रामेसु का गणणा ? ॥४८॥
भणिया य रावणेणं, विज्जा नत्थेत्थ कोइ संदेहो । नवरं चिन्तियमेत्ता, एज्जसु मे भगवई ! सिग्घं ॥४९॥

जावं समत्तनियमो नमिऊण विज्जं, लङ्काहिवो ति परिवारइ सन्तिगेहं ।
मन्दोयरिं विमलकित्तिधरिं पमोत्तुं, तावं गओ पउमणाहसहाणिओयं ॥५०॥

॥ इय पउमचरिए बहुरूवासाहणं नाम अडसट्ठिमं पव्वं समत्तं ॥

प्रचलितसर्वाभरणा हस्तेन घनांशुकं समारयन्ती । प्रगलितनयनाश्रुजला प्रविशति दयितस्य भुजविवरम् ॥४०॥
हा नाथ ! परित्रायस्व नीताऽहं वानरेन पापेन । तव पुरतो महायश ! विलपन्ती दिनकरुणानि ॥४१॥
किं तव भविष्यति प्रभो ! एतेनोपासितेन ध्यानेन । येनैतस्य न छिन्दसि शीर्षमेव चन्द्रहाषेण ॥४२॥
एतानि चान्यानि च विलपति मन्दोदरी प्रगलिताश्रुः । तथाऽपि च गाढतरं स धीरो ध्यानं समारोहति ॥४३॥
न च श्रुणोति नैव पश्यति सर्वेषु चेन्द्रियेषु गुप्तेषु । विद्यासाधनपरमो नवरं ध्यानैकगतचित्तः ॥४४॥
मेरुरिव निष्कम्पोऽक्षोभः सागर इव महात्मा । चिन्त्यत्येकमना विद्यां राम इव जनकसुताम् ॥४५॥
एतस्मिन्देशकाल उद्योतयन्ती दिशः सर्वाः । जयशब्दं क्रीयमाणी बहुरुपाऽऽगता विद्या ॥४६॥
तदा भणति महाविद्या सिद्धाऽहं तव कारणोद्योता । स्वामिन् । देह्याज्ञेति साध्यं मे सकलत्रैलोक्यम् ॥४७॥
एकं मुक्त्वा प्रभो ! चक्रधरं त्रिभुवनमपरिशेषम् । शीघ्रं करोमीह वशे लक्ष्मण-रामयोः का गणना ? ॥४८॥
भणिता च रावणेन विद्या नास्त्यत्र कोऽपि संदेहः । नवरं चिन्तितमात्राऽऽयाहि मे भगवति ! शीघ्रम् ॥४९॥

यावत्समाप्तनियमो नत्वा विद्यां लङ्काधिपस्त्रिप्रदक्षिणाति शांतिगृहम् ।
मन्दोदरिं विलमकीर्त्तिधरिं प्रमुच्य तावद्गतः पद्मनाथसहानिकोऽयम् ॥५०॥

॥ इति पद्मचरिते बहुरूपासाधनं नामाष्टषष्टितमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६९. रावणचिन्ताविहाणपव्वं

अह जुवइसहस्साइं, दस अट्ठ य तस्स पणमिउं चलणे । गलियंसुलोयणाइं, जंपन्ति पहू ! निसामेहि ॥१॥
सन्तेण तुमे सामिय !, विज्जाहरसयलवसुमइवईणं । खलियारियाउ अम्हे, अज्जं सुग्गीवपुत्तेणं ॥२॥
सुणिऊण ताण वयणं, रुट्ठो लङ्काहिवो भणइ एत्तो । ववहरइ जो हु एवं, बद्धो सो मच्चुपासेहिं ॥३॥
मुञ्चह कोवारम्भं, संपइ मा होह उस्सुयमणाओ । सुग्गीवं निज्जीवं, करेमि समरे न संदेहो ॥४॥
भामण्डलमाईमा, अन्ने वि य दुट्ठखेयरा सव्वे । मारेमि निच्छएणं, का सन्ना पायचारेहिं ॥५॥
संथाविऊण एवं, महिलाओ निग्गओ जिणहराओ । पविसइ मज्जणहरयं, उवसाहियसव्वकरणिज्जं ॥६॥
[१]एत्तो वेरुलियमए, मज्जणपीढे विहाइ घणसामो । मुणिसुव्वयजिणवसहो, पण्डुसिलाए व्व अभिसेए ॥७॥
सुविसुद्धरयण-कञ्चणमएसु कुम्भेसु सलिलपुण्णेसु । सुमहग्घमणिमएसु य, अन्नेसु य ससियरनिहेसु ॥८॥
गम्भीरभेरि-काहल-मुइङ्ग-तलिमा-सुसङ्खपउराइं । एत्तो पवाइयाइं, तूराइं मेहघोसाइं ॥९॥
उव्वट्टणेसु सुरभिसु, नाणाविहचुण्णवण्णगन्धेहिं । मज्जिज्जइ दणुइन्दो, जुवईहि मियङ्कवयणाहिं ॥१०॥
अङ्गसुहसीयलेणं, सलिलेणं सुरहिगन्धपवरेणं । कुन्तलकयकरणिज्जो, ण्हाओ लङ्काहिवो विहिणा ॥११॥

---

६९. रावणचिन्ताविधान पर्वम्

अथ युवतिसहस्राणि दश अष्टौ च तस्य प्रणम्य चरणान् । गलिताश्रूलोचनानि जल्पन्ति प्रभो ! निशामय ॥१॥
सता त्वया स्वामिन् ! विद्याधरसकलवसुमतिपतिना । तिरस्कृता वयमद्य सुग्रीवपुत्रेण ॥२॥
श्रुत्वा तासां वचनं रुष्टो लङ्काधिपो भणतीतः । व्यवहरति यो हु एवं बद्धः स मृत्युपाशैः ॥३॥
मुञ्चत कोपारम्भं संप्रति मा भवतोत्सुकमनसः । सुग्रीवं निर्जीवं करोमि समरे न संदेहः ॥४॥
भामण्डलादीनन्यान्नपि च दुष्टखेचरान्सर्वान् । मारयामि निश्चयेन का संज्ञा पादचारैः ॥५॥
संस्थाप्यैवं महिला निर्गतो जिनगृहात् । प्रविशति मज्जनगृहमुपशाधितसर्वकरणीयम् ॥६॥
इतो वैडूर्यमये मज्जनपीठे विभाति घनश्यामः । मुनिसुव्रतजिनवृषभः पाण्डुशिलायामिवाभिषेके ॥७॥
सुविशुद्धरत्नकञ्चनमयैः कुम्भैः सलिलपूर्णैः । सुमहार्ध्यमणिमयैश्चान्यैश्च शशिकरनिभैः ॥८॥
गम्भीरभेरि-काहलमृदङ्ग-तलिमासुशङ्खप्रचुराणि । इतः प्रवादितानि तूर्याणि मेघघोषाणि ॥९॥
उद्वर्तनैः सुरभिभि-र्नानाविधचूर्णवर्णगन्धैः । मज्ज्यते दानवेन्द्रो युवतिभि मृगाङ्कवदनाभिः ॥१०॥
अङ्गसुखशीतलेन सलिलेन सुरभिगन्धप्रवरेण । कुन्तलकृतकरणीयः स्नातो लङ्काधिपो विधिना ॥११॥

---

८. एत्तो फलिहमणिमए-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो हार-कडय-कुण्डल-मउडालंकारभूसियसरीरो । पविसरइ सन्तिभवणं, नाणाविहकुसुमकयपूयं ॥१२॥

अह विरइऊण पूयं, काऊण य वन्दणं तिपरिवारं । पविसइ लीलायन्तो, अह भोयणमण्डवं धीरो ॥१३॥

दिन्नासणोवविट्ठो, सेसा वि भडा सएसु ठाणेसु । अत्थरय-वरमसूरय-वेत्तासणकञ्चणमएसु ॥१४॥

दिन्ना भिङ्गारविही, उवणीयं भोयणं बहुवियप्पं । भुञ्जइ लङ्काहिवई, समयं चिय सव्वसुहडेहिं ॥१५॥

अट्ठसयखज्जयजुयं, अह तं चउसट्ठियवञ्जणवियप्पं । सोलसओयणभेयं, विहिणा जिमिओ वराहारं ॥१६॥

निव्वत्तभोयणविही, लीलायन्तो भडेहि परिकण्णो । कीलणभूमिमह गओ, विज्जाए परिक्खणं कुणइ ॥१७॥

विज्जाए रक्खसवई, करेइ नाणाविहाइं रूवाइं । पहणइ करेसु भूमिं, जणयन्तो रिउजणाकम्पं ॥१८॥

एत्थन्तरे पवुत्ता, निययभडा दहमुहं कयपणामा । मोत्तूण तुमं रामं, को अन्नो घाइउं सत्तो ? ॥१९॥

सो एव भणियमेत्तो, सव्वालंकारभूसियसरीरो । पविसइ [1]पउमउज्जाणं, इन्दो इव नन्दणं मुइओ ॥२०॥

दट्ठूण जणयतणया, सेन्नं लङ्काहिवस्स अइबहुयं । चिन्तेइ वुण्णहियया, न य जिणइ इमं सुरिन्दो वि ॥२१॥

सा एव उस्सुयमणा, सीया लङ्काहिवेण तो भणिया । पावेण मए सुन्दरि, हरिया छम्मेण विलवन्ती ॥२२॥

गहियं वयं किसोयरि !, अणन्तविरियस्स पायमूलम्मि । अपसन्ना परमहिला, न भुञ्जियव्वा मए निययं ॥२३॥

सुमरन्तेण वयं तं, न मए रमिया तुमं विसालच्छी । रमिहामि पुणो सुन्दरि !, संपइ आलम्बणं छेत्तुं ॥२४॥

सहार-कटक-कुण्डल-मुकुटालङ्कारभूषितशरीरः । प्रविशति शान्तिभवनं नानाविधकुसुमकृतपूजम् ॥१२॥

अथ विरच्य पूजां कृत्वा च वन्दनं त्रिदक्षिणम् । प्रविशति लीलायन्नथ भोजनमण्डपं धीरः ॥१३॥

दत्तासनोपविष्टः शेषा अपि भटाः स्वेषु स्थानेषु । अस्तरक-वरमसूरक-वैत्रासनकञ्चनमयेषु ॥१४॥

दत्ता भृङ्गारविधिरूपनीतं भोजनं बहुविकल्पम् । भुञ्जते लङ्काधिपतिः समकमेव सर्वसुभटैः ॥१५॥

अष्टशतखाद्यकयुक्तमथ तं चतुषष्ठिव्यञ्जनविकल्पम् । षोडषोदनभेदं विधिना जिमित वराहारम् ॥१६॥

निवर्तभोजनविधि र्लीलायन्भटैः परिकीर्णः । क्रीडनभूमिमथ गतो विद्यायाः परीक्षणं करोति ॥१७॥

विद्यया राक्षसपतिः करोति नानाविधानि रुपाणि । प्रहन्ति करैर्भूमिं जनयन् रिपुजनाकम्पम् ॥१८॥

अत्रान्तरे प्रोक्ता निजभटा दशमुखं कृतप्रणामाः । मुक्त्वा त्वां रामं कोऽन्यः घातितुं शक्तः ? ॥१९॥

स एवं भणितमात्रः सर्वालङ्कारभूषितशरीरः । प्रविशति पद्मोद्यानमिन्द्र इव नन्दनं मुदितः ॥२०॥

दृष्ट्वा जनकतनया सैन्यं लङ्काधिपस्यातिबहुकम् । चिन्तयति विदीर्णहृदया न च जयतीमं सुरेन्द्रोऽपि ॥२१॥

सैवमुत्सुकमना सीता लङ्काधिपेन ततो भणिता । पापेन मया सुन्दरि ! हृता छद्मेन विलपन्ती ॥२२॥

गृहीतं व्रतं कृशोदरि ! अनन्तवीर्यस्य पादमूले । अप्रसन्ना परमहिला न भुङ्क्तव्या मया नित्यम् ॥२३॥

स्मरता व्रतं तन्न मया रन्ता त्वं विशलाक्षि ! । रंस्ये पुनः सुन्दरि ! संप्रत्यालम्बनं छित्वा ॥२४॥

---

१. पउमुज्जाणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुप्फविमाणारूढा, पेच्छसु सयलं सकाणणं पुहइं । भुञ्जसु उत्तमसोक्खं, मज्झ पसाएण ससिवयणे ! ॥२५॥
सुणिऊण इमं सीया, गग्गरकण्ठेण भणइ दहवयणं । निसुणेहि मज्झ वयणं, जइ मे नेहं समुव्वहसि ॥२६॥
घणकोववसगएण वि, पउमो भामण्डलो य सोमित्ती । एए न घाइयव्वा, लङ्काहिव ! अहिमुहावडिया ॥२७॥
ताव य जीवामि, अहं जाव य एयाण पुरिससीहाणं । न सुणेमि मरणसद्दं, उव्वियणिज्जं अकण्णसुहं ॥२८॥
सा जंपिऊण एवं, पडिया धरणीयले गया मोहं । दिट्ठा य रावणेणं, मरणावत्था पयलियंसु ॥२९॥
मिउमाणसो खणेणं, जाओ परिचिन्तिउं समाढत्तो । कम्मोदएण बद्धो, को वि सिणेहो अहो गरुओ ॥३०॥
धिद्धि त्ति गरहणिज्जं, पावेण मए इमं कयं कम्मं । अन्नोन्नपीइपमुहं, विओइयं जेणिमं मिथुणं ॥३१॥
ससि-पुण्डरीयधवलं, निययकुलं उत्तमं कयं मलिणं । परमहिलाए कएणं, वम्महअणियत्तचित्तेणं ॥३२॥
धिद्धी ! अहो ! अकज्जं, महिला जं तत्थ पुरिससीहाणं । अवहरिऊण वणाओ, इहाऽऽणिया मयणमूढेणं ॥३३॥
नयरस्स महावीही, कढिणा सग्गग्गला अणयभूमी । सरिय व्व कुडिलहियया, वज्जेयव्वा हवइ नारी ॥३४॥
जा पढमदिट्ठसन्ती, अमएण व मज्झ फुसइ अङ्गाइं । सा परपसत्तचित्ता, उव्वियणिज्जा इहं जाया ॥३५॥
जइ वि य इच्छेज्ज ममं, संपइ एसा विमुक्कसब्भावा । तह वि न य जायइ धिई, अवमाणसुदूमियमणस्स ॥३६॥
भाया मे आसि जया, बिभूसणो नियमेव अणुकूलो । उवएसपरो तइया, न मणो पीइं समल्लीणो ॥३७॥
बद्धा य महासुहडा, अन्ने वि विवाइया पवरजोहा । अवमाणिओ य रामो, संपइ मे केरिसी पीई ? ॥३८॥

पुष्पकविमानारुढा पश्य सकलां सकाननां पृथिवीम् । भुङ्ग्धि उत्तमसुखं मम प्रसादेन शशिवदने ! ॥२५॥
श्रुत्वेदं सीता गद्गद्कण्ठेन भणति दशवदनम् । निश्रुणु मम वचनं यदि मे स्नेहं समुद्वहसि ॥२६॥
घनकोपवशगतेनापि पद्मो भामण्डलश्च सौमित्रिः । एते न घातितव्या लङ्काधिप ! अभिमुखापतिताः ॥२७॥
तावच्च जीवाम्यहं यावच्चैतेषां पुरुषसिंहानाम् । न श्रुणोमि मरणशब्दमुद्वेजनीयमकर्णसुखम् ॥२८॥
सा जल्पित्वैवं पतिता धरणितले गता मोहम् । दृष्टा च रावणेन मरणावस्था प्रगलिताश्रुः ॥२९॥
मृदुमानसः क्षणेन जातः परिचिन्तयितुं समारब्धः । कर्मोदयेन बद्धः कोऽपि स्नेहोऽहो गुरुकः ॥३०॥
धिग्धिगिति गर्हणीयं पापेन मयेदं कृतं कर्म । अन्योन्यप्रीतिप्रमुखं वियोजितं येनेदं मिथुनम् ॥३१॥
शशिपुण्डरीकधवलं निजकुलमुत्तमं कृतं मलिनम् । परमहिलायाः कृतेन कामानिवृतचित्तेन ॥३२॥
धिग्धिगहो ! अकार्यं महिला यत्तत्र पुरुषसिंहानाम् । अपहृत्य वनादिहानीता मदनमूढेन ॥३३॥
नगरस्य महावीथी कठिना स्वर्गार्गलाऽनयभूमिः । सरिदेव कूटिलहृदया वर्जितव्या भवति नारी ॥३४॥
या प्रथम दृष्टा सत्यमृतेनेव मम स्पृशत्यङ्गानि । सा परप्रसक्तचित्तोद्वेजनीयेह जाता ॥३५॥
यद्यपि चेच्छेन्माम् संप्रत्येषा विमुक्तसद्भावा । तथापि न च जायते धृतिरपमानसुदुषितमनसः ॥३६॥
भ्राता ममासीद्विभीषणो नित्यमेवानुकूलः । उपदेशपरस्तदा न मनसः प्रीतिं समालीनः ॥३७॥
बद्धाश्च महासुभटा अन्येऽपि विपादिताः प्रवरयोधाः । अपमानितश्च रामः संप्रति मे कीदृशी प्रीतिः ? ॥३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ वि समप्पेमि अह, समस्स किवाए जणयनिवतणया[१०]। लोओ दुग्गहहियओ, असत्तिमन्तं गणेही मे ॥३९॥
इह सीह-गरुडकेऊ, संगमे राम-लक्खणे जिणिउं। परमविभवेण सीया, पच्छा ताणं समप्पे हं ॥४०॥
न य पोरुसस्स हाणी, एव कए निम्मला य मे कित्ती। होहइ समत्थलोए, तम्हा ववसामि संगामं ॥४१॥
एव मुणिऊण तो सो, नियघरं पत्थिओ महिड्ढीओ। सुमरइ वेरियजणियं, दहवयणो परिहवं ताहे ॥४२॥
अह तक्खणम्मि रुट्ठो, जंपइ सुग्गीवअङ्गए घेत्तुं। मज्झाओ दो वि अद्धे, करेमि इह चन्दहासेणं ॥४३॥
भामण्डलं पि घेत्तुं, पावं दढसङ्कलाहि सुनिबद्धं। मोग्गरघायाहिहयं, करेमि गयजीवियं अज्ज ॥४४॥
करवत्तेण मरुसुयं, फालेमिह कट्ठजन्तपडिबद्धं। मारेमि सेससुहडे, लक्खणरामे पमोत्तूणं ॥४५॥
एवं निच्छयहियए, जाए लङ्काहिवे निमित्ताइं। जायाइ बहुविहाइं, मगहवई अजयवन्ताइं ॥४६॥
अक्को आउहसरिसो, परिवेसो अम्बरे फरुसवण्णो। नट्ठो सयलसमत्थो, रयणीचन्दो भएणेव ॥४७॥
जाओ य भूमिकम्पो, घोरा निवडन्ति तत्थ निग्घाया। उक्का य रुहिरवण्णा, पुव्वदिसा चेव दिप्पन्ती ॥४८॥
जालामुही सिवा वि य, घोरं वाहरइ उत्तरदिसाए। हेसन्ति फरुसविरसं, कम्पियगीवा महातुरया ॥४९॥
हत्थी रडन्ति घोरं, पहणन्ता वसुमई सहत्थेणं। मुञ्चन्ति नयणसलिलं, पडिमाओ देवयाणं पि ॥५०॥
वासन्ति करयरवं, रिट्ठा वि य दिणयरं पलोएन्ता। भज्जन्ति महारुक्खा, पडन्ति सेलाण सिहराइं ॥५१॥

यद्यपि समर्प्याम्यहं रामस्य कृपया जनकनृपतनयाम्। लोको दुर्ग्रहहृदयोऽशक्तिमान्गणिष्यति माम् ॥३९॥
इह सिंह-गरुडकेतौ संग्रामे राम-लक्ष्मणौ जित्वा। परमविभवेन सीतां पश्चात्ताभ्यां समर्प्याम्यहम् ॥४०॥
न च पौरुषस्य हानिरेवं कृते निर्मला च मम कीर्त्तिः। भविष्यति समस्तलोके तस्माद्व्यवसामि संग्रामम् ॥४१॥
एवं मुणित्वा तदा स निजगृहं प्रस्थितो महर्द्धिकः। स्मरति वैरिजनितं दशवदनः परिभवं तदा ॥४२॥
अथ तत्क्षणे रुष्टो जल्पति सुग्रीवाङ्गदौ गृहीत्वा। मध्याद् द्वावप्यर्धौ करोमीह चन्द्रहासेन ॥४३॥
भामण्डलमपि गृहीत्वा पापं दृढशृङ्खलाभिः सुनिबद्धम्। मुद्गरघाताभिहतं करोमि गतजीवितमद्य ॥४४॥
करपत्रेण मरुत्सुतं स्फाटयामीह काष्टयन्त्रप्रतिबद्धम्। मारयामि शेष सुभटान् लक्ष्मणरामौ प्रमुच्य ॥४५॥
एवं निश्चयहृदये जाते लङ्काधिपे निमित्तानि। जातानि बहुविधानि मगधपतेरजयवन्तानि ॥४६॥
अर्क आयुधसदृशः परिवेशोऽम्बरे परुषवर्णः। नष्टः सकलसमस्तो रजनीचंद्रो भयेनेव ॥४७॥
जातश्च भूमिकम्पः घोरा निपतन्ति तंत्रनिर्घाताः। उल्काश्च रुधिरवर्णाः पूर्वदिश्येव दीप्यन्ते ॥४८॥
ज्वालामुखी शिवाऽपि च घोरं व्याहरत्युत्तरदिशि। ह्रेष्यन्ति परुषविरसं कम्पितग्रीवा महातुरगाः ॥४९॥
हस्तिनो रटन्ति घोरं प्रहणन्तो वसुमतिं स्वहस्तेन। मुञ्चन्ति नयन सलिलं प्रतिमा देवतानामपि ॥५०॥
वासन्ति करकररवं रिष्टा अपि च दिनकरं प्रलोकयन्तः। भज्यन्ति महावृक्षाः पतन्ति शैलानां शिखराणि ॥५१॥

---

१०. तणयं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विउलाइं पि सराइं, सहसा सोसं गयाइ सव्वाइं । वुट्ठं च रुहिरवरिसं, गयणाओ तडतडारावं ॥५२॥
एए अन्ने य बहू, उप्पाया दारुणा समुप्पन्ना । देसाहिवस्स मरणं, साहेन्ति न एत्थ संदेहो ॥५३॥
नक्खत्तबलविमुक्को, गहेसु अच्चन्तकुडिलवन्तेसु । वारिज्जन्तो वि तया, अह कङ्खइ रणमुहं माणी ॥५४॥
नियजसभङ्गभीओ, गाढं वीरेक्करसगओ धीरो । सत्थाणि वि जाणन्तो, कज्जाकज्जं न लक्खेइ ॥५५॥
लङ्काहिवस्स एत्तो, जं हिययत्थं तु कारणं सव्वं । साहेमि तुज्झ सेणिय, सुणेहि विगहं पमोत्तूणं ॥५६॥
जिणिऊण सत्तुसेन्नं, मोत्तूण य पुत्तबन्धवा सव्वे । पविसामि ण लङ्कं हं, करेमि पच्छा इमं कज्जं ॥५७॥
सयलम्मि भरहवासे, उव्वासेऊण पायचारा हं । बल-सत्ति-कित्तिजुत्ता, ठवेमि विज्जाहरे बहवे ॥५८॥

जेणेत्थ वंसे सुरदेवपुज्जा, जिणुत्तमा चक्कहरा य रामा ।
नारायणा तिव्वबला महप्पा, जायन्ति तुङ्गामलकित्तिमन्ता ॥५९॥

॥ इय पउमचरिए रावणचिंताविहाणं एगूणसत्तरं पव्वं समत्तं ॥

विपुलान्यपि सरांसि सहसा शोषं गतानि सर्वाणि । वृष्टं च रुधिरवर्षं गगनात्तडतडारावम् ॥५२॥
एतेऽन्ये च बहव उत्पादा दारुणाः समुत्पन्नाः । देशाधिपस्य मरणं कथयन्ति नात्र संदेहः ॥५३॥
नक्षत्रबलविमुक्तो ग्रहेष्वत्यन्तकुटिलवत्सु । वार्यमाणोऽपि तदाथ काङ्क्षते रणमुखं मानी ॥५४॥
निजयशोभङ्गभीतो गाढं वीरैकरसगतो धीरः । शास्त्राण्यपि जानन्कार्याकार्यं न लक्षयति ॥५५॥
लङ्काधिपस्येतो यद्धृदयस्थं तु कारणं सर्वम् । कथयामि तव श्रेणिक ! श्रुणु विकथां प्रमुच्य ॥५६॥
जित्वा शत्रुसैन्यं भुक्त्वा च पुत्रबान्धवान्सर्वान् । प्रविशामि लङ्कामहं करोमि पश्चादिदं कार्यम् ॥५७॥
सकले भरतवर्षे उद्वास्य पादाचारानहम् । बल-शक्ति-कान्तियुक्तान्स्थापयिष्यामि विद्याधरान्बहून् ॥५८॥

येनात्र वंशे सुरदेवपूज्या जिनोत्तमाश्चक्रधराश्च रामाः ।
नारायणास्तीव्रबला महात्मानो जायन्ति तुङ्गामलकीर्तिमन्तः ॥५९॥

॥ इति पद्मचरिते रावणचिन्ताविधानमेकोनसप्ततितमं पर्व समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७०. उज्जोयविहाणपव्वं

तत्तो सो दहवयणो, दियहे अइभासुरे सह भडेहिं । अत्थाणीए निविट्ठो, इन्दो इव रिद्धिसंपन्नो ॥१॥

वरहार-कडयकुण्डल-मउडालंकारभूसियसरीरो । पुलयन्तो निययसहं, अहियं चिन्तावरो जाओ ॥२॥

भाया य भाणुकण्णो, इन्दइ घणवाहणो महं पुत्ता । हत्थ-पहत्था य भडा, एत्थ पएसे न दीसन्ति ॥३॥

ते तत्थ अपेच्छन्तो, रुट्ठो भडभिउडिभासुरं वयणं । काऊण देइ [1] दिट्ठी, दहवयणो चक्करयणस्स ॥४॥

रोसपसरन्तहियओ, आउहसाला [2] समुज्जओ गन्तुं । ताव य समुट्ठियाइं, सहसा अइदुण्णिमित्ताइं ॥५॥

अन्नेण वच्चमाणो, पहओ चलणेण पायमग्गम्मि । छिन्नो य तस्स मग्गो, पुरओ वि हु किण्हसप्पेणं ॥६॥

हा हा धी ! मा वच्चसु, तस्स सुणन्तस्स अकुसला सद्दा । जाया सहसुप्पाया, सउणा अजयावहा बहवे ॥७॥

पडियं च उत्तरिज्जं, भग्गं वेरुलियदण्डयं छत्तं । ताहे कयञ्जलिउडा, दइयं मन्दोयरी भणइ ॥८॥

विरहसरियाए सामिय !, वुज्झन्ती दुक्खसलिलभीमाए । उत्तारेहि महायस !, सिणेहहत्थावलम्बेणं ॥९॥

अन्नं पि सुणसु सामिय !, मह वयणं जइ वि नेच्छसि मणेणं ।
एयं पि य तुज्झ हियं, होहइ कडुगोसहं व जहा ॥१०॥

संसयतुलं वलग्गो, किं वा संसयसि णाह ! अत्ताणं ? । उम्मग्गेण रियन्तं, धरेह चित्तं समज्जायं ॥११॥

७०. उद्योगविधान पर्वम्

ततः स दशवदनो दिवसे ऽतिभासुरे सह भटैः । आस्थानिकायां निविष्ट इन्द्र इवर्द्धिसंपन्नः ॥१॥

वरहारकटककुण्डलमुकुटालङ्कारभूषितशरीरः । पुलकयन्निजसभामधिकं चिन्तापरो जातः ॥२॥

भ्राता च भानुकर्ण इन्द्रजीत्घनवाहनो मम पुत्राः । हस्त-प्रहस्ताश्च भटा अत्र प्रदेशे न दृश्यन्ते ॥३॥

तांस्तत्रापश्यन्रुष्टो भटभृकुटिभासुरं वदनम् । कृत्वा ददाति दृष्टिं दशवदनश्चक्ररत्नस्य ॥४॥

रोषप्रसरद्धृदय आयुधशालां समुद्यतो गन्तुम् । तावच्च समुत्थितानि सहसाऽतिदुर्निमित्तानि ॥५॥

अन्येन व्रजन्प्रहतश्चरणेन पादमार्गे । छिन्नश्च तस्य मार्गः पुरतोऽपि हु कृष्णसर्पेन ॥६॥

हा हा धी ! मा व्रज तस्य श्रुण्वतोऽकुशलाः शब्दाः । जाताः सहसोत्पादाः शकुना अजयावहा बहवः ॥७॥

पतितं चोत्तरियं भग्नं वैडुर्यदण्डकं छत्रम् । तदा कृताञ्जलिपुटा दयितं मन्दोदरी भणति ॥८॥

विरहसरिति स्वामिन् ! मज्जन्ती दुःखसलिलभीमायाम् । उत्तारय महायशः ! स्नेहहस्तावलम्बनेन ॥९॥

अन्यदपि श्रुणु स्वामिन् ! मम वचनं यद्यपि नेच्छसि मनसा । एतदपि च तव हितं भविष्यति कट्वौषधं च यथा ॥१०॥

संशयतुलामवलग्नः किं वा संशयसि नाथ ! आत्मानम् ? । उन्मार्गेनेर्यन्तं धर चित्तं समर्यादम् ॥११॥

१. दिट्ठिं-प्रत्य० । २. सालं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुङ्गं विभूससु कुलं, सलाहणिज्जं च कुणसु अप्पाणं । अप्पेहि भूमिगोयर-[1] महिला कलहस्स आमूलं ॥१२॥
वइरिस्स अत्तणो वा, मरणं काऊण निच्छयं हियए । जुज्झिज्जइ समरमुहे, तह वि य किं कारणं तेणं ? ॥१३॥
तम्हा अप्पेहि इमा[2], सीया रामस्स पणयपीईए । परिवालेहि वयं तं, जं गहियं मुणिसयासम्मि ॥१४॥
देवेहि परिग्गहिओ, जइ वि समो हवइ [3]भरहनाहेणं । तह वि अकित्तिं पावइ, पुरिसो परनारिसङ्गेणं ॥१५॥
जो परनारीसु समं, कुणइ रइं मूढभावदोसेणं । आसीविसेण समयं, कीलइ सो उग्गतेएणं ॥१६॥
हालाहलं पिव विसं, हुयवहजालं व परमपज्जलियं । [4]वग्घि व्व विसमसीला, अहियं वज्जेह परमहिला ॥१७॥
इन्दीवरघणसामो, गव्वियहसियं दसाणणो काउं । भणइ पिया[5] ससिवयणे, किं व भयं उवगयासि तुमं ॥१८॥
न य सो हं रविकित्ती, न चेव विज्जाहरो असणिघोसो । न य इयरो को वि नरो, जेण तुमं भाससे एवं ॥१९॥
रिउपायवाण अग्गी, सो हं लङ्काहिवो सुपडिकूलो । न य अप्पेमि ससिमुही,[6] सीया मा कुणसु भयसङ्कं ॥२०॥
एव भणियम्मि[7] तो सा, ईसावसमुवगया महादेवी । जंपइ सीयाए समं, किं सामिय ! रइसुहं महसि ? ॥२१॥
ईसाकोवेण तओ, पहणइ कण्णुप्पलेण सा दइयं । भणइ य गुणाणुरूवं, किं दिट्ठं तीए सोहग्गं ? ॥२२॥
किं भूमिगोयरीए, कीरइ अहियं कलाविहीणाए ? । विज्जाहरीए समयं, भयसु पहू ! नेहसंबन्धं ॥२३॥
आणवसु केरिसी हं, होमि पहू ! जा तुमं हिययइट्ठा । किं सयलपङ्कयसिरी ?, अहवा वि सुरिन्दवहुसरिसा ? ॥२४॥
सो एव भणियमेत्तो, अहोमुहो लज्जिओ विचिन्तेइ । परमहिलासत्तो हं, अकित्तिलहुयत्तणं पत्तो ॥२५॥

तव विभूषय कुलं श्लाघनीयं च कुर्वात्मानम् । अर्पय भूमिगोचरमहिलां कलहस्यामूलाम् ॥१२॥
वैरिण आत्मनो वा मरणं कृत्वा निश्चयं हृदये । युध्यते समरमुखे तथाऽपि च किं कारणं तेन ? ॥१३॥
तस्मादर्पयेमां सीतां रामस्य प्रणयप्रीत्या । परिपालय व्रतं तद्यद्गृहीतं मुनिसकाशे ॥१४॥
देवैः परिगृहीतो यद्यपि समोभवति भरतनाथेन । तथाप्यकीर्त्तिं प्राप्नोति पुरुषः परनारीसङ्गेन ॥१५॥
यः परनारिभिः समं करोति रतिं मूढभावदोषेण । आसीविषेण समकं क्रीडति स उग्रतेजसा ॥१६॥
हालाहलमिव विषं हुतवहज्वालामिव परमप्रज्वलिताम् । व्याघ्रीव विषमशीलामधिकं वर्जय परमहिलाम् ॥१७॥
इन्दिवरघनश्यामो गर्वितहसितं दशाननः कृत्वा । भणति प्रियां शशिवदने ! किं वा भयमुपगताऽसि त्वम् ॥१८॥
न च सोऽहं रविकीर्त्ति नैर्व विद्याधरोऽसनिघोषः । न चेतरः कोऽपि नरो येन त्वं भाषस एवम् ॥१९॥
रिपुपादपानामग्निः सोऽहं लङ्काधिपः सुप्रतिकूलः । न चार्पयामि शशिमुखि ! सीतां मा कुरु भयशङ्काम् ॥२०॥
एवं भणिते ततः सेर्ष्यावसमुपागता महादेवी । जल्पति सीतया समं किं स्वामिन् ! रतिसुखं काङ्क्षसे ? ॥२१॥
ईर्ष्याकोपेन ततः प्रहन्ति कर्णोत्पलेन सा दयितम् । भणति च गुणानुरुपं किं दृष्टं तस्याः सौभाग्यम् ? ॥२२॥
किं भूमिगोचर्यया, क्रियतेऽधिकं कलाविहीनया । विद्याधर्या सपदं भज प्रभो ! स्नेहसंबन्धम् ॥२३॥
आज्ञापय कीदृश्यहं भवामि प्रभो ! या तवहृदयेष्टा । किं सकलपङ्कजश्रीः ? अथवाऽपि सुरेन्द्रवधुसदृशी ? ॥२४॥
स एवं भणितमात्रोऽधोमुखो लज्जितो विचिन्तयति । परमहिलासक्तोऽहमकीर्त्तिलघुत्वं प्राप्तः ॥२५॥

---

१. महिलं-प्रत्य० । २. इमं सीयं-प्रत्य० । ३. भरहराएणं-प्रत्य० । ४. वग्घि व विसमसीलं अहियं वज्जेह परमहिलं-प्रत्य० । ५. पियं-प्रत्य० । ६. ससिमुहिं सीयं-प्रत्य० । ७. भणियमेत्ते सा-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह सो विलक्खहसियं, काऊण य भणइ अत्तणो कन्तं । तं मज्झ हिययइट्ठा, अहियं अन्नाण महिलाणं ॥२६॥
लद्धपसायाए तओ, भणिओ मन्दोयरीए दहवयणो । किं दिणयरस्स दीवो, दिज्जइ वि हु मग्गणट्ठाए ? ॥२७॥
जाणन्तो वि नयविही, कह वि पमायं गओ विहिवसेणं । तह वि य पबोहणीओ, हवइ नरो अन्नपुरिसेणं ॥२८॥
आसि पुरा मुणिवसहो, विण्हू वेउव्वलद्धिसंपन्नो । सिद्धन्त-गीइयासु य किं न पबोहं तया नीओ ? ॥२९॥
जइ पयणुओ वि कीरइ, मज्झ पसाओ इमं भणन्तीए । तो मुञ्चसु नाह ! तुमं, [१]सीया रामस्स हिययइट्ठा ॥३०॥
तुह अणुमएण [२]सीया, नेऊणं राहवं पसाएमि । आणेमि भाणुकण्णं, पुत्ता य अलं रणमुहेणं ॥३१॥
सो एव भणियमेत्तो, जंपइ लङ्काहिवो परमरुट्ठो । लहु गच्छ गच्छ पावे !, जत्थ मुहं ते न पेच्छामि ॥३२॥
एव भणिये पवुत्ता, सुणसु पहू ! बुहजणेण जं सिट्ठं । हलहर-चक्कहराणं, जम्मं पडिवासुदेवाणं ॥३३॥
आसि तिविट्ठु, दुविट्ठू, सयंभु पुरिसोत्तमो पुरिससीहो । पुरसवरपुण्डरीओ, दत्तो वि हु केसवा एए ॥३४॥
अयलो विजय सुभद्दो य सुप्पहो तह सुदरिसणो चेव । आणन्द नन्दणो वि य, इमे वि हलिणो वइक्कन्ता ॥३५॥
अह भारहम्मि वासे, एए बल-केसवा वइक्कन्ता । संपइ वट्टन्ति इमे, राहव-नारायणा लोए ॥३६॥
एएहि तारगाई, पडिसत्तू घाइया तिखण्डवई । संपइ सामि विणासं, तुहमवि गन्तुं समुच्छहसि ॥३७॥
भोत्तूण कामभोए, पुरिसा जे संजमं समणुपत्ता । ते नवरि वन्दणिज्जा, हवन्ति देवा-ऽसुराणं पि ॥३८॥

अथ स विलक्षहसितं कृत्वा च भणत्यात्मनः कान्ताम् । त्वं मम हृदयेष्टाऽधिकमन्यासां महिलानाम् ॥२६॥
लब्धप्रसादया ततो भणितो मन्दोदर्या दशवदनः । किं दिनकरस्य दीपो दीयतेऽपि हु मार्गणार्थे ? ॥२७॥
जानन्नपि नयविधिं कथमपि प्रमादं गतो विधिवशेन । तथापि च प्रबोधनीयो भवति नरोऽन्यपुरुषेण ॥२८॥
आसीत्पुरा मुनिवृषभो विष्णु वैक्रियलब्धिसंपन्नः । सिद्धान्त-गीतीकाभिश्च किं न प्रबोधं तदा नीतः ? ॥२९॥
यदि प्रतनुकोऽपि क्रीयते मम प्रसाद इदं भणन्त्याः । तदा मुञ्च नाथ ! त्वं सीतां रामस्य हृदयेष्टाम् ॥३०॥
तवानुमत्या सीतां नीत्वा राघवं प्रसादयामि । आनयामि भानुकर्णं पुत्रांश्चालं रणमुखेन ॥३१॥
स एवं भणितमात्रो जल्पति लङ्काधिपः परमरुष्टः । लघु गच्छ गच्छ पापे ! यत्र मुखं तव न पश्यामि ॥३२॥
एवं भणिते प्रोक्ता श्रृणु प्रभो ! बुधजनेन यच्छिष्टम् । हलधर-चक्रधराणां जन्म प्रतिवासुदेवानाम् ॥३३॥
आसीत्त्रिपृष्ठो द्विपृष्टः स्वयंभूः पुरुषोत्तमः पुरुषसिंहः । पुरुषवरपुण्डरिको दत्तोऽपि हु केशवा एते ॥३४॥
अचलो विजयः सुभद्रश्च सुप्रभस्तथा सुदर्शन एव । आनन्दो नन्दनोऽपि चेमेऽपि हलिनो व्यतिक्रान्ताः ॥३५॥
अथ भारते वर्षे एते बल-केशवा व्यतिक्रान्ताः । संप्रति वर्तेत इमौ राघव-नारायणौ लोके ॥३६॥
एतैस्तारकादयः प्रतिशत्रवः घातितास्त्रिखण्डपतयः । संप्रति स्वामिन् ! विनाशं त्वमपि गन्तुं समुत्सहसे ॥३७॥
भुक्त्वा कामभोगान्पुरुषा ये संयमं समनुप्राप्ताः । ते नवरि वन्दनीया भवन्ति देवाऽसुराणामपि ॥३८॥

---

१. सीयं रामस्स हिययइट्ठं-प्रत्य० । २. सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तम्हा तुमे वि सामिय !, भुत्तं चिय उत्तमं विसयसोक्खं । भमिओ य जसो लोए, संपइ दिक्खं पवज्जासु ॥३९॥

अहवा अणुव्वयधरो, होऊणं सील-संजमाभिरओ । देव-गुरुभत्तिजुत्तो, दहमुह ! दुक्खक्खयं कुणसु ॥४०॥

अट्ठारसहि दसाणण !, जुवइसहस्सेहि जो तुमं तित्तिं । न गओ अणङ्गमूढो सो कह एक्काए वच्चिहिसि ? ॥४१॥

इह सयलजीवलोए, विसयसुहं भुञ्जिउं सुचिरकालं । जइ कोइ गओ तित्तिं, पुरिसो तं मे समुद्दिससु ॥४२॥

तम्हा इमं महाजस !, विसयसुहं अप्पसोक्खबहुदुक्खं । वज्जेहि वज्जणिज्जं, परमहिलासंगमं एयं ॥४३॥

बहुभडखयंकरेणं, देव ! न कज्जं इमेण जुज्झेणं । बद्धञ्जलिमउडा हं, पडिया वि हु तुज्झ पाएसु ॥४४॥

हसिऊण भणइ वीरो, उट्ठेहि किसोयरी ! भउव्वेयं । मा वच्चसु पसयच्छी !, नामेणं वासुदेवाणं ॥४५॥

बलदेव-वासुदेवा, हवन्ति बहवो इहं भरहवासे । तह वि य किं संजायइ, सिद्धी खलु नाममेत्तेणं ? ॥४६॥

रहनेउरनयरवई, जह इन्दोऽणिव्वुई मए नीओ । तह य इमं कीरन्तं, पेच्छसु नारायणं सिग्घं ॥४७॥

भणिऊण वयणमेयं, [22]समयं मन्दोयरीए दहवयणो । कीलणहरं पविट्ठो, ताव य अत्थं गओ सूरो ॥४८॥

अत्थायम्मि दिणयरे, संझासमए समागए सन्ते । मउलेन्ति कमलयाइं, विरहो चक्कायमिहुणाणं ॥४९॥

जाए पओससमए, पज्जलिए रयणदीवियानिवहे । लङ्कापुरी विभायइ, मेरुस्स व चूलिया चेव ॥५०॥

पेसिज्जइ जुवइजणो, विरइज्जइ मण्डणं पिययमाणं । मोहणसुहं महिज्जइ, मइर च्चिय पिज्जइ पसन्ना ॥५१॥

तस्मात्त्वयापि स्वामिन् ! भुक्तमेवोत्तमं विषयसुखम् । भ्रामितश्च यशोलोके संप्रति दीक्षां प्रव्रज ॥३९॥

अथवाऽणुव्रतधरो भूत्वा शीलसंयमाभिरतः । देवगुरुभक्तियुक्तो दशमुख ! दुःखक्षयं कुरु ॥४०॥

अष्टादशभिर्दशानन ! युवतिसहस्राभि र्यस्त्वं तृप्तिम् । न गतोऽनङ्गमुढः स कथमेकया व्रजिष्यसि ? ॥४१॥

इह सकलजीवलोके विषयसुखं भुक्त्वा सुचिरकालम् । यदि कोपि गतस्तृप्तिं पुरुषस्तन्मे समुद्दिश ॥४२॥

तस्मादिदं महायश ! विषयसुखमल्पसुखबहुदुःखम् । वर्जय वर्जनीयं परमहिलासंगममेतत् ॥४३॥

बहुभटक्षयंकरेण देव ! न कार्यमनेन युद्धेन । बद्धाङ्जलिमुकुटाऽहं पतिताऽपि हु तव पादयोः ॥४४॥

हसित्वा भणति वीर उत्तिष्ठ कृशोदरि ! भयोद्वेगम् । मा गच्छ प्रसन्नाक्षि ! नाम्ना वासुदेवानाम् ॥४५॥

बलदेव-वासुदेवा भवन्ति बहव इह भरतवर्षे । तथापि च किं सञ्जायते सिद्धिः खलु नाममात्रेण ? ॥४६॥

रथनेपूरनगरपति र्यथेन्द्रोऽनिवृत्तिं मया नीतः । तथा चेदं कुर्वन्तं पश्य नारायणं शीघ्रम् ॥४७॥

भणित्वा वचनमेतत्समकं मन्दोदर्या दशवदनः । क्रीडागृहं प्रविष्टस्तावच्चास्तंगतः सूर्यः ॥४८॥

अस्ते दिनकरे सन्ध्यासमये समागते सति । मुकुलयन्ति कमलानि विरहश्चक्रवाकमिथुनानाम् ॥४९॥

जाते प्रदोष समये प्रज्वलिते रत्नदीपिका निवहे । लङ्कापुरी विभाति मेरोरिव चूलिकैव ॥५०॥

प्रेष्यते युवतिजनो विरच्यते मण्डनं प्रियतमानाम् । मोहनसुखं काङ्क्ष्यते मदिरैव पीयते प्रसन्ना ॥५१॥

---

२२. पुरओ मन्दो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का वि पियं वरजुवई, अवगूहेऊण भणइ चन्दमुही । अपि एक्कं पि य रत्तिं, माणेसु तुमे समं सामि ! ॥५२॥

अन्ना पुण महुमत्ता, वरकुसुमसुयन्धगन्धरिद्धिल्ला । पडिया पियस्स अङ्के, नवकिसलयकोमलसरीरा ॥५३॥

का वि य अपोढबुद्धी, बाला दइएण पाइया सीधुं । पोढत्तणं पवन्ना, तक्खणमेत्तेण चडुकम्मं ॥५४॥

जह जह वलग्गइ मओ, जुवईणं [1] मयणमूढहिययाणं । तह तह वड्ढइ राओ, लज्जा दूरं समोसरइ ॥५५॥

अणुदियहजणियमाणा, पभाइए जाणिऊण संगामं । घणविरहभीयहियया, अवगूहइ पिययमं धणियं ॥५६॥

विज्जाहरमिहुणाइं, कीलन्ति घरे घरे जहिच्छाए । उत्तरकुरूसु नज्जइ, वड्ढियनेहाणुरागाइं ॥५७॥

वीणाइ-वंस-तिसरिय-नाणाविहगीय-वाइयरवेणं, । जंपइ व महानयरी, जणेण उल्लावमन्तेणं ॥५८॥

तम्बोल-फुल्ल-गन्धाइएसु देहाणुलेवणसएसु । एव विणिओयपरमो, लोगो मयणुस्सवे तइया ॥५९॥

लङ्काहिवो वि एत्तो, निययं अन्तेउरं निरवसेसं । सम्माणेइ महप्पा, अहियं मन्दोयरी देवी ॥६०॥

एवं सुहेण रयणी, वोलीणा आगयाऽरुणच्छाया । संगीय-तूरसद्दो, भवणे भवणे पवित्थरिओ ॥६१॥

ताव य चक्कायारो, दिवसयरो उग्गओ कमलबन्धू । कह कह वि पणइणिजणं, संथाविय दहमुहो भणइ ॥६२॥

सन्नाहसमरभेरी, पहणह तूराइं मेहघोसाइं । रणपरिहत्थुच्छाहा, होह भडा ! मा चिरावेह ॥६३॥

तस्स वयणेण सिग्घं, नरेहि पहया तओ महाभेरी । सद्देण तेण सुहडा, सन्नद्धा सयलबलसहिया ॥६४॥

काऽपि प्रियं वरयुवतिरालिङ्ग्य भणति चन्द्रमुखी । अप्येकमपि च रात्रिं मानयामि त्वया समं स्वामिन् ! ॥५२॥

अन्या पुनर्मुर्हुतमात्रा वरकुसुमसुगन्धगन्धर्द्धिः । पतिता प्रियस्याङ्के नवकिसलयकोमलशरीरा ॥५३॥

काऽपि चाप्रौढबुद्धी बाला दयितेन पायिता सीधुम् । प्रौढत्वं प्रपन्ना तत्क्षणमात्रेण चाटुकर्मणि ॥५४॥

यथा यथाऽवलग्यते मदो युवतीनां मदनमूढहृदयानाम् । तथा तथा वर्धते रागो लज्जा दूरं समपसरति ॥५५॥

अनुदिवसजनितमाना प्राभातिके ज्ञात्वा संग्रामम् । घनविरहभीतहृदयाऽऽलिङ्गति प्रियतममत्यन्तम् ॥५६॥

विद्याधरमिथुनानि क्रीडन्ति गृहे गृहे यथेच्छया । उत्तरुकरुषु ज्ञायते वर्धितस्नेहानुरागाणि ॥५७॥

वीणादि-वंश-त्रिसरित-नानाविधगीतवादितरवेण । जल्पतीव महानगरी जनेनोल्लापमता ॥५८॥

तम्बोल-फुल्लगन्धादिभि र्देहानुलेपनशतैः । एवं विनियोगपरमो लोको मदनोत्सवे तदा ॥५९॥

लङ्काधिपोऽपीतो निजकमन्तःपुरं निरवशेषम् । सम्मानयति महात्माऽधिकं मन्दोदरी देवीम् ॥६०॥

एवं सुखेन रजनी व्यतीताऽऽगताऽरुणच्छाया । संगीत-तूर्यशब्दो भवने भवने प्रविस्तृतः ॥६१॥

तावच्च चक्राकारो दिवसकर उद्गतः कमलबन्धुः । कथं कथमपि प्रणयिनिजनं संस्थाप्य दशमुखो भणति ॥६२॥

सन्नाहसमरभेरिं प्रघ्नत तूर्याणि मेघघोषाणि । रणदक्षोत्साहा भवत भटाः ! मा चिरायत ॥६३॥

तस्य वचनेन शीघ्रं नरैः प्रहता ततो महाभेरिः । शब्देन तेन सुभटाः सन्नद्धाः सकलबलसहिताः ॥६४॥

---

१. विरहभीयहिययाणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मारीची विमलाभो, विमलघणो नन्दणो सुणन्दो य । सुहडो य विमलचन्दो, अन्ने वि य एवमाईया ॥६५॥
तुरएसु रहवरेसु य, पव्वयसरिसेसु मत्तहत्थीसु । सरह-खर-केसरीसु य, वराह-महिसेसु आरूढा ॥६६॥
असि-कणय-चाव-खेडय-वसुनन्दय-चक्क-तोमरविहत्था । धय-छत्तबद्धचिन्धा, असुरा इव दप्पियाडोवा ॥६७॥
निप्फिडिऊण पवत्ता, सुहडा लङ्कापुरीए रणसूरा । ऊसियसियायवत्ता, संपेल्लोपेल्ल कुणमाणा ॥६८॥
बहुतूरनिणादेणं, हयहेसिय गज्जिएण हत्थीणं । फुट्टइ व अम्बरतलं, विमुक्कपाइक्कनाएणं ॥६९॥
अह ते रक्खससुहडा, सन्नद्धा रयणमउडकयसोहा । वच्चन्ता गयणयले, छज्जन्ति घणा इव सविज्जू ॥७०॥

महाभडा कवइयदेहभूसणा, समन्तओ तुरय-गइन्दसङ्कुला ।
सहाउहा दिणयरतेयसन्निहा, विणिग्गया विमलजसाहिलासिणो ॥७१॥

॥ इय पउमचरिए उज्जोयविहाणं नाम सत्तरं पव्वं समत्तं ॥

मारीची विमलाभो विमलघनो नन्दनः सुनन्दश्च । सुभटश्च विमलचन्द्रोऽन्येऽपि चैवमादयः ॥६५॥
तुरगेषु रथवरेषु च पर्वतसदृक्षु महाहस्तिषु । शरभ-खर-केसरिषु च वराह-महिषेष्वारुढाः ॥६६॥
असि-कनक-चाप-खेटक-वसुनन्दक-चक्र-तोमरविहस्ताः । ध्वज-छत्रबद्धचिह्ना असुरा इव दर्पिताटोपाः ॥६७॥
निष्फेटयितुं प्रवृत्ताः सुभटा लङ्कापूर्या रणशूराः । उश्छ्रितश्वेतातपत्राः संपीडोत्पीडं क्रीयमाणाः ॥६८॥
बहु तूर्यनिनादेन हयह्रेषितेन गर्जितेन हस्तीनाम् । स्फुटतीवाम्बरतलं विमुक्तपादातिनादेन ॥६९॥
अथ ते राक्षसुभटाः सन्नद्धा रत्नमुकुटशोभाः । व्रजन्तो गगनतले छाद्यन्ते घना इव सविद्युतः ॥७०॥

महाभटाः कवचितदेहभूषणाः समन्ततस्तुरगगजेन्द्रसंकुलाः ।
सहायुधा दिनकरतेजः संनिभा विनिर्गता विमलयशोऽभिलाषिणः ॥७१॥

॥ इति पद्मचरिते उद्योगविधानं नाम सप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७१. लक्खण-रावणजुज्झपव्वं

अह सो रक्खसनाहो, कमेण आपुच्छिऊण धरिणीओ । कोहं समुव्वहन्तो, विणिग्गओ नियरनयरीओ ॥१॥
इन्दं नाम रहं सो, पेच्छइ बहुरूविणीए निम्मवियं । विविहाउहाण पुण्णं, दन्तिसहस्सेण संजुत्तं ॥२॥
अह ते मत्तगइन्दा, एरावणसन्निभा चउविसाणा । गेरुयकयङ्गराया, घण्टासु य कलयलारावा ॥३॥
अह सो महारहं तं, आरूढो केउमण्डणाडोवं । आहरणभूसियङ्गो, इन्दो इव रिद्धिसंपन्नो ॥४॥
तस्स विलग्गस्स रहे, समूसियं चन्दमण्डलं छत्तं । गोखीर-हारधवलं च उद्धुयं चामराजुयलं ॥५॥
पडुपडह-सङ्ख-काहल-मुइङ्ग-तिलमा-गहीरपणवाणं । पहयं पहाणतूरं, पलयमहामेहनिग्घोसं ॥६॥
अप्पसरिसेहि समयं, दसहि सहस्सेहि खेयरभडाणं । सुरसरिसविक्कमाणं, रणकण्डू[१] उव्वहन्ताणं ॥७॥
एयन्तरम्मि पउमो, पुच्छइ सुहडा सुसेणमाईया । भो भो ! कहेइ एसो, दीसइ कवणो नगरवरिन्दो ? ॥८॥
अलिउलतमालनीलो, जम्बूनयविविहसिहरसंघाओ । चच्चलतडिच्छडालो, नज्जइ मेहाण संघाओ ॥९॥
तो भणइ जम्बुवन्तो, सामिय ! बहुरूविणीए विज्जाए । सेलो कओ महन्तो, दीसइ लङ्काहिवो एसो ॥१०॥
जम्बूणयस्स वयणं, सोऊणं भणइ लक्खणो एत्तो । आणेह गरुडकेउं, महारहं मा चिरावेह ॥११॥

७१. लक्ष्मण रावण युद्ध पर्वम्

अथ स राक्षसनाथः क्रमेणापृच्छ्य गृहिणीः । क्रोधं समुद्वहन् विनिर्गतो निजनगर्याः ॥१॥
इन्द्रं नाम रथं स पश्यति बहुरुपिण्या निर्मापितम् । विविधायुधानां पूर्णं दन्तिसहस्रेण संयुक्तम् ॥२॥
अथ ते मत्तगजेन्द्रा ऐरावणसन्निभाश्चतुर्विषाणाः । गेरुककृताङ्गरागाः घण्टाभिश्च कलकलारावाः ॥३॥
अथ स महारथं तमारुढः केतुमण्डनाटोपम् । आभरणभूषिताङ्ग इन्द्र इवर्द्धिसंपन्नः ॥४॥
तस्य विलग्नस्य रथे समुच्छ्रितं चन्द्रमण्डलं छत्रम् । गोक्षीर-हारधवलं चोद्धृतं चामरयुगलम् ॥५॥
पटुपटहशङ्खकाहलमृदङ्गतिलमागभीरपणवानाम् । प्रहतं प्रधानतूर्यं प्रलयमहामेघनिर्घोषम् ॥६॥
आत्मसदृशैः समकं दशभिः सहस्रैः खेचरभटानाम् । सुरसदृशविक्रमाणां रणकण्डूमुद्वहताम् ॥७॥
एतदन्तरे पद्मःपृच्छति सुभटान् सुषेणादीन् । भो भो ! कथयतैष दृश्यते को नगवरेन्द्रः ? ॥८॥
अलिकुलतमालनीलो जम्बूनदविविधशिखरसंघातः । चञ्चलतडिच्छटालो ज्ञायते मेघानां संघातः ॥९॥
तदा भणति जम्बुवान् स्वामिन् ! बहुरुपिण्या विद्यया । शैलः कृतो महान् दृश्यते लङ्काधिप एषः ॥१०॥
जम्बूनदस्य वचनं श्रुत्वा भणति लक्ष्मण इतः । आनय गरुडकेतुं महारथं मा चिरायत ॥११॥

---

१. कण्डुं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह तत्थ महाभेरी, समाहयाऽणेयतूरसमसहिया । सद्देण तीए सिग्घं, सन्नद्धा कइवरा सव्वे ॥१२॥
असि-कणय-चक्क-तोमर-नाणाविहपहरणा-ऽऽवरणहत्था । रुम्भन्ति पवयजोहा, रणपरिहत्था सकन्ताहिं ॥१३॥
सुमहुरवयणेहि तओ, संथाविय कइवरा पणइणीओ । सन्नद्धाउहपमुहा, पउमसयासं समल्लीणा ॥१४॥
रामो रहं विलग्गो, केसरिजुत्तं निबद्धतोणीरं । लच्छीहरो वि एवं, आरूढो सन्दणं गरुडं ॥१५॥
भामण्डलमाईया, अन्ने वि महाभडा कवइयङ्गा । रह-गय-तुरयारूढा, संगामसमुज्जया जाया ॥१६॥
एवं कइबलसहिया, सन्नद्धा पउमनाह-सोमित्ती । सेणिय ! विणिग्गया ते, जुज्झत्थे वाहणारूढा ॥१७॥
जन्ताण ताण सउणा, महुरं चिय वाहरन्ति सुपसत्थं । साहन्ति निच्छएणं, पराजयं चेव आणन्दं ॥१८॥
दट्ठूण सत्तुसेन्नं, एज्जन्तं रावणो तओ रुट्ठो । नियबलेण समग्गो, वाहेइ रहं सवडहुत्तं ॥१९॥
गन्धव्व-किन्नरगणा, अच्छरसाओ नहङ्गणत्थाओ । मुञ्चन्ति कुसुमवासं, दोसु वि सेन्नेसु सुहडाणं ॥२०॥
वियडफर-फलय-खेडय-वसु-नन्दयगोविएसु अङ्गेसु । पविसन्ति समरभूमिं, चलदिट्ठी पढमपाइक्का ॥२१॥
आसेसु कुञ्जरेसु य, केवि भडा रहवरेसु आरूढा । नाणाउहगहियकरा, आभिट्टा सहरिसुच्छाहा ॥२२॥
सर-झसर-सत्ति-सव्वल-फलिहसिला-सेल-मोग्गरसयाइं । वरसुहडघत्तियाइं, पडन्ति जोहे वहन्ताइं ॥२३॥
खग्गेहि केइ सुहडा, संगामे वावरन्ति चलहत्था । अन्ने य गयपहारं, देन्ति समत्थाण जोहाणं ॥२४॥
सीसगहिएक्कमेक्का, अन्ने छुरियापहारजज्जरिया । दप्पेण समं जीयं, मुयन्ति देहं च महिवट्ठे ॥२५॥
खज्जन्ति धरणिपडिया, वायस-गोमाउ-गिद्धनिवहेणं । ओयड्ढियन्तरुण्डा, रुहिर-वसाकद्दमनिबुड्डा ॥२६॥

अथ तत्र महाभेरी समाहताऽनेकतूर्यसमसहिता । शब्देन तस्याः शीघ्रं सन्नद्धाः कपिवराः सर्वे ॥१२॥
असिकनकचक्रतोमरनानाविधप्रहरणाऽऽवरणहस्ताः । रुध्यन्ते प्लवङ्गयोधा रणदक्षाः स्वकान्ताभिः ॥१३॥
सुमधुरवचनैस्तदा संस्थाप्य कपिवराः प्रणयिन्यः । सन्नद्धायुधप्रमुखाः पद्मसकाशं समालीनाः ॥१४॥
रामो रथं विलग्नः केसरीयुक्तं निबद्धतोणीरम् । लक्ष्मीधरोऽपि एवमारुढः स्यन्दनं गरुडम् ॥१५॥
भामण्डलादयोऽन्येऽपि महाभटाः कवचिताङ्गाः । रथ-गज-तुरगारुढाः संग्रामसमुद्यता जाताः ॥१६॥
एवं कपिबलसहितौ सन्नद्धौ पद्मनाभसौमित्री । श्रेणिक ! विनिर्गतास्ते युद्धार्थे वाहनारुढाः ॥१७॥
यातां तेषां शकुना मधुरमेव व्याहरन्ति सुप्रशस्तम् । कथयन्ति निश्चयेन पराजयं चैवानन्दम् ॥१८॥
दृष्ट्वा शत्रुसैन्यमायान्तं रावणस्ततो रुष्टः । निजबलेन समग्रो वाहयति रथमभिमुखम् ॥१९॥
गांधर्व किन्नरगणा अप्सरसो नभोऽङ्गणस्थाः । मुञ्चन्ति कुसुमवर्षं द्वयो रपि सैन्ययोः सुभटानाम् ॥२०॥
विकटफर-फलक-खेटक-वसुननन्दगोपितेष्वङ्गेषु । प्रविशन्ति समरभूमिं चलदृष्टयः प्रथमपादातयः ॥२१॥
अश्वेषु कुञ्जरेषु च केऽपि भटा रथवरेष्वारुढाः । नानायुधगृहीतकराः प्रवृत्ताः सहर्षोत्साहाः ॥२२॥
शर-झसर-शक्ति-सर्वल-स्फटिकशिला-शैल-मुद्गरशतानि । वरसुभटक्षिप्तानि पतन्ति योधान्वहन्तानि ॥२३॥
खड्गैः केऽपि सुभटाः संग्रामे व्यापारयन्ति चलहस्ताः । अन्ये च गदाप्रहारं ददति समर्थानां योधानाम् ॥२४॥
शीर्षगृहीतमेकमेका अन्ये छूरिकाप्रहारजर्जरिताः । दर्पेण समं जीवितं मुञ्चन्ति देहं च महिपृष्टे ॥२५॥
खाद्यन्ते धरणिपतिता वायस-गोमायु-गृध्रनिवहेन । आकृष्यतरुण्डा रुधिर-वसाकर्दमनिब्रुडाः ॥२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हत्थी हत्थीण समं, जुज्झइ रहिओ समं रहत्थेणं । तुरयवलग्गोसुहडो, तुरयारूढं विवाएइ ॥२७॥
असि-कणय-चक्क-तोमर-अन्नोन्नावडियसत्थघायग्गी । अह तक्खणम्मि जाओ, संगामो सुहडदुव्विसहो ॥२८॥
उम्मेण्ठा मत्तगया, भमन्ति तुरयाऽऽसवारपरिमुक्का । भज्जन्ति सन्दणवरा, छिज्जन्ति धया कणयदण्डा ॥२९॥
खणखणखण त्ति सद्दो, कत्थइ खग्गाण आवडन्ताणं । विसिहाण तडतडरवो, निवडन्ताणं गयङ्गेसु ॥३०॥
मणिकुण्डलुज्जलाइं, पडन्ति सीसाइं मउडचिन्धाइं । नच्चन्ति कबन्धाइं, रुहिरवसालित्तगत्ताइं ॥३१॥
अन्नो अन्नं पहणइ, अन्नो अन्नं भुयाबलुम्मत्तो । आयड्ढिऊण निहणइ, जोहा जोहं करी करिणो ॥३२॥
उभयबलेसु भडेहिं, उप्पयनिवयं रणे करेन्तेहिं । गयणङ्गणं निरुद्धं, पाउसकाले व्व मेहेहिं ॥३३॥
एयारिसम्मि जुज्झे, सुय-सारणमाइएसु सुहडेसु । मारीजीण य भग्गं, सेन्नं चिय वाणरभडाणं ॥३४॥
सिरिसेलेण बलेण य, भूयनिणाएण तह य नीलेणं । कुमुयाइवाणरेहि, भग्गं चिय रक्खसाणीयं ॥३५॥
सुन्दो कुम्भ निसुम्भो, विक्कम कमणो य जम्बुमाली य । मयरद्धओ य सूरो, असणिनिघायाइणो सुहडा ॥३६॥
एए रक्खसवसभा, नियबलुच्छाहकारणुज्जुत्ता । वाणरभडेहि समयं, जुज्झं काऊण आढत्ता ॥३७॥
भुयवरबलसम्मेया, वियडा कुडिलङ्गया सुसेणा य । चण्डुम्मियङ्गयाई, समुट्ठिया कइवरा एए ॥३८॥
रक्खस-कइद्धयाणं, जुज्झं अइदारुणं समावडियं । अन्नोन्नकरग्गाहं, घणसत्थपडन्तसंघायं ॥३९॥
एयन्तरम्मि हणुओ, गयवरजुत्तं रहं समारुहिउं । लोलेइ रक्खसबलं, पउमसरं चेव मत्तगओ ॥४०॥
एक्केण तेण सेणिय !, सूरेण महाबलं निसियराणं । गरुयपहाराभिहयं, भयजरगहियं कयं सव्वं ॥४१॥

हस्ती हस्तिना समं युध्यते रथिकः समंरथस्थेन । तुरगावलग्नसुभटस्तुरगारूढं विपादयति ॥२७॥
असिकनकचक्रतोमरान्योन्यापतितशस्त्रघाताग्निः । अथ तत्क्षणे जातः संग्रामः सुभटदुर्विसहः ॥२८॥
[1]उन्मेण्ठा मतगजा भ्रमन्ति तुरगा असवारपरिमुक्ताः । भज्यन्ते स्यन्दनवराश्छिद्यन्ते ध्वजाः कनकदण्डाः ॥२९॥
खणखणेति शब्दः कुत्रचित्खणानामापतताम् । विशिखानां तडतडरवो निपततां गजाङ्गेषु ॥३०॥
मणिकुण्डलोज्ज्वलानि पतन्ति शीर्षाणि मुकुटचिह्नानि । नृत्यन्ति कबन्धानि रुधिरवसालिप्तगात्राणि ॥३१॥
अन्योन्यं प्रहन्त्यन्योन्यं भुजाबलोन्मत्तः । आकृष्य निहन्ति योधा योधं करिणं करिणः ॥३२॥
उभयबलेषु भटैरुत्पन्निपतनं रणे कुर्वद्भिः । गगनाङ्गणं निरुद्धं प्रावृट्काल इव मेघैः ॥३३॥
एतादृशे युद्धे शुक-सारणादिभिः सुभटैः । मारीचिणा च भग्नं सैन्यमेव वानरभटानाम् ॥३४॥
श्रीशैलेन बलेन च भूतनिनादेन तथा च नीलेन । कुमुदादिवानरै र्भग्नमेव राक्षसानीकम् ॥३५॥
सुन्दः कुम्भो निशुम्भो विक्रमः क्रमणश्च जम्बूमाली च । मकरध्वजश्चशूरोऽशनिनिघातादयः सुभटाः ॥३६॥
एते राक्षसवृषभा निजबलोत्साहकारणोद्यताः । वानरभटैः समकं युद्धं कर्तुमारब्धाः ॥३७॥
भुजवरबलसम्मेता विकटाः कुटिलाङ्गदाः सुषेणाश्च । चण्डोर्म्यङ्गदादयः समुत्थिताः कपिवरा एते ॥३८॥
राक्षस-कपिध्वजानां युद्धमतिदारुणं समापतितम् । अन्योन्यकरग्राहं घनशस्त्रपतत्संघातम् ॥३९॥
एतदन्तरे हनुमान् गजवरयुक्तं रथं समारुह्य । लोलयति राक्षसबलं पद्मसर एव मत्तगजः ॥४०॥
एकेन तेन श्रेणिक ! शूरेण महाबलं निशिचराणाम् । गुरुकप्रहाराभिहतं भयज्वरगृहीतं कृतं सर्वम् ॥४१॥

---

१. मेण्ठ - महावत (हस्तिपकः)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं पेच्छिऊण सेनं, भयविहलविसंठुलं मओ रुट्ठो । हणुयस्स समावडिओ, मुञ्चन्तो आउहसयाइं ॥४२॥
सिरिसेलेण वि सिग्घं, आयण्णाऊरिएसु बाणेसु । कञ्चणरहो विचित्तो, तुङ्गो मयसन्तिओ भग्गो ॥४३॥
अन्नं रहं विलग्गो, मयराया जुज्झिउं समाढत्तो । सो वि य सिरिसेलेणं, भग्गो निसियद्धयन्देहिं ॥४४॥
विरहं दट्ठूण मयं, दसाणणोऽणेयरूवविज्जाए । सिग्घं विणिम्मिय रहं, ससुरस्स तओ समप्पेइ ॥४५॥
सो तत्थ सन्दणवरे, आरुहिऊणं मओ सरसएहिं । विरहं करेइ हणुयं, तक्खणमेत्तेण आरुट्ठो ॥४६॥
आलोइऊण हणुयं, विरहं अह धाइओ जणयपुत्तो । तस्स वि य सन्दणवरो, मएण भग्गो सरवरेहिं ॥४७॥
सयमेव वाणरवई, समुट्ठिओ तस्स रोसपज्जलिओ । सो वि मएण निरत्थो, कओ य धरणीयले पडिओ ॥४८॥
एत्तो मएण समयं, बिहीसणो जुज्झिउं समाढत्तो । छिन्नकवया-ऽऽयवत्तो, कओ य बाणाहयसरीरो ॥४९॥
पयलन्तरुहिरदेहं, बिहीसणं पेच्छिऊण पउमाभो । केसरिरहं विलग्गो, छाएइ मयं सरसएहिं ॥५०॥
रामसरनियरघत्थं, भयविहलविसंठुलं मयं दट्ठुं । सयमेव रक्खसवई, समुट्ठिओ कोहपज्जलिओ ॥५१॥
सो लक्खणेण दिट्ठो, भणिओ रे दुट्ठ ! मज्झ पुरहुत्तो । ठा-ठाहि पाव तक्कर !, जा ते जीयं पणासेमि ॥५२॥
अह भणइ लक्खणं सो, किं ते हं रावणो असुयपुव्वो । निस्सेसपुहइनाहो, उत्तमदिव्वारुहो लोए ? ॥५३॥
अज्ज वि मुञ्चसु सीयं, अहवा चिन्तेहि नियहियएणं । किं रासहस्स सोहइ, देहे रइया विजयघण्टा ? ॥५४॥
देवा-ऽसुरलद्धजसो, अहयं तेलोक्कपायडपयावो । सह भूमिगोयरेणं, अहियं लज्जामि जुज्झन्तो ॥५५॥
जइ वा करेहि जुज्झं, निव्विण्णो नियजीवियव्वेणं । तो ठाहि सवडहुत्तो, विसहसु मह सन्तियं पहरं ॥५६॥

तं दृष्ट्वा सैन्यं भयविह्वलविसंस्थूलं मयो रुष्टः । हनुमतः समापतितो मुञ्चन्नायुधशतानि ॥४२॥
श्रीशैलेनापि शीघ्रमाकर्णापूरितै र्बाणैः । कञ्चनरथो विचित्रस्तुङ्गो मयसत्को भग्नः ॥४३॥
अन्यं रथं विलग्नो मयराजा योद्धुं समारब्धः । सोऽपि च श्रीशैलेन भग्नो निशितार्द्धचन्द्रैः ॥४४॥
विरथं दृष्ट्वा मयं दशाननोऽनेक रुपविद्यया । शीघ्रं विनिर्मितं रथं श्वसुरस्य ततः समर्प्यति ॥४५॥
स तत्र स्यन्दनवरे आरुह्य मयः शरशतैः । विरथं करोति हनुमन्तं तत्क्षणमात्रेणारुष्टः ॥४६॥
आलोक्य हनुमन्तं विरथमथ धावितो जनकपुत्रः । तस्यापि च स्यन्दनवरो मयेन भग्नः शरवरैः ॥४७॥
स्वयमेव वानरपतिः समुत्थितस्तस्य रोषप्रज्वलितः । सोऽपि मयेन निरस्त्रः कृतश्च धरणितले पतितः ॥४८॥
हतो मयेन समकं बिभीषणो योद्धुं समारब्धः । छिन्नकवचाऽऽतपत्रः कृतश्च बाणाहत शरीरः ॥४९॥
प्रगलद्रुधिरदेहं बिभीषणं दृष्ट्वा पद्माभः । केसरिरथं विलग्नश्च्छादयति मंय शरशतैः ॥५०॥
रामशरनिकरग्रस्त भयविह्वलविसंस्थूलं मयं दृष्ट्वा । स्वयमेव राक्षसपतिः समुत्थितः क्रोधप्रज्वलितः ॥५१॥
स लक्ष्मणेन दृष्टो भणितो रे दुष्ट ! ममाभिमुखः । ति-तिष्ठ पाप तस्कर ! यावत्ते जीवितं प्रणाशयामि ॥५२॥
अथ भणति लक्ष्मणं स किं त्वयाहं रावणोऽश्रुतपूर्वः । निःशेषपृथिवीनाथ उत्तमदिव्यार्हो लोके ? ॥५३॥
अद्यापि मुञ्च सीतामथवा चिन्तय निजहृदयेन । किं रासभस्य शोभते देहे रचिता विजयघण्टा ? ॥५४॥
देवाऽसुरलब्धयशा अहं त्रैलोक्यप्रकटप्रतापः । सह भूमिगोचरेणाधिकं लज्जे युध्यमानः ॥५५॥
यदि वा करिष्यषि युद्धं निर्विण्णो निजजीवितव्येन । तदा तिष्ठाभिमुखो विसहस्व मम सत्कं प्रहारम् ॥५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो भणइ लच्छिनिलओ, जाणामि पहुत्तणं तुमं सव्वं । नासेमि अज्ज सिग्घं, एयं ते गज्जियं गरुयं ॥५७॥
एवं भणिउं सरोसो, चावं घेत्तूण बाणनिवहेणं । छाएऊण पवत्तो, तुङ्गं पिव पाउसे मेहो ॥५८॥
जमदण्डसन्निहेहिं, सरेहि लच्छीहरो गयणमग्गे । बलपरिहत्थुच्छाहो, दहमुहबाणे निवारेइ ॥५९॥
दसरहपुत्तेण कओ, रयणासवनन्दणो वियलियत्थो । ताहे मुयइ दणुवई, आरुट्ठो वारुणं अत्थं ॥६०॥
तं लक्खणो खणेणं, नासेइ समीरणत्थजोएणं । मुञ्चइ लङ्काहिवई, अग्गेयं दारुणं अत्थं ॥६१॥
जालासहस्सपउरं, दहमाणं तं पि लच्छिनिलएणं । धारासरेहि सिग्घं, विज्झवियं वारुणत्थेणं ॥६२॥
अह तस्स रक्खसत्थं, विसज्जियं रावणेण अइघोरं । धम्मत्थेण पणासइ, तं दसरहनन्दणो सिग्घं ॥६३॥
लच्छीहरेण सेणिय !, विसज्जियं इन्धणं महासत्थं । पडिइन्धणेण नीयं, दिसोदिसिं रक्खसिन्देणं ॥६४॥
अह रावणेण सिग्घं, तमनिवहत्थन्धन्धियदिसोहं । विमलं करेइ तं पि य, दिवायरत्थेण सोमित्ती ॥६५॥
फणिमणिकिरणुज्जलियं, उरगत्थं रावणेण विक्खित्तं । तं लक्खणेण नीयं, दूरं गरुडत्थजोएणं ॥६६॥
मुञ्चइ विणायगत्थं, रक्खसणाहस्स लक्खणो समरे । तं वारेइ महप्पा, तिकूडसामी महत्थेणं ॥६७॥
भग्गे विणायगत्थे, सरेहि लच्छीहरो तिकूडवई[1] । छाएइ सेन्नसहियं, सो विय तं बाणवरिसेणं ॥६८॥

संगामसूरा जणियाहिमाणा, जुज्झन्ति अन्नोन्नजयत्थचित्ता ।
घोरा नरा नेव गणन्ति सत्थं, न मारुयग्गिं विमलं पि भाणुं ॥६९॥

॥ इय पउमचरिए लक्खण-रावणजुज्झं नाम एगसत्तरं पव्वं समत्तं ।

तदाभणति लक्ष्मीनिलयो जानामि प्रभुत्वं तव सर्वम् । नाशयाम्यद्य शीघ्रमेतत्ते गर्जितं गुरुकम् ॥५७॥
एवं भणित्वा सरोषश्चापं गृहीत्वा बाणनिवहेन । छादयित्वा प्रवृत्तस्तुङ्गमिव प्रावृषि मेघः ॥५८॥
यमदण्डसंनिभैःशरैर्लक्ष्मीधरो गगनमार्गे । बलदक्षोत्साहो दशमुखबाणान्निवारयति ॥५९॥
दशरथपुत्रेण कृतो रत्नश्रवोनन्दनो विगलितास्त्रः । तदा मुञ्चति दनुपतिरारुष्टो वारुणमस्त्रम् ॥६०॥
तं लक्ष्मणः क्षणेन नाशयति समीरणास्त्रयोगेन । मुञ्चति लङ्काधिपतिरग्नेयं दारुणमस्त्रम् ॥६१॥
ज्वालासहस्रप्रचूरं दह्यमानं तमपि लक्ष्मीनिलयेन । धाराशरैः शीघ्रं विध्मापितं वारुणास्त्रेण ॥६२॥
अथ तस्य राक्षसास्त्रं विसर्जितं रावणेनातिघोरम् । धर्मास्त्रेण प्रणाशयति तं दशरथनन्दनः शीघ्रम् ॥६३॥
लक्ष्मीधरेण श्रेणिक ! विसर्जितमिन्धनं महाशस्त्रम् । प्रतीन्धनेन नीतं दिशोदिशं राक्षसेन्द्रेण ॥६४॥
अथ रावणेन शीघ्रं तमोनिवहास्त्रान्धकारितदिग्गौधम् । विमलं करोति तमपि च दिवाकरास्त्रेण सौमित्रिः ॥६५॥
फणिमणिकिरणोज्वलितमुरगास्त्रं रावणेन विक्षिप्तम् । तं लक्ष्मणेन नीतं दूरं गरुडास्त्रयोगेन ॥६६॥
मुञ्चति विनायकास्त्रं राक्षसनाथस्य लक्ष्मणः समरे । तं वारयति महात्मा त्रिकूटस्वामी महास्त्रेण ॥६७॥
भग्ने विनायकास्त्रे शरै र्लक्ष्मीधरस्त्रिकूटपतिम् । छादयति सैन्यसहितं सोऽपि च तं बाणवर्षेण ॥६८॥
संग्रामशूरा जनिताभिमाना युध्यन्तेऽन्योन्यजयार्थचित्ताः । घोरा नरा नैव गणन्ति शस्त्रं न मारुताग्निं विमलमपि भानुम् ॥६९॥

॥ इति पद्मचरिते लक्ष्मण-रावणयुद्धं नामैकसप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. तिकूडवइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७२. चक्करयणुप्पत्तिपव्वं

खिन्नाण दिज्जइ जलं, तिसाभिभूयाण सीयलं सुरहिं। भत्तं च बहुवियप्पं, असणकिलन्ताण सुहडाणं ॥१॥
सिञ्चिन्ति चन्दणेणं, सुहडा वणवेयणापरिग्गहिया। आसासिज्जन्ति पुणो, देहुवगरणेसु बहुएसु ॥२॥
लङ्काहिवेण समयं, सोमित्तिसुयस्स वट्टए जुज्झं। विविहाउहविच्छड्डं, [1]विम्हयणिज्जं सुरवराणं ॥३॥
गन्धव्वकिन्नरगणा, अच्छरसहिया [2]नहट्ठिया ताणं। मुञ्चन्ति कुसुमवासं, साहुक्कारेण वामीस्सं ॥४॥
विज्जाहरस्स ताव य, दुहियाओ चन्दवद्धणस्स नहे। दिव्वविमाणत्थाओ, अट्ठ जणीओ सुरूवाओ ॥५॥
मयहरयपरिमियाओ, कन्नाओ अच्छरेहि भणियाओ। साहेइ कस्स तुम्हे, दुहियाओ इहं पवन्नाओ ? ॥६॥
साहन्ति ताण ताओ, अम्ह पिया चन्दवद्धणो नामं। वइदेहीसंवरणे, दुहियासहिओ गओ मिहिलं ॥७॥
सो लक्खणस्स अम्हे, दाऊणं पत्थिओ निययगेहं। तत्तो पभूइ एसो, हिययम्मि अवट्ठिओ निययं ॥८॥
सो एस महाघोरे संगामे संसयं समावन्नो। न य नज्जइ कह वि इमं, होइ दुहियाओ ? तेणऽम्हे ॥९॥
लच्छीहरस्स एत्थं, जा होही हिययवल्लहस्स गई। सा अम्हाण वि होही, नियमा अट्ठण्ह वि जणीणं ॥१०॥
सोऊण ताण सद्दं, उड्ढमुहो लक्खणो पलोएन्तो। भणिओ य बालियाहिं, सिद्धत्थो होहि कज्जेसु ॥११॥

---

७२. चक्ररत्नोत्पत्ति पर्वम्

खिन्नेभ्यो दीयते जलं तृषाभिभूतेभ्यः शीतलं सुरभिम्। भक्तं च बहुविकल्पमशनक्लान्तेभ्यः सुभटेभ्यः ॥१॥
सिञ्चन्ति चन्दनेन सुभटा व्रणवेदनापरिगृहीताः। आश्वास्यन्ते पुन र्देहोपकरणै र्बहुभिः ॥२॥
लङ्काधिपेन समकं सोमित्रिसुतस्य वर्तते युद्धम्। विविधायुधसमूहं विस्मयनीयं सुरवराणाम् ॥३॥
गान्धर्वकिन्नरगणा अप्सरसः सहिता नभस्थितास्ताभ्याम्। मुञ्चन्ति कुसुमवर्षां साधुकारेण व्यामिश्राम् ॥४॥
विद्याधरस्य तावच्च दुहितरश्चन्द्रवर्धनस्य नभसि। दिव्यविमानस्थाऽष्टौ जनयः सुरुपाः ॥५॥
महत्तरपरिमिताः कन्या अप्सरोभि र्भणिताः। कथयति कस्य यूयं दुहितर इह प्रपन्नाः ? ॥६॥
कथयन्ति तासां ता अस्माकं पिता चन्द्रवर्धनो नाम। वैदेहीस्वयंवरे दुहितृसहितो गतो मिथिलाम् ॥७॥
स लक्ष्मणायास्मान् दत्वा प्रस्थितो निजगृहम्। ततः प्रभृतिरेष हृदयेऽवस्थितो निजकम् ॥८॥
स एष महाघोरे संग्रामे संशयं समापन्नः। न च ज्ञायते कथमपीदं भविष्यति ? दुःखितास्तेन वयम् ॥९॥
लक्ष्मीधरस्यात्र या भविष्यति हृदयवल्लभस्य गतिः। साऽस्माकमपि भविष्यति नियमाऽष्टावपि जनीनाम् ॥१०॥
श्रुत्वा तासां शब्दमुर्ध्वमुखो लक्ष्मणः प्रलोकयन्। भणितश्च बालिकाभिः सिद्धार्थो भव कार्येषु ॥११॥

---

१. वियम्भणिज्जं-मु०। २. णहत्थिया-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण ताण सद्दं, ताहे संभरइ दहमुहो अत्थं। सिद्धत्थनामधेयं, घत्तइ लच्छीहरस्सुवरिं ॥१२॥

रामकणिट्ठेण तओ, तं विग्घविणायगत्थजोएणं। नीयं विहलपयावं, संगाममुहे अभीएणं ॥१३॥

जं जं मुञ्चइ अत्थं, तं तं छेत्तूण लक्खणो धीरो। छाएइ सरवरेहिं, [1]रवि व्व सयलं दिसायक्कं ॥१४॥

एत्थन्तरम्मि सेणिय !, बहुरूवा आगया महाविज्जा। लङ्काहिवस्स जाया, सन्निहिया तत्थ संगामे॥१५॥

अह लक्खणेण छिन्नं, सीसं लङ्काहिवस्स संभूयं। [2]छिन्नं पुणो पुणो च्चिय, उप्पज्जइ कुण्डलाभरणं ॥१६॥

छिन्नम्मि उत्तिमङ्गे, एक्के दो होन्ति उत्तमिङ्गाइं। उक्कत्तिएसु तेसु य, दुगुणा दुगुणा हवइ वुड्ढी ॥१७॥

छिन्नं च भुयाजुयलं, दोण्णि वि जुयलाइं होन्ति बाहाणं। छिन्नेसु तेसु वि पुणो, जायइ दुगुणा भुयावुड्ढी ॥१८॥

वरमउडमण्डिएहिं, सिरेहि छिन्नेहि नहयलं छन्नं। केऊरभूसियासु य, भुयासु एवं च सविसेसं ॥१९॥

असि-कणय-चक्क-तोमर-कुन्ताइअणेयसत्थसंघाए। मुञ्चइ रक्खसणाहो, बहुविहबाहासहस्सेहिं ॥२०॥

तं लक्खणो वि एन्तं, आउहनिवहं सरेहि छेत्तूणं। छाएऊण पवत्तो, पडिसत्तुं बाणनिवहेणं ॥२१॥

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य, चत्तारि य पञ्च दस सहस्साइं। लक्खं सिराण छिन्दइ, अरिस्स नारायणो सिग्घं ॥२२॥

निवडन्तएसु सहसा, वाहासहिएसु उत्तिमङ्गेसु। छन्नं चिय गयणयलं, रणभूमी चेव सविसेसं ॥२३॥

जं जं सिरं सबाहुं, उप्पज्जइ रावणस्स देहम्मि। तं तं सरेहि सव्वं, छिन्दइ लच्छीहरो सिग्घं ॥२४॥

रावणदेहुक्कत्तिय-पयलन्तुद्दामरुहिरविच्छड्डुं। जायं चिय गयणयलं, सहसा संझारुणच्छायं ॥२५॥

श्रुत्वा तासां शब्दं तदा स्मरति दशमुखोऽस्त्रम्। सिद्धार्थनामधेयं क्षिपति लक्ष्मीधरस्योपरि ॥१२॥

रामकनिष्ठेन ततस्तं विघ्नविनायकास्त्रयोगेन। नीतं विफलप्रतापं संग्राममुखे अभीतेन ॥१३॥

यद्यन्मुञ्चत्यस्त्रं तत्तच्छित्वा लक्ष्मणो धीरः। छादयति शरवरै रवि रिव सकलं दिक्कचक्रम् ॥१४॥

अत्रान्तरे श्रेणिक ! बहुरुपाऽऽगता महाविद्या। लङ्काधिपस्य जाता संनिहिता तत्र संग्रामे ॥१५॥

अथ लक्ष्मणेन छिन्नं शीर्षं लङ्काधिपस्य संभूतम्। छिन्नं पुनः पुनरेवोत्पद्यते कुण्डलाभरणम् ॥१६॥

छिन्न उत्तमाङ्गे एके द्वे भवत उत्तमाङ्गानि। उत्कर्तितेषु तेषु च द्विगुणा द्विगुणा भवति वृद्धिः ॥१७॥

छिन्नं च भुजायुगलं द्वे अपि युगले भवतो बाहायोः। छिन्नेषु तेष्वपि पुन र्जायति द्विगुणा भुजावृद्धिः ॥१८॥

वरमुकुटमण्डितैः शिरोभिश्छिन्नै र्नभस्तलं छन्नम्। केयूरभूषिताभिश्च भुजाभिरेवं च सविशेषम् ॥१९॥

असि-कनक-चक्र-तोमर-कुन्ताद्यनेकशस्त्रसंघातान्। मुञ्चति राक्षसनाथो बहुविधबाहासहस्रैः ॥२०॥

तं लक्ष्मणोऽप्यायान्तमायुधनिवहं शरैश्छित्त्वा। छादयितुं प्रवृत्तः प्रतिशत्रुं बाणनिवहेन ॥२१॥

एकं च द्वे त्रिणि च चत्वारि च पञ्च दश सहस्राणि। लक्षं शिरषां छिन्दन्ति अरे र्नारायणः शीघ्रम् ॥२२॥

निपतत्सु सहसा बाहासहितेषूत्तमाङ्गेषु। छन्नमेव गगनतलं रणभूमिरेव सविशेषम् ॥२३॥

यद्यच्छिरः सबाहुमुत्पद्यते रावणस्य देहे। तत्तच्छरैः सर्वं छिन्दति लक्ष्मीधरः शीघ्रम् ॥२४॥

रावणदेहोत्कर्त्तितः प्रगलदुद्दामरुधिरसमूहम्। जातमेवगगनतलं सहसा सन्ध्यारुणच्छायम् ॥२५॥

---

१. रिवुसिन्नं नं दिसा०-प्रत्य०। २. पुणरवि अन्नं सीसं विज्जाए तक्खणं चेव-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पयलन्तसेयनिवहो, जणियमहायासदीहनीसासो । चिन्तेइ सेणिय ! तओ, चक्कं लङ्काहिवो रुट्ठो ॥२६॥

वेरुलियसहस्सारं, मोत्तियमालाउलं रयणचित्तं । चन्दणकयचच्चिक्कं, समच्चियं सुरभिकुसुमेहिं ॥२७॥

सरयरविसरिसतेयं, पलयमहामेहसरिसनिग्घोसं । चिन्तियमेत्तं चक्कं, सन्निहियं रावणस्स करे ॥२८॥

किन्नर-किंपुरिसगणा, विस्सावसु-नारया सहऽच्छरसा । मोत्तूण समरपेक्खं, भएण दूरं समोसरिया ॥२९॥

तं चक्करयणहत्थं, दसाणणं भणइ लक्खणो धीरो । जइ कावि अत्थि सत्ती, पहरसु मा णे चिरावेसु[1] ॥३०॥

सो एव भणियमेत्तो, [2]रुट्ठो तं भाणिऊण मणवेगं । मुञ्चइ पलयक्कणिहं जणसंसयकारणं चक्कं ॥३१॥

दट्ठूण य एज्जन्तं, चक्कं सवडम्मुहं घणनिणायं । आढत्तो सोमित्ती, वारेउं तं सरोहेणं ॥३२॥

वज्जावत्तेण य नंगलेण पउमो निवारणुज्जुत्तो । सुग्गीवो वि[3] गयाए, पहणइ भामण्डलो असिणा ॥३३॥

वारेऊण पवत्तो, सूलेण विहीसणो महन्तेणं । हणुओ वि मोग्गरेणं, सुग्गीवसुओ कुठारेणं ॥३४॥

सेसा वि सेसपहरण-सएसु समजोहिउं समाढत्ता । तह वि य निवारिउं ते, असमत्था वाणरा सव्वे ॥३५॥

तं आउहाण निवहं, भन्तूण समागयं महाचक्कं । सणियं पयाहिणेउं, अहिट्ठियं लक्खणस्स करे ॥३६॥

[4]परे भवे सुकयफलेण माणवा, महिड्ढिया इह बहुसोक्खभायणा ।
महारणे जयसिरिलद्धसंपया, ससी जहा विमलपयावपायडा ॥३७॥

॥ इइ पउमचरिए चक्करयणुप्पत्ती नाम बावत्तरं पव्वं समत्तं ॥

प्रगलत्स्वेदनिवहो जनितमहायासदीर्घनिःश्वासः । चिन्तयति श्रेणिक ! ततश्चक्रं लङ्काधिपो रुष्टः ॥२६॥

वैडूर्यसस्त्रारं मौक्तिकमालाकूलं रत्नचित्रम् । चन्दनकृतचर्चिकं समर्चितं सुरभिकुसुमैः ॥२७॥

शरदरविसदृशतेजः प्रलयमहामेघसदृशनिर्घोषम् । चिन्तितमात्रं चक्रं संनिहितं रावणस्य करे ॥२८॥

किंनर-किंपुरुषगणा विश्वावसु-नारदाः सहाप्सरसः । मुक्त्वा समरप्रेक्षं भयेन दूरं समवसृताः ॥२९॥

तं चक्ररत्नहस्तं दशाननं भणति लक्ष्मणो धीरः । याऽपि काऽपि अस्ति शक्तिः प्रहर मा चिराय ॥३०॥

स एवं भणितमात्रो रुष्टस्तद्भ्रामयित्वा मनोवेगम् । मुञ्चति प्रलयार्कनिभं जनसंशयकारणं चक्रम् ॥३१॥

दृष्ट्वा चायान्तं चक्रमभिमुखं घननिनादम् । आरब्धः सौमित्रि र्वारयितुं तं शरौधेन ॥३२॥

वज्रावर्तेन च नंगलेन पद्मो निवारणोद्युक्तः । सुग्रीवोऽपि गदया प्रहन्ति भामण्डलोऽसिना ॥३३॥

वारयितुं प्रवृत्तः शूलेन बिभीषणो महता । हनुमानपि मुद्गरेण सुग्रीवसुतः कुठारेण ॥३४॥

शेषा अपि शेषप्रहरणशतै समयोधितुं समारब्धाः । तथापि च निवारयितुं ते ऽसमर्था वानराः सर्वे ॥३५॥

तमायुधानां निवहं भङ्क्त्वा समागतं महाचक्रम् । शनैः प्रदक्षिण्याधिष्ठितं लक्ष्मणस्य करे ॥३६॥

परस्मिन् भवे सुकृतफलेन मानवा महर्द्धिका इह बहुसुखभाजनाः । महारणे जयश्रीलब्धसंपदः शशिनो यथा विमल प्रतापप्रकट्याः ॥३७॥

॥ इति पद्मचरिते चक्ररत्नोत्पत्ति नाम द्वासप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. चिरावेह-प्रत्य० । २. कुद्धो तं-प्र० । ३. य-प्रत्य० । ४. परभवसुक्कय-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७३. दहवयणवहविहाणपव्वं

उप्पन्नचक्करयणं, दट्ठूणं लक्खणं पवयजोहा । अहिणन्दिया समत्था, भणन्ति [1]एक्केक्कमेक्केणं ॥१॥

एयं तं फुडवियडं, अणन्तविरिएण जं पुरा भणियं । जायं संपइ सव्वं, कज्जं बल-केसवाणं तु ॥२॥

जो एस चक्कपाणी, सो वि य नारायणो समुपन्नो । सीहरहम्मि विलग्गो एष पुण होइ बलदेवो ॥३॥

एए महाणुभावा, भारहवासम्मि राम-सोमित्ती । बलदेव-वासुदेवा, उप्पन्ना अट्ठमा नियमा ॥४॥

दट्ठूण चक्कपाणिं, सोमित्ती रावणो विचिन्तेइ । तं संपइ संपन्नं, अणन्तविरिएण जं भणियं ॥५॥

दट्ठूण आयवत्तं, जस्स रणे सयलगयघडाडोवा । भज्जन्ति खेयरभडा, भयविहलविसंठुला सत्तू ॥६॥

सायरसलिलसमत्था, हिमगिरिविञ्झत्थली पुहइनारी । आणापणामकारी, दासि व्व महं वसे आसि ॥७॥

सो हं मणुएण कहं, जिणिऊणाऽऽलोइओ दसग्गीवो ? । वट्टइ इमा अवत्था, किं न हु अच्छेरयं एयं ? ॥८॥

धिद्धि ! त्ति रायलच्छी, अदीहपेही मुहुत्तरमणिज्जा । परिचइऊणाऽऽढत्ता, एक्कपए दुज्जणसहावा ॥९॥

किंपागफलसरिच्छा, भोगा पच्छा हवन्ति विसकडुया । बहुदुक्खदोग्गइकरा, साहूणं गरहिया निच्चं ॥१०॥

भरहाइमहापुरिसा, धन्ना जे उज्झिऊण रायसिरिं । निक्खन्ता चरिय तवं, सिवसमयमणुत्तरं पत्ता ॥११॥

---

७३. दशवदनवधविधान पर्वम्

उत्पन्नचक्ररत्नं दृष्ट्वा लक्ष्मणं प्लवङ्गयोधाः । अभिनन्दिताः समस्ता भणन्त्येकैकमेकैकेन ॥१॥

एतत्तत्स्फुटविकटमनन्तवीर्येण यत्पुरा भणितम् । ज्ञातं संप्रति सर्वं कार्यं बल-केशवयोस्तु ॥२॥

य एष चक्रपाणिः सोऽपि च नारायणः समुत्पन्नः । सिंहरथे विलग्न एष पुन र्भवति बलदेवः ॥३॥

एतौमहानुभावौ भारतवर्षे राम-सौमित्री । बलदेव-वासुदेवावुत्पन्नावष्टमौ नियमा ॥४॥

दृष्ट्वा चक्रपाणिं सौमित्रिं रावणो विचिन्तयति । तत्संप्रति संपन्नमनन्तवीर्येण यद्भणितम् ॥५॥

दृष्ट्वाऽऽतपत्रं यस्य रणे सकलगजघटाटोपाः । भज्यन्ति खेचरभटा भयविह्वलविसंस्थूलाः शत्रवः ॥६॥

सागरसलिलसमस्ता हिमगिरिविन्ध्यस्थली पृथिवीनारी । आज्ञाप्रणामकारी दासीव मम वशे आसीत् ॥७॥

सोऽहं मनुष्येन कथं जित्वाऽऽलोकितो दशग्रीवः ? । वर्तत इमाऽवस्था किं न खल्वाश्चर्यमेतत् ? ॥८॥

धिग्धिगिति राजलक्ष्मीमदीर्धप्रेक्षीं मुहूर्तरमणीयाम् । परित्यज्यारब्धामेकपदे दुर्जनस्वभावाम् ॥९॥

किंपाकफलसदृशा भोगाः पश्चाद्भवन्ति विषकटुकाः । बहुदुःखदुर्गतिकराः साधुना गर्हिता नित्यम् ॥१०॥

भरतादिमहापुरुषा धन्या ये उज्झित्वा राजश्रीयम् । निष्क्रान्ताश्चरितं तपः शिवमचलमनुत्तरं प्राप्ताः ॥११॥

---

१. एक्केक्किमं वयणं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो कह मोहेण जिओ, अहयं संसारदीहजणएणं ? । किं वा मरेमि इण्हिं, उवट्ठिए पडिभए घोरे ? ॥१२॥

दट्ठूण चक्कहत्थं, सोमित्तिं रावणं सवडहुत्तं । महुरवयणेहि एत्तो, बिहीसणो भणइ दहवयणं ॥१३॥

अज्ज वि य मज्झ वयणं, कुणसु पहू ! जाणिऊण अप्पहियं । तुहु पउमपसाएणं, जीवसु सीयं समप्पेन्तो ॥१४॥

सा चेव तुज्झ लच्छी, एव कुणन्तस्स आउयं दीहं । हवइ नियमेण रावण!, नरस्स इह माणभङ्गेणं ॥१५॥

एक्कोयरस्स वयणं, अवगणेऊण रावणो भणइ । रे तुज्झ भूमिगयोर !, गव्वं चिय दारुणं जायं ॥१६॥

ताव य गज्जन्ति गया, जाव न पेच्छन्ति अहिमुहावडियं । दाढाविडम्बियमुहं, वियडजडाभासुरं सीहं ॥१७॥

रयणासवस्स पुत्तो, अहयं सो रावणो विजियसत्तू । दावेमि तुह अवत्थं, जीयन्तयरी निरुत्तेणं ॥१८॥

भणिओ य लक्खणेणं, किं वा [1]बहुएहि भासियव्वेहिं । उप्पन्नो तुज्झ अ[2]रिवू, हन्ता नारायणो अहयं ॥१९॥

निव्वासियस्स तइया, पियरेणं वणफलासिणस्स मया । नारायणत्तणं, ते विन्नायं दीहकालेणं ॥२०॥

नारायणो निरुत्तं, होहि तुमं अहव[3] को वि अन्नो वा । इह तुज्झ माणभङ्गं, करेमि निस्संसयं अज्जं ॥२१॥

अइगव्विओ सि लक्खण, हत्थविलग्गेणिमेण चक्केणं । अहवा होइ खलेण वि, महूसवो पाययजणस्स ॥२२॥

चक्केण खेयरेहि य, समयं सतुरङ्गमं सह रहेणं । पेसेमिह पायाले, किं च बहुत्तेण भणियेणं ? ॥२३॥

सो एवभणियमेत्तो, चक्कं नारायणो भमाडेउं । पेसेइ पडिवहेणं, लङ्काहिवइस्स आरुट्ठो ॥२४॥

स कथं मोहेन जितोऽहं संसारदीर्घजनकेन ? । किं वा म्रिय इदानीमुपस्थिते प्रतिभये घोरे ? ॥१२॥

दृष्ट्वा चक्रहस्तं सौमित्रिं रावणमभिमुखम् । मधुरवचनैरितो बिभीषणो भणति दशवदनम् ॥१३॥

अद्यापि च मम वचनं कुरु प्रभो ! ज्ञात्वात्महितम् । त्वं प्रद्मप्रसादेन जीव सीतां समर्पयन् ॥१४॥

सैव तव लक्ष्मीरेवं कुर्वत आयुष्यं दीर्घम् । भवति नियमेन रावण ! नरस्येह मानभङ्गेन ॥१५॥

एकोदरस्य वचनमवगण्य रावणो भणति । रे तव भूमिगोचर ! गर्वमेव दारुणं जातम् ॥१६॥

तावच्च गर्जन्ति गजा यावन्न पश्यन्त्यभिमुखापतितम् । दंष्ट्राविडम्बितमुखं विकटजटाभासुरं सिंहम् ॥१७॥

रत्नश्रवसः पुत्रोहं स रावणो विजितशत्रुः । दर्शयामि तवावस्थां जीवान्तकरीं निश्चयेन ॥१८॥

भणितश्च लक्ष्मणेन किं वा बहुभि र्भाषितव्यैः । उत्पन्नस्तवारि र्हन्ता नारायणोऽहम् ॥१९॥

निर्वासितस्य तदा पित्रा वनफलाशिनो मया । नारायणत्वं तव विज्ञातं दीर्घकालेन ॥२०॥

नारायणो निश्चितं भविष्यति त्वमथवा कोऽप्यन्यो वा । इह तव मानभङ्गं करोमि निःसंशयमद्य ॥२१॥

अतिगर्वितोऽसि लक्ष्मण ! हस्तविलग्नेनानेन चक्रेण । अथवा भवति खलेनाऽपि महोत्सवः प्राकृतजनस्य ॥२॥

चक्रेण खेचरैश्च समकं चतुरङ्गमं सह रथेन । प्रेषयामीह पाताले किं च बहुत्वेन भणितेन ? ॥२३॥

स एवंभणितमात्रश्चक्रं नारायणो भ्रामयित्वा । प्रेषयति प्रतिपथा लङ्काधिपस्यारुष्टः ॥२४॥

---

१. बहुरुण भासियव्वेण-प्रत्य० । २. अरी मु० । ३. अवि य को-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोइऊण एन्तं, चक्कं घणघोसभीसणं दित्तं । सर-झसर-मोग्गरेहिं, उज्जुत्तो तं निवारेउं ॥२५॥
रुब्भन्तं पि अहिमुहं, तह वि समल्लियइ चक्करयणं तं । पुण्णावसाणसमए, सेणिय ! मरणे उवगयम्मि ॥२६॥
अइमाणिणस्स एत्तो, लङ्काहिवइस्स अहिमुहस्स रणे । चक्केण तेण सिग्घं, छिन्नं वच्छत्थलं विउलं ॥२७॥
चण्डाणिलेण भग्गो, तमालघणकसिणअलिउलावयवो । अञ्जणगिरि व्व पडिओ, दहवयणो रणमहीवट्टे ॥२८॥
सुत्तो व्व कुसुमकेऊ, नज्जइ देवो व्व महियले पडिओ । रेहइ लङ्काहिवई, अत्थगिरित्थो व दिवसयरो ॥२९॥
एत्तो निसायरबलं, निहयं दट्ठूण सामियं भग्गं । विवरम्मुहं पयट्टं, संपेल्लोप्पेल्ल कुणमाणं ॥३०॥
जोहो तुरङ्गमेणं, पेल्लिज्जइ रहवरो [1] गयवरेणं । अइकायरो पुण भडो, विवडइ तत्थेव भयविहलो ॥३१॥
एवं पलायमाणं, निस्सरणं तं निसायराणीयं । आसासिउं पयत्ता, सुग्गीव-बिहीसणा दो वि ॥३२॥
मा भाह मा पलायह, सरणं नारायणो इमो तुम्हं । वयणेण तेण सेणिय !, सव्वं आसासियं सेन्नं ॥३३॥
जेट्ठस्स बहुलपक्खे, दिवसस्स चउत्थभागसेसम्मि । एगारसीए दिवसे रावणमरणं वियाणाहि ॥३४॥

एवं पुण्णावसाणे तुरय-गयघडाडोवमज्झे वि सूरा,
संपत्ते मच्चुकाले असि-कणयकरा जन्ति नासं मणुस्सा ।
उज्जोएउं सतेओ सयलजयमिणं सो वि अत्थाइ भाणू,
जाए सोक्खप्पओसे स विमलकिरणो किं न चन्दो उवेइ ? ॥३५॥

॥ इइ पउमचरिए दहवयणवहविहाणं नाम तिहत्तरं पव्वं समत्तं ॥

अवलोक्यायान्तं चक्रं घनघोषभीषणं दीप्तम् । सर-झसर-मुद्गरैरुद्युक्तस्तं निवारयितुम् ॥२५॥
रुध्यमानमप्यभिमुखं तथापि समालिनाति चक्ररत्नं तत् । पुण्यावसानसमये श्रेणिक ! मरणे उपागते ॥२६॥
अतिमानिन इतो लङ्काधिपतेरभिमुखस्य रणे । चक्रेण तेन शीघ्रं छिन्नं वक्षःस्थलं विपुलम् ॥२७॥
चण्डानिलेन भग्नस्तमालघनकृष्णालिकुलावयवः । अञ्जनगिरिरिव पतितो दशवदनो रणमहीपृष्टे ॥२८॥
सुप्त इव कुसुमकेतु र्ज्ञायते देव इव महितले पतितः । राजते लङ्काधिपिः, अस्तगिरिस्थ इव दिनकरः ॥२९॥
इतो निशाचरबलं निहतं दृष्ट्वा स्वामिनं भग्नम् । विपराङ्मुखं प्रवृत्तं संपीडोत्पीडं क्रियमाणम् ॥३०॥
योधस्तुरङ्गमेन पीड्यते रथवरो गजवरेण । अतिकातरः पुन र्भटो विपतति तत्रैव भयविह्वलः ॥३१॥
एवं पलायमानं निःशरणं तं निशाचरानीकम् । आश्वासितुं प्रवृत्तौ सुग्रीव-बिभीषणौ द्वावपि ॥३२॥
मा बिभेत मा पलायत शरणं नारायणोऽयं युस्माकम् । वचनेन तेन श्रेणिक ! सर्वमाश्वासितं सैन्यम् ॥३३॥
ज्येष्ठस्य बहुलपक्षे दिवसस्य चतुर्थभागशेषे । एकादश्यां दिवसे रावण मरणं विजानीत ॥३४॥
एवं पुण्यावसाने तुरग-गजघटाटोपमध्येऽपि शूराः, संप्राप्ते मृत्युकालेऽसिकनककरा यान्ति नाशं मनुष्याः ।
उद्योत्य सतेजःसकलजगदिदं सोऽप्यस्ताति भानुः र्जाते सुखप्रदोषे स विमलकिरणो किं न चन्द्र उपैति ? ॥३५॥

॥ इति पद्मचरिते दशवदनवधविधानं नाम त्रिःसप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. गयरहेणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७४. पीयंकरउवक्खाणपव्वयं

दट्ठूण धरणिपडियं, सहोयरं सोयसल्लियसरीरो । छुरियाए देइ हत्थं, विहीसणो निययवहकज्जे ॥१॥
रामेण तओ रुद्धो, मुच्छं गन्तुं पुणो वि आसत्थो । एक्कोयरस्स पासे, ठिओ य तो विलविउ पयत्तो ॥२॥
हा भाय रावण ! तुमं, इन्दो इव संपयाए होऊणं । कह पत्तो सि महाजस !, एयावत्थं महापावं ? ॥३॥
न य मज्झ तुमे वयणं, पडिच्छियं हियकरं भणन्तस्स । दढचक्कताडिओ वि हु, पडिओ धरणीयले फरुसे ॥४॥
उट्ठेहि देहइ वयणं, सुन्दर ! मह एवविलवमाणस्स । उत्तारेहि महाजस !, सोगमहासागरे पडियं ॥५॥
सोऊण विगयजीयं, दहवयणन्तेउरं सपरिवारं । सोगाउरं रुयन्तं, रणभूमिं आगयं दीणं ॥६॥
दट्ठूण सुन्दरीओ, भत्तारं रुहिरकद्दमालित्तं । धरणियले पल्हत्थं, सहसा पडियाउ महिवट्ठे ॥७॥
रम्भा य चन्दवयणा, तहेव मन्दोयरी महादेवी । पवरुव्वसी य नीला य रुप्पिणी रयणमाला य ॥८॥
ससिमण्डला य कमला य सुन्दरी तह य चेव कमलसिरी । सिरिदत्ता[१] य सिरिमई, भद्दा य तहेव कणयपभा[२] ॥९॥
सिरिकन्ता य मिगावइ, लच्छी य अणङ्गसुन्दरी नन्दा । पउमा वसुंधरा वि य, तडिमाला चेव भाणुमई ॥१०॥
पउमावती[३] य कित्ती, पीई संझावली सुभा कन्ता । मणवेया रइवेया, पभावई चेव माणवई ॥११॥

७४. प्रियंकरोपाख्यानपर्वम्

दृष्ट्वा धरणिपतितं सहोदरं शोकशल्यितशरीरः । छूरिकायां ददाति हस्तं बिभीषणो निजवधकार्ये ॥१॥
रामेण ततो रुद्धो मूर्च्छां गत्वा पुनरप्याश्वास्तः । एकोदरस्य पार्श्वे स्थितश्च तदा विलपितुं प्रवृत्तः ॥२॥
हा भ्रात ! रावण ! त्वमिन्द्र इव संपदा भूत्वा । कथं प्राप्तोऽसि महायशः ! एतदवस्थां महापापम् ? ॥३॥
न च मम त्वया वचनं प्रतीच्छितं हितकरं भणतः । दृढचक्रताडितोऽपि हु पतितो धरणीतले परुषे ॥४॥
उत्तिष्ठ देहि वचनं सुन्दर ! ममैवं विलप्यमानस्य । उत्तारय महायशः ! शोकमहासागरे पतितम् ॥५॥
श्रुत्वा विगतजीवं दशवदनान्तःपुरं सपरिवारम् । शोकातूरं रुदन्तं रणभूमिमागतं दीनम् ॥६॥
दृष्ट्वा सुन्दर्यो भर्त्तारम् रुधिरकर्दमालिप्तम् । धरणितले पर्यस्तं सहसा पतिता महिपृष्टे ॥७॥
रम्भा च चन्द्रवदना तथैव मन्दोदरी महादेवी । प्रवरोर्वशी च नीला च रुक्मिणी रत्नमाला च ॥८॥
शशिमण्डला च कमला च सुन्दरी तथा चैव कमलश्रीः । श्रीदत्ता च श्रीमती भद्रा च तथैव कनकप्रभा ॥९॥
श्रीकान्ता च मृगावती लक्ष्मीश्चानङ्गसुन्दरी नन्दा । पद्मा वसुंधराऽपि च तडिन्मालैव भानुमती ॥१०॥
पद्मावती च कीर्तिः प्रीतिः संध्यावली शुभा कान्ता । मनोवेगा रतिवेगा प्रभावती चैव मानवती ॥११॥

१. ससिदत्ता-प्रत्य० । २. कणयाभा-प्रत्य० । ३. ०वई य कन्ती-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जुवईण एवमाई, अट्ठारस साहसीउ अइकलुणं । रोवन्ति दुक्खियाओ, आभरणविमुक्ककेसीओ ॥१२॥
काइत्थ मोहवडिया, चन्दणबहलोदएण सित्तङ्गी । उल्लसियरोमकूवा, पडिबुद्धा पउमिणी चेव ॥१३॥
अवगूहिऊण दइयं, अन्ना मुच्छं गया कणयगोरी । अञ्जणगिरिस्स लग्गा छज्जइ सोयामणी चेव ॥१४॥
काइत्थ समासत्था, उरतालणचञ्चलायतणुयङ्गी । केसे विलुम्पमाणी, रुयइ च्चिय कलुणसद्देणं ॥१५॥
अङ्के ठविऊण सिरं, अन्ना परिमुसइ विउलवच्छयलं । काइ चलणारविन्दे, चुम्बई करपल्लवे अवरा ॥१६॥
जंपइ काइ सुमहुरं, रोवन्ती अंसुपुण्णनयणजुया । हा नाह ! किं न पेच्छसि, सोगसमुद्दम्मि पडियाओ ? ॥१७॥
विज्जाहराण सामी, होऊणं सत्ति-कित्ति-बलजुत्तो । रामस्स विग्गहे किं, सुवसि पहू धरणिपल्लङ्के ? ॥१८॥
उट्ठेहि सयणवच्छल !, एक्कं पि य देहि अम्ह उल्लावं । अवराहविरहियाणं, कं कोवपरायणो जाओ ? ॥१९॥
परिहासकहासत्तं, विसुद्धदसणावलीपरमसोमं । वयणिन्दमिमं सामिय !, किं धारसि अम्ह परिकुविओ ? ॥२०॥
अइसुन्दरे मणोहरवित्थिण्णे जुवइकीलणट्ठाणे । कह ते चक्केण पयं, दिन्नं वच्छत्थलाभोए ॥२१॥
वइरीहि नियलबद्धे, इन्दइ-घणवाहणे परायत्ते । मोएह राहवाओ, गुणनिहि ! पीइं करेऊणं ॥२२॥
उट्ठेहि सयणवच्छल !, अत्थाणिसमागयाण सुहडाणं । बहुयाण[1] असरणाणं, देहि पहू ! दाण-सम्माणं ॥२३॥
विरहग्गि[2]दीवियाइं, विज्झवसु इमाइं नाह ! अङ्गाइं । अवगूहणोदएणं, चन्दणसरिसाणुलेवेणं ॥२४॥

युवतीनामेवमादयोऽष्टादश सहस्रा अतिकरुणम् । रुदन्ति दुःखिता आभरणविमुक्तकेश्यः ॥१२॥
काऽपीत्थं मोहपतिता चन्दनबहलोदकेन सिक्ताङ्गी । उल्लसितरोमकूपा प्रतिबुद्धा पद्मिन्येव ॥१३॥
आलिङ्ग्य दयितमन्या मूर्च्छां गता कनकगौरी । अञ्जनगिरे र्लग्ना राजते सौदामिन्येव ॥१४॥
काचित् समाश्वास्तोरस्ताडनचञ्चला तन्वाङ्गी । केशान् विलुम्प्यमानी रोदित्येव करुणशब्देन ॥१५॥
अङ्के स्थापयित्वा शिरोऽन्या परिस्पृशति विपुलवक्षःस्थलम् । कापि चरणारविन्दौ चुम्बति करपल्लवानपरा ॥१६॥
जल्पति कापि सुमधुरं रुदन्ती अश्रुपूर्णनयनयुगा । हा नाथ ! किं न पश्यसि शोकसमुद्रे पतिताः ? ॥१७॥
विद्याधराणां स्वामी भूत्वा शक्ति-कीत्ति-बलयुक्तः । रामस्य विग्रहे किं स्वपिसिसि प्रभो ! धरणिपल्यङ्के ? ॥१८॥
उत्तिष्ठ स्वजनवत्सल ! एकमपि च देह्यस्मानुल्लापम् । अपराधविरहितानां किं कोपपरायणो जातः ? ॥१९॥
परिहासकथासक्तां विशुद्धदशनावलीपरमसौम्यम् । वदनेन्दुमिमं स्वामिन् ! किं धारयस्यमासु परिकुपितः ? ॥२०॥
अतिसुन्दरं मनोहरविस्तीर्णे युवतिक्रीडनस्थाने । कथं ते चक्रेण पदं दत्तं वक्षःस्थलाभोगे ॥२१॥
वैरिभि र्निगडबद्धाविन्द्रजीत्घनवाहनौ परायत्तौ । मोचय राघवाद् गुणनिधि ! प्रीतिं कृत्वा ॥२२॥
उत्तिष्ठ स्वजनवत्सल ! आस्थानिकासमागतेभ्यः सुभटेभ्यः । बहुभ्योऽशरणेभ्यो देहि प्रभो ! दान-सन्मानम् ॥२३॥
विरहाग्निदीपितानि विद्यापयेमानि नाथ ! अङ्गानि । आलिङ्गनोदकेन चन्दनसदृशानुलेपेन ॥२४॥

---

१. ०ण दरिसणमिणं, देहि मु० । २. ग्गिदूमियाइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हसियाणि विलसियाणि य, अणेगचडुकम्मकारणाणि पहू ! ।
सुमरिज्जन्ताणि इहं, दहन्ति हिययं निरवसेसं ॥२५॥

एवं रोवन्तीणं, रावणविलयाण दीणवयणाणं । हिययं कस्स न कलुणं, जायं चिय गग्गरं कण्ठं ॥२६॥

एयन्तरम्मि रामो, लक्खणसहिओ विभीसणं भणइ । मा रुयसु भद्द ! दीणं, जाणन्तो लोगवित्तन्तं ॥२७॥

जाणसि य निच्छएणं, कम्माणं विचेट्ठियं तु संसारे । पुव्वोवत्तं पावइ, जीवो किं एत्थ सोएणं ? ॥२८॥

बहुसत्थपण्डिओ वि हु, दसाणणो सयलवसुमईनाहो । मोहेण इममवत्थं, नीओ अइदारुणबलेणं ॥२९॥

रामवयणावसाणे, विभीसणं भणइ तत्थ जणयसुओ । समरे अदिन्नपट्ठी, किं सोयसि रावणं [1]धीरं ? ॥३०॥

मोत्तूण इमं सोगं, निसुणसु अक्खाणयं कहिज्जन्तं । लच्छीहरद्धयसुओ, अक्खरपुरे नरवई वसई ॥३१॥

अरिदमणो त्ति पयासो, परविसए भञ्जिऊण रिउसेन्नं । कन्तादरिसणहियओ, निययपुरं आगओ सिग्घं ॥३२॥

तं पविसिऊण नयरं, तोरण-धयमण्डियं मणभिरामं । पेच्छइ य नियमहिलं, आहरणविभूसियं सगिहे ॥३३॥

तं पुच्छइ नरवसभो, सिट्ठो हं तुज्झ केण सयराहं ? । सा भणइ मुणि[2]वरेणं, कित्तिधरेणं च मे कहिओ ॥३४॥

ईसा-रोसवसगओ, भणइ मुणी जइ तुमं मुणसि चित्तं । तो मे कहेहि सव्वं, किं मज्झ अवट्ठियं हियए ? ॥३५॥

तं भणइ ओहिनाणी, तुज्झ इमं भद्द ! वट्टए हियए । जह किल कह मरणं मे, होहिइ ? कइया व ? कत्तो वा? ॥३६॥

भणिओ य सत्तमदिणे, असणिहओ तत्थ चेव मरिऊणं । उप्पज्जिहिसि महन्तो कीडो विट्ठाहरे नियए ॥३७॥

हसितानि विलसितानि चानेकचाटुकर्मकारणानि प्रभो ! । स्मर्यमानानीह दहन्ति हृदयं निरवशेषम् ॥२५॥

एवं रुदन्तीनां रावणवनितानां दीनवदनानाम् । हृदयं कस्य न करुणं जातमेव गद्गदं कण्ठम् ॥२६॥

एतदन्तरे रामो लक्ष्मणसहितो बिभीषणं भणति । मा रोदी भर्द्र ! दीनं जानल्लोकवृत्तान्तम् ॥२७॥

जानासि च निश्चयेन कर्माणां विचेष्टितं तु संसारे । पूर्वकृतं प्राप्नोति जीवः किमत्र शोकेन ? ॥२८॥

बहुशास्त्रपण्डितोऽपि हु दशाननः सकलवसुमतिनाथः । मोहेनेमामवस्थां नीतोऽतिदारुणबलेन ॥२९॥

रामवचनावसाने बिभीषणं भणति तत्र जनकसुतः । समरे अदत्तपृष्टि किं शोचसि रावणं धीरम् ? ॥३०॥

मुक्त्वेदं शोकं निश्रुण्वाख्यानं कथ्यमानम् । लक्ष्मीधरध्वजसुतोऽक्षपुरे नरपति र्वसति ॥३१॥

अरिदमन इति प्रख्यातः परविषये भङ्क्त्वा रिपुसैन्यम् । कान्तादर्शनहृदयो निजपुरमागतः शीघ्रम् ॥३२॥

तं प्रविश्य नगरं तोरण-ध्वजमण्डितं मनोऽभिरामम् । पश्यति च निजमहिलामाभारणविभूषितां स्वगृहे ॥३३॥

तं पृच्छति नरवृषभः शिष्टोऽहं तव केनाकस्मातम् । सा भणति मुनिवरेण कीर्त्तिधरेण च मे कथितः ॥३४॥

इर्ष्यारोषवशगतो भणति मुनिं यदि त्वं जानासि चित्तम् । तदा मां कथय सर्वं किं ममावस्थितं हृदये ॥३५॥

तं भणत्यवधिज्ञानी तवेदं भद्र ! वर्तते हृदये । यथा किल कथं मरणं मे भविष्यति ? कदा वा ? कुतो वा ? ॥३६॥

भणितश्च सप्तमदिनेऽशनिहतस्तत्रैव मृत्वा । उत्पतिष्यसि महान्कीटको विष्टागृहे निजे ॥३७॥

---

१. वहियं ? मु० । २. ०वरेणं णाणधरेणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो आगन्तूण सुयं, भणइ य पीयंकरं तुमे अहयं । अवसेण घाइयव्वो, कीडो विट्ठाहरे थूलो ।।३८।।

अह सो मरिऊण तहिं उप्पन्नो पेच्छिऊण तं पुत्तं । मरणमहाभयभीओ, पविसइ विट्ठाहरे दूरं ।।३९।।

पीयंकरो मुणिन्दं, पुच्छइ सो तत्थ कीडओ दूरं । मारिज्जन्तो नासइ, भयवं ! केणेव कज्जेणं ? ।।४०।।

अह भणइ साहवो तं, मुञ्च विसायं इहेव संसारे । जो जत्थ समुप्पज्जई, सो तत्थ रइं कुणइ जीवो ।।४१।।

पीयंकरस्स चरियं सुणिऊण एयं, तोसं परं उवगया वि हु खेयरिन्दा ।

लङ्काहिवस्स अणुओ पडिबोहिओ सो, जाओ पुराणविमलामलसुद्धबुद्धी ।।४२।।

।। इइ पउमचरिए पीयंकरउवक्खाणयं नाम चउहत्तरं पव्वं समत्तं ।।

स आगत्य सुतं भणति च प्रियंकरं त्वयाऽहम् । अवश्यं घातितव्यः कीटको विष्टागृहे स्थूलः ।।३८।।

अथ स मृत्वा तत्रोत्पन्नो दृष्ट्वा तं पुत्रम् । मरणमहाभयभीतः प्रविशति विष्टागृहे दूरम् ।।३९।।

प्रियंकरो मुनीन्द्रं पृच्छति स तत्र कीटको दूरम् । मार्यमाणो नश्यति भगवन् ! केनैव कारणेन ? ।।४०।।

अथ भणति साधुस्तं मुञ्च विषादमिहैव संसारे । यो यत्र समुत्पद्यते स तत्र रतिं करोति जीवः ।।४१।।

प्रियंकरस्य चरित्रं श्रुत्वेतत्तोषं परमुपगताऽपि हु खेचरेन्द्राः ।।

लङ्काधिपस्यानुजः प्रतिबोधितः स जातः पूर्वविमलामलशुद्धबुद्धिः ।।४२।।

।। इति पद्मचरिते प्रियंकरोपाख्यानं नाम चतुःसप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७५. इन्दइपमुहणिक्खमणपव्वं

अह भणइ पउमनाहो, मरणन्ताइं हवन्ति वेराणि । लडकाहिवस्स एत्तो, कुणह लहुं पेयकरणिज्जं ॥१॥

भणिऊण एवमेयं, सव्वे वि विहीसणाइया सुहडा । पउमेण सह पयट्टा, गया य मन्दोयरी जत्थ ॥२॥

जुवइसहस्सेहि समं, रोवन्ती राहवो मइपगब्भो । वारेइ मुहरभासी, उवणय-हेऊ-सहस्सेहिं ॥३॥

गोसीसचन्दणा-ऽगुरु-कप्पूराईसु सुरहिदव्वेसु । लङ्काहिवं नरिन्दा, सक्कारेउं गया वप्पं ॥४॥

पउमसरस्स तडत्थो, पउमाभो भणई अत्तणो सुहडे । मुञ्चह रक्खसवसभा, जे बद्धा कुम्भकण्णाई ॥५॥

रामवयणेण एत्तो, नरेहि ते आणिया तहिं सुहडा । मुक्का य बन्धणाओ, भोगविरत्ता तओ जाया ॥६॥

सुहडो य भाणुकण्णो, इन्दइ घणवाहणो य मारीई । मय-दाणवमाईया, हियएण मुणित्तणं पत्ता ॥७॥

अह भणइ लच्छिनिलओ, जइ वि हु अवयारिणो भवइ सत्तू ।
तह वि य पसंसिवयव्वो, अहियं माणुन्नओ सुहडो ॥८॥

संथाविऊण भणिया, इन्दहपमुहा भडा नियय[1]भोगे । भुञ्जह जहाणुपुव्वं, सोउव्वेयं पमोत्तूणं ॥९॥

भणियं तेहि महायस !, अलाहि भोगेहि विससरिच्छेहिं । घणसोगसंगएहिं, अणन्तसंसारकरणेहिं ॥१०॥

रामेण लक्खणेण य, भण्णन्ता वि य अणेगउवएसे । न य पडिवन्ना भोगे, इन्दइपमुहा भडा बहवे ॥११॥

---

७५. इन्द्रजीत्प्रमुखनिष्क्रमणपर्वम्

अथ भणति पद्मनाभो मरणान्तानि भवन्ति वैराणि । लङ्काधिपस्येतः कुरुत लघु प्रेतकरणीयम् ॥१॥

भणित्वेवमेतत्सर्वेऽपि बिभीषणादयः सुभटाः । पद्मेन सह प्रवृत्ता गताश्च मन्दोदरी यत्र ॥२॥

युवतिसहस्रैः समं रुदन्तीं राघवो मतिप्रगल्भः । वारयति मधुरभाष्युपनय-हेतुसहस्रैः ॥३॥

गोशीर्षचन्दनागुरुकर्पूरादिभिः सुरभिद्रव्यैः । लङ्काधिपं नरेन्द्राः सत्कर्तुं गतास्तटम् ॥४॥

पद्मसरसस्तटस्थः पद्माभो भणति आत्मनः सुभटान् । मुञ्चत राक्षसवृषभान् ये बद्धाः कुम्भकर्णादयः ॥५॥

रामवचनेनेतो नरैस्त आनीतास्तत्र सुभटाः । मुक्ताश्च बन्धनाद्भोगविरक्तास्ततो जाताः ॥६॥

सुभटश्च भानुकर्ण इन्द्रजीत्घनवाहनश्च मारीची । मय-दानवादयो हृदयेन मुनित्वं प्राप्ताः ॥७॥

अथ भणति लक्ष्मीनिलयो यद्यपि खल्वपकारी भवति शत्रुः । तथापि च प्रशंसितव्योऽधिकं भानुकर्णः सुभटः ॥८॥

संस्थाप्य भणिता इन्द्रजीत्प्रमुखा भटा निजभोगान् । भुञ्जत यथानुरुपं शोकोद्वेगं प्रमुच्य ॥९॥

भणितं तै र्महायशः ! अलं भोगै र्विषसदृशैः । घनशोकसंगतैरनन्तसंसारकरणैः ॥१०॥

रामेण लक्ष्मणेन च भण्यमाना अपि चानेकोपदेशैः । न च प्रतिपन्ना भोगानिन्द्रजीत्प्रमुखा भटा बहवः ॥११॥

---

१. निययगेहे-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवयरिऊण सरवरे, ण्हाया सव्वे वि तत्थ विमलजले । पुणरवि य समुत्तिण्णा, गया य निययाइं ठाणाइं ॥१२॥
वणियाण मारियाण य, भडाण लोगो कहासु आसत्तो । लङ्कापुरीए चिट्ठइ, वियलियववारकम्मन्तो ॥१३॥
केई उवालभन्ता, रुवन्ति सुहडा दसाणणगुणोहं । अन्ने विरत्तभोगा, संजाया तक्खणं चेव ॥१४॥
केइ भडा अइघोरं, संसारं निन्दिऊण आढत्ता । अन्ने पुण रायसिरी, भणन्ति तडिचञ्चलसहावा ॥१५॥
दीसइ पच्चक्खमिणं, सुहमसुहफलं रणम्मि सुहडाणं । भङ्गेण य विजएण य, समसरिसबलाण वि इहेव ॥१६॥
थोवा वि सुकयपुण्णा, पावन्ति जयं रणम्मि नरवसभा । बहवे वि कुच्छियतवा, भज्जन्ति न एत्थ संदेहो ॥१७॥
अबलस्स बलं धम्मो, रक्खइ आउं पि सुचरिओ धम्मो । धम्मो य हवइ पक्खो, सव्वत्तो पेच्छए धम्मो ॥१८॥
आसेसु कुञ्जरेसु य, भडेसु सन्नद्धबद्धकवएसु । न य रक्खिज्जइ पुव्वं, पुण्णेहिं विवज्जिओ पुरिसो ॥१९॥
केई भणन्ति एसा, हवइ गई वरभडाण संगामे । अन्ने जंपन्ति नरा, सत्ती वि हु रामकेसीणं ॥२०॥
भञ्जन्ति आउहाइं, अवरे घत्तन्ति भूसणवराइं । संवेगसमावन्ना, अन्ने गिण्हन्ति पव्वज्जं ॥२१॥
एवं घरे घरे च्चिय, लङ्कानयरीए सोगगहियाओ । रोवन्ति महिलियाओ, कलुणं पयलन्तनयणाओ ॥२२॥
अह तस्स दिणस्सऽन्ते, साहू नामेण अप्पमेयबलो । छप्पन्नसहस्सजुओ, मुणीण लङ्कापुरी पत्तो ॥२३॥
जइ एसो वि महप्पा, एन्तो लङ्काहिवम्मि जीवन्ते । तो लक्खणस्स पीई, होन्ती सह रक्खसिन्देणं ॥२४॥

अवतीर्य सरोवरं स्नाताः सर्वेपि तत्र विमलजले । पुनरपि च समुत्तीर्णा गताश्च निजकानि स्थानानि ॥१२॥
व्रणितानां मारितानां च भटानां लोकः कथास्वासक्तः । लङ्कापूर्यां तिष्ठति विगलितव्यापारकर्मान्तः ॥१३॥
केऽप्युपालम्भन्तो रुदन्ति सुभटा दशाननगुणौघम् । अन्ये विरक्त भोगाः संजातास्तत्क्षणमेव ॥१४॥
केऽपि भटा अतिघोरं संसारं निन्दितुमारब्धाः । अन्ये पुना राजश्रियं भणन्ति तडिच्चपलस्वभावाम् ॥१५॥
दृश्यते प्रत्यक्षमिदं शुभमशुभफलं रणे सुभटानाम् । भङ्गेन च विजयेन च समसदृशबलानामपीहैव ॥१६॥
स्तोका अपि सुकृतपुण्याः प्राप्नुवन्ति जयं रणे नरवृषभाः । बहवोऽपि कुत्सिततपसो भज्यन्ते नात्र संदेहः ॥१७॥
अबलस्य बलं धर्मो रक्षत्यायुरपि सुचरितो धर्मः । धर्मश्च भवति पक्षः सर्वतः पश्यति धर्मः ॥१८॥
अश्वेषु कुञ्जरेषु च भटेषु सन्नद्धबद्धकवचेषु । न च रक्ष्यते पूर्वं पुण्यै र्विवजितः पुरुषः ॥१९॥
केऽपि भणन्त्येषा भवति गति र्वरभटानां संग्रामे । अन्ये जल्पन्ति नराः शक्तिरपि हु रामकेश्योः ॥२०॥
भञ्जन्त्यायुधान्यपरे गृह्णन्ति भूषणवराणि । संवेगसमापन्ना अन्ये गृह्णन्ति प्रव्रज्याम् ॥२१॥
एवं गृहे गृह एव लङ्कानगर्या शोकगृहीताः । रुदन्ति महिलाः करुण प्रगलन्नयनाः ॥२२॥
अथ तस्य दिनस्यान्ते साधुर्नाम्नाऽप्रमेयबलः । षट्पञ्चाशत्सहस्त्रयुक्तो मुनीनां लङ्कापुरीं प्राप्तः ॥२३॥
यद्येषोऽपि महात्माऽऽगमिष्यल्लङ्काधिपे जीवति । तदा लक्ष्मणस्य प्रीतिरभविष्यत्सह राक्षसेन्द्रेण ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसयं अणूणं, जत्थऽच्छइ केवली समुद्देसे। वेराणुबन्धरहिया, हवन्ति नियंयं[1] नरवरिन्दा ॥२५॥

गयणं जहा अरूवं, चलो य वाऊ थिरा हवइ भूमी। तह केवलिस्स नियमा, एस सहावो य लोयहिओ ॥२६॥

सङ्घेण परिमिओ [2]सो, गन्तुं कुसुमाउहे वरुज्जाणे। आवासिओ मुणिन्दो, फासुयदेसम्मि उवविट्ठो ॥२७॥

झायन्तस्स भगवओ, एवं घाइक्खएण कम्माणं। रयणिसमयम्मि तइया, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥२८॥

एगमणो होउणं, तस्साईसयसमूहसंबन्धं। निसुणेहि ताव सेणिय, भण्णन्तं पावनासयरं ॥२९॥

अह मुणिवसहस्स तया, ठियस्स सीहासणे सुरवरिन्दा। चलिया भिसन्तमउडा, जिणदरिसणउज्जया सव्वे ॥३०॥

धायइसण्डविदेहे, सुरिन्दरमणे पुरे य पुव्विल्ले। उप्पन्नो तित्थयरो, तिलोयपुज्जो तहिं समए ॥३१॥

असुरा नाग-सुवण्णा, दीव-समुद्दा दिसाकुमारा य।
वाय-ग्गि-विज्जु-थणिया, भवणनिवासी दसवियप्पा ॥३२॥

किन्नर-किंपुरिस-महोरगा य गन्धव्व-रक्खसा जक्खा। भूया य पिसाया वि य, अट्ठविहा वाणमन्तरिया ॥३३॥

चन्दा सूरा य गहा, नक्खत्ता तारगा य नायव्वा। पञ्चविहा जोइसिया, गइरइकामा इमे देवा ॥३४॥

सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिन्द-बम्भलोगा य। लन्तयकप्पो य तहा, छट्ठो उण होइ नायव्वो ॥३५॥

एत्तोय महा[3]सुक्को, हवइ सहस्सार आणओ चेव। तह पाणओ य आरण, अच्चुयकप्पो य बारसमो ॥३६॥

एएसु य कप्पेसुं, देवा इन्दाइणो महिड्ढीया। चलिया भिसन्तमउडा, अन्ने वि सुरा सपरिवारा ॥३७॥

योजनशतमनूनं यत्राऽऽस्ते केवली समुद्देशे। वैरानुबन्धरहिता भवन्ति नित्यं नरवरेन्द्राः ॥२५॥

गगनं यथाऽरुपं चलश्च वायुः स्थिरा भवति भूमिः। तथा केवलिनो नियमैष स्वभावश्च लोकहितः ॥२६॥

सङ्घेन परिकीर्णः स गत्वा कुसुमायुधे वरोद्याने। आवासितो मुनीन्द्रः प्रासुकदेश उपविष्टः ॥२७।

ध्यायतो भगवत एवं घातिक्षयेण कर्माणाम्। रजीसमये तदा केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥२८॥

एकामना भूत्वा तस्यातिशयसमूहसम्बन्धम्। निश्रुणु तावच्छ्रेणिक ! भण्यमानं पापनाशकरम् ॥२९॥

अथ मुनिवृषभस्य तदा स्थितस्य सिंहासने सुरवरेन्द्राः। चलिता भासमानमुकुटा जिनदर्शनोद्यताः सर्वे ॥३०॥

घातकीखण्डविदेहे सुरेन्द्ररमणे पुरे च पूर्वे। उत्पन्नस्तीर्थकरस्त्रिलोकपूज्यस्तत्र समये ॥३१॥

असुर नाग-सुवर्णा द्वीप-समुद्रा दिशाकुमाराश्च। वाय्वग्निविद्युत्स्तनिता भवननिवासिनो दशविकल्पाः ॥३२॥

किन्नर-किम्पुरुष-महोरगाश्च गन्धर्व-राक्षसा यक्षाः। भूताश्च पिशाचा अपि चाष्टविधा वानमन्तराः ॥३३॥

चन्द्राः सूर्याश्च ग्रहा नक्षत्रास्तारकाश्च ज्ञातव्याः। पञ्चविधा ज्योतिष्का गतिरतिकामा इमे देवाः ॥३४॥

सौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकाश्च। लान्तककल्पश्च तथा षष्ठः पुन र्भवति ज्ञातव्यः ॥३५॥

इतश्च महाशुक्रो भवति सहस्रार आनत एव। तथा प्राणतश्चारणोऽच्युतकल्पश्च द्वादशः ॥३६॥

एतेभ्यश्च कल्पेभ्यो देवा इन्द्रादयो महर्द्धिकाः। चलिता भासमानमुकुटा अन्येऽपि सुराः सपरिवाराः ॥३७॥

---

१. णियमा-प्रत्य०। २. सो, तुंगे कुसु०-प्रत्य०। ३. ०सुक्को, सहसारो आणओ तह य चेव मु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगन्तूण य नयरे, घेत्तूण जिणं गया सुमेरुगिरिं। अहिसिञ्चन्ति सुरवरा, खीरोयहिवारिकलसेहिं ॥३८॥
वत्तममि य अहिसेए, आहरणविहूसियं जिण काउं। वन्दन्ति सव्वदेवा, पहट्ठमणसा सपरिवारा ॥३९॥
एवं कयाभिसेयं, जणणीए अप्पिऊण तित्थयरं। देवा नियत्तमाणा, सरन्ति मुणिकेवलुप्पत्ती ॥४०॥
गय-तुरय-वसह-केसरि-विमाण-रुरु-चमर-वाहणारूढा। गन्तूण पणमिऊण य, साहुं तत्थेव उवविट्ठा ॥४१॥
सोऊण दुन्दुहिरवं, देवाण समागयाण पउमाभो। खेयरब[1]लपरिकिण्णो, साहुसयासं समल्लीणो ॥४२॥
तह भाणुकण्ण-इन्दइ-घणवाहण-मिरिचि-मयभडादीया। एए मुणिस्स पासं, अल्लीणा अड्ढरत्तम्मि ॥४३॥
एवं थोऊण मुणी, देवा विज्जाहरा य सोममणा। निसुणन्ति मुणिमुहाओ, विणिग्गयं बहुविहं धम्मं ॥४४॥
भणइ मुणी मुणियत्थो, संसारे अट्ठकम्मपडिबद्धा। जीवा भमन्ति मूढा, सुहाऽसुहं चेव वेयन्ता ॥४५॥
हिंसाऽलिय-चोरिक्काइएसु परजुवइसेवणेसु पुणो। अइलोभपरिणया वि य, मरिऊण हवन्ति नेरइया ॥४६॥
रयणप्पभा य सक्कर-वालुय पङ्कप्पभा य धूमपभा। एत्तो तमा तमतमा, सत्त अहे होन्ति पुढवीओ ॥४७॥
एयासु सयसहस्सा, चउरासीई हवन्ति नरयाणं। कक्खडपरिणामाणं, असुईणं [2]दुरभिगन्धाणं ॥४८॥
करवत्त-जन्त-सामलि-वेयरणी-कुम्भिपाय-पुडपाया। हण-दहण-भञ्जण-कुट्टणघणवेयणा सव्वे ॥४९॥
पज्जलियङ्गारनिहा, हवइ मही ताण सव्वनरयाणं। तिक्खासु पुणो अहियं, निरन्तरा वज्जसुईसु ॥५०॥

आगत्य च नगरे गृहीत्वा जिनं गताः सुमेरुगिरिम्। अभिषिञ्चति सुरवराः क्षीरोदधिवारिकलशैः ॥३८॥
वर्त्तमाने चाभिषेके आभरणविभूषितं जिनं कृत्वा। वन्दन्ते सर्वदेवाः प्रहृष्टमनसः सपरिवाराः ॥३९॥
एवं कृताभिषेकं जनन्या अर्पयित्वा तीर्थकरम्। देवा निवर्तमानाः स्मरन्ति मुनिकेवलोत्पत्तिः ॥४०॥
गज तुरग वृषभकेसरि-विमान-रुरुचमरवाहनारुढाः। गत्वा प्रणम्य च साधुं तत्रैवोपविष्टाः ॥४१॥
श्रुत्वा दुन्दुभिरवं देवानां समागतानां पद्माभः। खेचरबलपरिकीर्णः साधुसकाशं समालीनः ॥४२॥
तथा भानुकर्णेन्द्रजीत्घनवाहनमरिचीमयभटादिकाः। एते मुनेः पार्श्वमालीना अर्धरात्रे ॥४३॥
एवं स्तुत्वा मुनिं देवा विद्याधराश्च सौम्यमनाः। निश्रुण्वन्ति मुनिमुखाद्विनिर्गतं बहुविधं धर्मम् ॥४४॥
भणति मुनि र्मुणितार्थः संसारे ऽष्टकर्मप्रतिबद्धाः। जीवा भ्रमन्ति मूढाः सुखासुखमेव वेदयन्तः ॥४५॥
हिंसाऽलिकचोरिकादिभिः परयुवतिसेवनाभिः पुनः। अतिलोभपरिणता अपि च मृत्वा भवन्ति नैरयिकाः ॥४६॥
रत्नप्रभा च शर्करा-वालुका पङ्कप्रभा च धूम्रप्रभा। इतस्तमा तमतमा सप्ताधो भवन्ति पृथिव्यः ॥४७॥
एतासु शतसहस्राश्चतुरशीति भवन्ति नरकाणाम्। कर्कशपरिणामानामशुचीनां दुरभिगन्धानाम् ॥४८॥
करपत्र-यन्त्र-शाल्मलि-वैतरणि-कुम्भीपाक-पुटपाकाः। हन-दहन-पतन-भञ्जन-कुट्टन घनवेदनाः सर्वे ॥४९॥
प्रज्वालिताङ्गारनिभा भवति मही तेषां सर्वनारकाणाम्। तीक्ष्णाभिः पुनरधिकं निरन्तरा वज्रसूचिभिः ॥५०॥

---

१. ०वलेण सहिओ, साहु०-प्रत्य०। २. परमगन्धाणं-मु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एसु पावकम्मा, पक्खित्ता तिव्ववेयणसयाइं । अणुहोन्ति सुइरकालं, निमिसं पि अलद्धसुहसाया ॥५१॥
कूडतुल-कूडमाणाइएसु रसभेइणो य कावडिया । ते वि मया परलोए, हवन्ति तिरिया[१] उ दुहभागी ॥५२॥
वय-नियमविरहिया वि हु, अज्जव-मद्दवगुणेसु उववेया । उप्पज्जन्ति मणुस्सा, तहाऽऽरियाऽणारिया चेव ॥५३॥
वय-नियम-सील-संजम-गुणेसु, भावेन्ति जे उ अप्पाणं । ते कालगय समाणा, हवन्ति कप्पालएसु सुरा ॥५४॥
तत्तो वि चुयसमाणा, चक्कहराईकुलेसु उववन्ना मुप्पन्ना । भोत्तूण मणुयसोक्खं, लएन्ति निस्सङ्गपव्वज्जं ॥५५॥
चारित्त-नाण-दंसण-विसुद्धसम्मत्त-लेसपरिणामा । घोरतव-चरणजुत्ता, डहन्ति कम्मं निरवसेसं ॥५६॥
[२]पप्फोडियकम्मरया, उप्पाडेऊण केवलं नाणं । ते पावेन्ति सुविहिया, सिवमयलमणुत्तरं ठाणं ॥५७॥
ते तत्थ सङ्गरहिया, अव्वाबाहं सुहं अणोवमियं । भुञ्जन्ति सुइरकालं, सिद्धा सिद्धं समल्लीणा ॥५८॥
अह सो मुणिवरवसभो, इन्दइ-घणवाहणेहि निययभवं । परिपुच्छिओ महप्पा, कहिऊण तओ समाढत्तो ॥५९॥
कोसम्बीनयरीए, सहोयरा आसि तत्थ धणहीणा । घणपीइसंपउत्ता, नामेणं पढम-पच्छिमया ॥६०॥
अह तं पुरी भमन्तो, भवदत्तो नाम आगओ समणो । तस्स सयासे धम्मं, सुणेन्ति ते भायरा दो वि ॥६१॥
संवेगसमावन्ना, जाया ते संजया समियपावा । नयरीए तीए राया, [३]नन्दो महिला य इन्दुमुही[४] ॥६२॥
अह तत्थ पट्टणवरे, परमविभूई कया नरिन्देणं । धय-छत्त-तोरणाईसु चेव कुसुमोवयारिल्ला ॥६३॥

एतेषु पापकर्माः प्रक्षिप्तास्तीव्रवेदनशतानि । अनुभवन्ति सूचिरकालं निमिषमप्यलब्धसुखशाताः ॥५१॥
कूटतोलकूटमानादिभी रसभेदिनश्च कार्पटिकाः । तेऽपि मृताः परलोके भवन्ति तिर्यञ्चस्तु दुःखभागिनः ॥५२॥
व्रत-नियम-विरहिता अपि हु आर्जवमार्दवगुणैरुपपेताः । उत्पद्यन्ते मनुष्यास्तथाऽऽर्यानार्या एव ॥५३॥
व्रत-नियम-शील-संयम गुणै र्भावयन्ति ये त्वात्मानम् । ते कालगताः सन्तो भवन्ति कल्पालयेषु सुराः ॥५४॥
ततोऽपि च्युतास्सन्तश्चक्रधरादिकुलेषूत्पन्नाः । भुक्त्वा मनुष्यसुखं लान्ति निसङ्गप्रवज्याम् ॥५५॥
चरित्र-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धसम्यक्त्वलेश्यापरिणामाः । घोरतपश्चरणयुक्ता दहन्ति कर्म निरवशेषम् ॥५६॥
प्रस्फोटितकर्मरजस उत्पाद्य केवलं ज्ञानम् । ते प्राप्नुवन्ति सुविहिताः शिवमचलमनुत्तरं स्थानम् ॥५७॥
ते तत्र सङ्गरहिता अव्याबाधं सुखमनोपमितम् । भुञ्जन्ति सुचिरकालं सिद्धाः सिद्धिं समालीनाः ॥५८॥
स मुनिवरवृषभ इन्द्रजीत्घनवाहनै र्निजभवम् । परिपृष्टो महात्मा कथयितुं ततः समारब्धः ॥५९॥
कोशाम्बीनगर्यां सहोदरावास्तां तत्र धनहीनौ । घनप्रीतिसंप्रयुक्तौ नाम्ना प्रथम-पश्चिमौ ॥६०॥
अथ तां पुरीं भ्रमन्भवदत्तो नामागतः श्रमणः । तस्य सकाशे धर्मं श्रुणुतस्तौ भ्रातरौ द्वावपि ॥६१॥
संवेगसमापन्नौ जातौ तौ संयतौ समितपापौ । नगर्यास्तस्या राजा नन्दो महिला चेन्द्रमुखी ॥६२॥
अथ तत्र पत्तनवरे परमविभूतिः कृता नरेन्द्रेण । ध्वज-छत्र-तोरणादिभिरेव कुसुमोपचारा ॥६३॥

---

१. ०या दुहाभागी-प्रत्य० । २. पप्फोडिऊण कम्मं, उघा०-प्रत्य० । ३. नन्दी-मु० । ४. इन्दुमई-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण तं विभूई, कयं नियाणं तु पच्छिमजईणं । [1]होमि अहं नन्दसुओ, जइ मे धम्मस्स माहप्पं ॥६४॥
बोहिज्जन्तो वि मुणी, अणियत्तमणो नियाणकयगाहो । मरिऊण य उववन्नो, गब्भम्मि उ इन्दुवयणाए ॥६५॥
गब्भट्ठियस्स रन्ना, बहूणि कारावियाणि लिङ्गाणि । पायारनिवसणाइं, जायाइं रज्जकहणाइं ॥६६॥
जाओ कुमारसीहो, अह सो रइवद्धणो त्ति नामेणं । अमरिन्दरूवसरिसो, रज्जसमिद्धिं समणुपत्तो ॥६७॥
पढमो ति तवं काउं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो । संभरइ कणिट्ठं सो, जायं [2]नन्दस्स अङ्गरुहं ॥६८॥
तस्स पडिबोहणट्ठे, [3]चेल्लयरूवेण आगओ सिग्घं । पविसरइ रायभवणं, दिट्ठो रइवद्धणेण तओ ॥६९॥
अब्भुट्ठिओ निविट्ठो, कहेइ रइवद्धणस्स पुव्वभवं । सव्वं सपच्चयगुणं, जं दिट्ठं जं च अणुहूयं ॥७०॥
तं सोऊण विबुद्धो, अह सो रइवद्धमो विगयसङ्गो । गिण्हइ जिणवरदिक्खं, देवो वि गओ निययठाणं ॥७१॥
रइवद्धणो वि य तवं, काऊणं कालधम्मसंजुत्तो । पढमामरस्स पासं, गओ य वेमाणिओ जाओ ॥७२॥
तत्तो चुया समाणा, विजए जाया विउद्धवरनयरे । एक्कोयरा नरिन्दा, चरिय तवं पत्थिया सग्गं ॥७३॥
तत्तो वि चुया तुब्भे, इन्दइ-घणवाहणा समुप्पन्ना । लङ्काहिवस्स पुत्ता, विज्जा-बल-रूवसंपन्ना ॥७४॥
जा आसि इन्दुवयणा, सा इह मन्दोयरी समुप्पन्ना । जणणी बीयम्मि भवे, जिणसासणभावियमईया ॥७५॥
सुणिऊण परभवं ते, दो वि जणा तिव्वजायसंवेगा । [4]निस्सङ्गा पव्वइया, समयं विज्जाहरभडेहिं ॥७६॥
धीरो वि भाणुकण्णो, मारीजी चेव खेयरसमिद्धी । अवहत्थिऊण दोण्णि, वि, पव्वइया जायसंवेगा ॥७७॥

दृष्ट्वा तां विभूतिं कृतं निदानं तु पश्चिमयतिना । भवाम्यहं नन्दसुतो यदि मे धर्मस्य माहात्म्यम् ॥६४॥
बोध्यमानोऽपि मुनिरनिवर्तमना निदानकृतग्राहः । मृत्वा चोत्पन्नो गर्भे त्वेन्दुवदनायाः ॥६५॥
गर्भस्थितस्य राज्ञा बहुनि कारितानि लिङ्गानि । प्राकारनिवसनानि जातानि राजकथनानि ॥६६॥
जातः कुमारसिंहोऽथ स रतिवर्धन इति नाम्ना । अमरेन्द्ररुपसदृशो राज्यसमृद्धिं समनुप्राप्तः ॥६७॥
प्रथमोऽपि तपः कृत्वा कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः । स्मरति कनिष्ठं स जातं नन्दस्याङ्गरुहम् ॥६८॥
तस्य प्रतिबोधनार्थे चेल्लकरुपेनागतः शीघ्रम् । प्रविशति राजभवनं दृष्टो रतिवर्धनेन ततः ॥६९॥
अभ्युत्थितो निविष्टः कथयति रतिवर्धनस्य पूर्वभवम् । सर्वं सप्रत्ययगुणं यद् दृष्टं यच्चानुभूतम् ॥७०॥
तं श्रुत्वा विबुद्धोऽथ स रतिवर्धनो विगतसङ्गः । गृह्णाति जिनवरदीक्षां देवोऽपि गतो निजस्थानम् ॥७१॥
रतिवर्धनोऽपि च तपः कृत्वा कालधर्मसंयुक्तः । प्रथमामरस्य पार्श्वं गतश्च वैमानिको जातः ॥७२॥
ततश्च्युतौ सन्तौ विजये जातौ विबुद्धवरनगरे । एकोदरौ नरेन्द्रौ चरित्वा तपः प्रस्थितौ स्वर्गम् ॥७३॥
ततोऽपि च्युतौ युवामिन्द्रजीत्घनवाहनौ समुत्पन्नौ । लङ्काधिपस्य पुत्रौ विद्याबल-रुप संपन्नौ ॥७४॥
याऽऽसीदिन्दुवदना सेह मन्दोदरी समुत्पन्ना । जननी द्वितीये भवे जिनशासनभावितमतिका ॥७५॥
श्रुत्वा परभवं तौ द्वावपि जनौ तीव्रजातसंवेगौ । निसङ्गौ प्रव्रजितौ समकं विद्याधरभटैः ॥७६॥
धीरोऽपि भानुकर्णो मारीच्येव खेचरसमृद्धिम् । अपहस्त्य द्वावपि प्रव्रजितौ जातसंवेगौ ॥७७॥

---

१. होज्ज अहं नन्दिसुओ जइ धम्मस्सऽत्थि माहप्पं-मु० । २. नन्दिस्स मु० । ३. खुड्डय०-मु० । ४. पव्वइया खायजसा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दोयरी वि पुत्ते, पव्वज्जमुवागए सुणेऊणं । सोयसराहयहियया, मुच्छावसविम्भला पडिया ॥७८॥
चन्दणजलोल्लियङ्गी, आसत्था विलविउं समाढत्ता । हा इन्दइ ! घणवाहण !, जणणी नो लक्खिया तुब्भे ॥७९॥
भत्तारविरहियाए, पुत्ता आलम्बणं महिलियाए । होन्ति इह जीवलोए, चत्ता तेहिं पि पावा हं ॥८०॥
तिसमुद्दमेइणिवई, मह दइओ विणिहओ रणमुहम्मि । पुत्तेहि वि मुक्का हं, कं सरणं वो पवज्जामि ? ॥८१॥
एवं सा विलवन्ती, अज्जाए तत्थ संजमसिरीए । पडिबोहिया य गेण्हइ, पव्वज्जं सा महादेवी ॥८२॥
चन्दणहा वि अणिच्चं, जीयं नाऊण तिव्वदुक्खत्ता । पव्वइया दढभावा, जिणवरधणमुज्जया जाया ॥८३॥
अट्ठावन्नसहस्सा, तत्थ य जुवईण लद्धबोहीणं । पव्वइया नियमगुणं, [1]कुणन्ति दुक्खक्खयट्ठाए ॥८४॥
एवं इन्दइ-मेहवाहणमुणी धम्मेक्कचित्ता सया, नाणालद्धिसमिद्धसाहुसहिया अब्भुज्जया संजमे ।
भव्वाणन्दयरा भमन्ति वसुहं ते नागलीलागई, अव्वाबाहसुहं सिवं सुविमलं मग्गन्ति रत्तिदिवं ॥८५॥

॥ इय पउमचरिए इन्दइआदिनिक्खमणं नाम पञ्चहत्तरं पव्वं समत्तं ॥

मन्दोदर्यपि पुत्रौ प्रव्रज्यामुपागतौ श्रुत्वा । शोकशराहतहृदया मुर्च्छावशविह्वला पतिता ॥७८॥
चन्दनजलाद्रीताङ्ग्याश्वास्ता विलपितुं समारब्धा । हा इन्द्रजीत् ! घनवाहन ! जननी न लक्षिता युवाभ्याम् ॥७९॥
भर्त्तुविरहितायाः पुत्रा आलम्बनं महिलायाः । भवन्तीह जीवलोके त्यक्ता तैरपि पापाऽहम् ? ॥८०॥
त्रिःसमुद्रमेदिनिपति र्मम दयितो विनिहतो रणमुखे । पुत्रैरपि मुक्ताऽहं कं शरणं वा प्रपद्ये ? ॥८१॥
एवं सा विलपन्त्यार्यया तत्र संयमश्रिया । प्रतिबोधिता च गृह्णाति प्रव्रज्यां सा महादेवी ॥८२॥
चन्द्रनखाप्यनित्यं जीवं ज्ञात्वा तीव्रदुःखार्त्ता । प्रव्रजिता दृढभावा जिनवरधर्मोद्यता जाता ॥८३॥
अष्टपञ्चाशत्सहस्रास्तत्र च युवतीनां लब्धबोधीनाम् । प्रव्रजिता नियमगुणं कुर्वन्ति दुःखक्षयार्थे ॥८४॥
एवमिन्द्रजीन्मेघवाहनमुनी धर्मैकचित्तौ सदा ज्ञानलब्धिसमृद्धसाधुसहितावभ्युद्यतौ संयमे ।
भव्यानन्दकरौ भ्रमतो वसुधां तौ नागलीलागत्यव्याबाधसुखं शिवं सुविमलं मार्गयतो रात्रिंदिवा ॥८५॥

॥ इति पद्मचरित इन्द्रजिदादिनिष्क्रमणं नाम पञ्चसप्ततितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. करेन्ति-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७६. सीयासमागमपव्वं

एत्तो दसरहतणया, हलहर-नारायणा महिड्ढीया । लङ्कापुरिं पविट्ठा, हय-गय-रह-जोहपरिकिण्णा ॥१॥

पडुपडह-भेरि-झल्लरि-काहल-तिलिमा-मुइङ्गसद्देणं । जय जयसद्देण तहिं, न सुणिज्जइ कण्णवडियं पि ॥२॥

तत्थेव रायमग्गे, पउमं सहलक्खणं पलोयन्तो । न य तिप्पइ नयरजणो, संपेल्लोप्पेल्ल कुणमाणो ॥३॥

विज्जाहरीहिं सहसा, भवणगवक्खा निरन्तरं छन्ना । वयणकमलेसु अहियं, रेहन्ति पलोयमाणीणं ॥४॥

अन्नोन्ना भणइ सही, एसो वरपुण्डरीयदलनयणो । सीयाए हियइट्ठो, रामो इन्दो व्व रूवेणं ॥५॥

इन्दीवरसरिसाभो, इन्दीवरलोयणो महाबाहू । चक्करयणस्स सामी, पेच्छ सही लक्खणो एसो ॥६॥

एसो किक्किन्धिवई, विराहिओ जणयनन्दणो नीलो । अङ्गो अङ्गकुमारो, हणुवन्तो जम्बुवन्तो य ॥७॥

एवं ते पउमाई, सुहडा निसुणन्तया जणुल्लावे । सीयाभिमुहा चलिया, आपूरेन्ता नरिन्दपहं ॥८॥

अह सो आसन्नत्थं, पुच्छइ वरचमरधारिणिं पउमो । भद्दे ! कहेहि सिग्घं, कत्थऽच्छइ सा महं भज्जा ? ॥९॥

सा भणइ सामि ! एसो पुप्फइरी नाम पव्वओ रम्मो । तत्थऽच्छइ तुह धरिणी, पउमुज्जाणस्स मज्झम्मि ॥१०॥

अह सो कमेण पत्तो, रामो सीयाए सन्निवेसम्मि । ओइण्णो य गयाओ, पेच्छइ [१]कन्ता मलिणदेहा ॥११॥

पयईए तणुयङ्गी, अहियं चिय विरहदूमियसरीरा । सीया दट्ठूण पियं, अहोमुहा लज्जिया रुयइ ॥१२॥

---

७६. सीता समागमपर्वम्

इतो दशरथतनयौ हलधरनारायणौ महर्द्धिकौ । लङ्कापुरिं प्रविष्टौ हयगजरथयोधपरिकीर्णौ ॥१॥

पटुपटहभेरिझल्लरिकाहलतिलिमामृदङ्गशब्देन । जयजयशब्देन तत्र न श्रूयते कर्णपतितमपि ॥२॥

तत्रैव राजमार्गे पद्मं सहलक्ष्मणं प्रलोकयन् । न च तृप्यति नगरजनः संपीडोत्पीडक्रीयमाणः ॥३॥

विद्याधरिभिः सहसा भवनगवाक्षा निरंतरं छन्नाः । वदनकमलैरधिकं राजन्ते प्रलोकमाणीनाम् ॥४॥

अन्योन्या भणति सखि ! एष वरपुण्डरिकदलनयनः । सीताया हृदयेष्टो राम इन्द्र इव रुपेण ॥५॥

इन्दीवरसदृशाभ इन्दीवरलोचनो महाबाहुः । चक्ररत्नस्य स्वामी पश्य सखि ! लक्ष्मण एषः ॥६॥

एष किष्किन्धिपति र्विराधितो जनकनन्दनो नीलः । अङ्गोऽङ्गकुमारो हनुमान्जाम्बुवांश्च ॥७॥

एवं ते पद्मादयः सुभटा निश्रुण्वन्तो जनोल्लापान् । सीताभिमुखाश्चलिता आपूरयन्नरेन्द्रपथम् ॥८॥

अथ स आसन्नस्थां पृच्छति वरचामरधारिणीं पद्मः । भद्रे ! कथय शीघ्रं कुत्रास्ते सा मम भार्या ? ॥९॥

सा भणति स्वामिन्नेष पुष्पगिरि र्नाम पर्वतो रम्यः । तत्राऽऽसते तव गृहिणी पद्मोद्यानस्य मध्ये ॥१०॥

अथ स क्रमेण प्राप्तो रामः सीतायाः समीपे । अवतीर्णश्च गजात्पश्यति कान्तां मलिनदेहाम् ॥११॥

प्रकृत्या तन्वाङ्गीग्यधिकमेव विरहदवितशरीरा । सीता दृष्ट्वा प्रियमघोमुखा लज्जिता रोदिति ॥१२॥

---

१. कन्तं मालणदेहं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवहत्थिऊण सोयं, दइयस्स समागमे जणयधूया । हरिसवसपुलइयङ्गी, जाया चिय तक्खणं चेव ॥१३॥
देवि व्व सुराहिवइं, रइव्व कुसुमाउहं घणसिणेहा । भरहं चेव सुभद्दा, तह अल्लीणा पइं सीया ॥१४॥
अवगूहिया खणेक्कं, रामेण ससंभमेण जणयसुया । निव्ववियमाणसऽङ्गी, सित्ता इव चन्दणरसेणं ॥१५॥
दइयस्स कण्ठलग्गा, भुयपास सुमणसा जणयधूया । कप्पतरुसमासन्ना, कणयलया चेव तणुयङ्गी ॥१६॥
दट्ठूण रामदेवं, सीयासहियं नहट्ठिया देवा । मुञ्चन्ति कुसुमवासंगन्धोदयमिस्सियं सुरहिं ॥१७॥
साहु त्ति साहु देवा, भणन्ति सीयाए निम्मलं सीलं । पंचाणुव्वयधारी, मेरु व्व अकम्पियं हिययं ॥१८॥
लच्छीहरेण एत्तो, सीयाए चलणवन्दणं रइयं । तीए वि सो कुमारो, अवगूढो तिव्वनेहेणं ॥१९॥
सा भणइ भद्द ! एयं, पुव्वं समणुत्तमेहि जं भणियं । तं तह सुयमणुभूयं, दिट्ठं चिय पायडं अम्हे ॥२०॥
चक्कहरसिरीए तुमं, जाओ चिय भायणं पुहइणाहो । एसो वि तुज्झ जेट्ठो, बलदेवत्तं समणुपत्तो ॥२१॥
एक्कोयराए चलणे, पणमइ भामण्डलो जणियतोसो । सीयाए सुमणसाए, सो वि सिणेहेण अवगूढो ॥२२॥
सुग्गीवो पवणसुओ, नलो य नीलो य अङ्गओ चेव । चन्दाभो य सुसेणो, विराहिओ जम्बवन्तो य ॥२३॥
एए अन्ने य बहू, विज्जाहरपत्थिवा नियनामं । आभासिऊण सीयं, पणमन्ति जहाणुपुव्वीए ॥२४॥
आभरणभूसणाइं, वरसुरहिविलेवणाइं पउराइं । आणेन्ति य वत्थाइं, कुसुमाइं चेव दिव्वाइं ॥२५॥

भणन्ति तं पणयसिरा महाभडा, सुभे ! तुमं कमलसिरी न संसयं ।
अणोवमं विसयसुहं जहिच्छियं, निसेवसू विमलजसं हलाउहं ॥२६॥

॥ इइ पउमचरिए सीयासमागमविहाणं नाम छहत्तरं पव्वं समत्तं ॥

अपहस्त्य शोकं दयितस्य समागमे जनकदुहिता । हर्षवशपुलकिताङ्गी जातैव तत्क्षणमेव ॥१३॥
देवीव सुराधिपतिं रतीव कुसुमायुधं घनस्नेहा । भरतमेव सुभद्रा तथाऽऽलीना पतिं सीता ॥१४॥
आलिङ्गिता क्षणमेकं रामेण ससंभ्रमेण जनकसुता । निर्वापितमानसाग्निःसिक्तैव चन्दनरसेन ॥१५॥
दयितस्य कण्ठलग्ना भुजापाश्वसुमनसा जनकदुहिता । कल्पतरुसमासन्ना कनकलतैव तन्वाङ्गी ॥१६॥
दृष्ट्वा रामदेवं सीतासहितं नभस्थिता देवाः । मुञ्चन्ति कुसुमवर्षं गन्धोदकमिश्रितं सुरभिम् ॥१७॥
साध्विति साधु देवा भणन्ति सीताया निर्मलं शीलम् । पञ्चनुव्रतधारी मेरुरिवाकम्पितं हृदयम् ॥१८॥
लक्ष्मीधरेणेतः सीतायाश्चरणवन्दनं रचितम् । तयाऽपि स कुमारोऽवगुढस्तीव्रस्नेहेन ॥१९॥
सा भणति भद्र ! एतत्पुर्वं श्रमणोत्तमैर्यद्भणितम् । तत्तथा समनुभूतं दृष्टमेव प्रकटमस्माभिः ॥२०॥
चक्रधरश्रियस्त्वं जात एव भाजनं पृथिवीनाथः । एषोऽपि तव ज्येष्ठो बलदेवत्वं समनुप्राप्तः ॥२१॥
एकोदरायाश्चरणे प्रणमति भामण्डलो जनिततोषः । सीतया सुमनसया सोऽपि स्नेहेनालिङ्गितः ॥२२॥
सुग्रीवः पवनसुतो नलश्च नीलश्चाङ्गद एव । चन्द्राभश्च सुषेणो विराधितो जाम्बुवांश्च ॥२३॥
एते अन्ये च बहवो विद्याधरपार्थिवा निजनाम । आभाष्य सीतां प्रणमन्ति यथानुपूर्व्या ॥२४॥
आभरणभूषणानि वरसुरभिविलेपनानि प्रचूराणि । आनयन्ति च वस्त्राणि कुसुमान्येव दिव्यानि ॥२५॥

भणन्ति तं प्रणतशिरसो महाभटाः शुभे ! त्वं कमलश्री र्न शंसयम् ।
अनुपमं विषयसुखं यथेच्छितं निसेवस्व विमलयशो हलायुधम् ॥२६॥

॥ इति पद्मचरिते सीतासमागमविधानं नाम षट्सप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७७. मयवक्खाणपव्वं

अह सो महाणुभावो, भुवणालङ्कारमत्तमायङगं । आरूढो पउमाभो, समयं सीयाए[१] सोममुहो ॥१॥

खेयरभडेहि[२] समयं, जयसद्दुग्घुट्ठमङ्गलरवेणं । पत्तो रावणभवणं, पविसइ समयं पिययमाए ॥२॥

भवणस्स तस्स मज्झे, थम्भसहस्सेण विरइयं तुङ्गं । सन्तिजिणिन्दस्स घरं, वरकणयविचित्तभत्तीयं ॥३॥

[३]ओइण्णो य गयाओ, समयं सीयाए रियइ जिणभवणं । रामो पसन्नमणसो, काउस्सग्गं कुणइ धीरो ॥४॥

रइऊण अञ्जलिउडं, सीसे सह गेहिणीए पउमाभो । संथुणइ[४] सन्तिनाहं, सब्भूयगुणेहि परितुट्ठो ॥५॥

जस्साऽवयारसमए, जाया सव्वत्थ तिहुयणे सन्ती । सन्ति त्ति तेण नामं, तुज्झ कयं[५] पावनासयरं ॥६॥

बाहिरचक्केण रिवू, जिणिऊण इमं समज्जियं रज्जं । अब्भिन्तररिउसेन्नं[६], विणिज्जियं झाणचक्केणं ॥७॥

सुर-असुरपणमिय ! नमो, ववगयजरमरण ! रागरहिय ! नमो ।
संसारनासण ! नमो, सिवसोक्खसमज्जिय ! नमो ते ॥८॥

लच्छीहरो विसल्ला, दोण्णि वि काऊण अञ्जली सीसे । पणमन्ति सन्तिपडिमं, भडा य सुग्गीवमादीया ॥९॥

काऊण थुइविहाणं, पुणो पुणो तिव्वभत्तिराएणं । तत्थेव य उवविट्ठा, जहासुहं नरवरा सव्वे ॥१०॥

---

७७. मयव्याख्यानपर्वम्

अथ स महानुभावो भुवनालङ्कारमत्तमातङ्गम् । आरुढः पद्माभः समकं सीतायाः सौम्यमुखः ॥१॥

खेचरभटैः समकं जयशब्दोद्घुष्टमङ्गलरवेण । प्राप्तो रावणभवनं प्रविशति समकं प्रियतमायाः ॥२॥

भवनस्य तस्य मध्ये स्तम्भसहस्रेण विरचितं तुङ्गम् । शान्तिजिनेन्द्रस्य गृहं वरकनकविचित्रभक्तिकम् ॥३॥

अवतीर्णश्च गजात्समकं सीताया गच्छति जिनभवनम् । समः प्रसन्नमनाः कायोत्सर्गं करोति धीरः ॥४॥

रचयित्वाञ्जलिपूटं शीर्षे सह गृहिण्या पद्माभः । संस्तौति शान्तिनाथं सद्भूतगुणैः परितुष्टः ॥५॥

यस्याऽवतारसमये जाता सर्वत्र त्रिभुवने शान्तिः । शान्तिरिति तेन नाम तव कृतं पापनाशकरम् ॥६॥

बाह्यचक्रेण रिपुं जित्वेदं समर्जितं राज्यम् । अभ्यन्तररिपुसैन्यं विनिर्जितं ध्यानचक्रेण ॥७॥

सुरासुरप्रणत ! नमो व्यपगतजरमरण ! रागरहित ! नमो । संसारनाशन ! नमः शिवसुखसमर्जित ! नमस्ते ॥८॥

लक्ष्मीधरो विशल्या द्वावपि कृत्वाञ्जलिं शीर्षे । प्रणमतः शान्तिप्रतिमां भटाश्च सुग्रीवादयः ॥९॥

कृत्वा स्तुतिविधानं पुनः पुनस्तीव्रभक्तिरागेण । तत्रैव चोपविष्टा यथासुखं नरवराः सर्वे ॥१०॥

---

१. ०ए पउममुहो-प्रत्य० । २. सहिओ, जय०-प्रत्य० । ३. उत्तिण्णो-प्रत्य० । ४. ०णए संतिजिणं-प्रत्य० । ५. पावणासणयं-प्रत्य० । ६. न्तरारिसिन्नं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयन्तरे सुमाली, विहीसणो मालवन्तनामो य । रयणासवमाईया, घणसोयसमोत्थयसरीरा ॥११॥
दट्ठूण ते विसण्णे, जंपइ पउमो सुणेह मह वयणं । सोगस्स मा हु सङ्गं, देह मणं निययकरणिज्जे ॥१२॥
इह सयलजीवलोए, जं जेण समज्जियं नियकम्मं । तं तेण पावियव्वं, सुहं च दुक्खं च जीवेणं ॥१३॥
जाएण य मरियव्वं, अवस्स जीवेण तिहुयणे सयले । तं एव जाणमाणो, संसारठिई मुयह सोगं ॥१४॥
खणभङ्गुरं सरीरं, कुसुमसमं जोव्वणं चलं जीयं । गयकण्णसमा लच्छी, सुमिणसमा बन्धवसिणेहा ॥१५॥
मोत्तूण इमं सोगं, सव्वे तुम्हे वि कुणह अप्पहियं । उज्जमह जिणवराणं, धम्मे सव्वाए सत्तीए ॥१६॥
महुरक्खरेहि एवं, संथाविय रहुवईण ते सव्वे । नियघराइं उवगया, सुमणा ते बन्धुकरणिज्जे ॥१७॥
ताव विहीसणधरिणी, जुवइसहस्ससहिया महादेवी । संपत्ता य वियड्ढा, पउमसयासं सपरिवारा ॥१८॥
पायप्पडणोवगया, पउमं विन्नवइ लक्खणेण समं । अम्हं अणुग्गहत्थं, कुणह घरे चलणपरिसङ्गं ॥१९॥
जाव च्चिय एस कहा, वट्टइ एत्तो विहीसणो ताव । भणइ य पउम! घरं मे, वच्च तुमं कीरउ पसाओ ॥२०॥
एव भणिओ पयट्टो, गयवरखन्धट्ठिओ सह पियाए । सयलपरिवारसहिओ, संघट्टुट्ठेन्तजणनिवहो ॥२१॥
गय-तुरय-रहवरेहिं, जाणविमाणेहि खेयरारूढा । वच्चन्ति रायमग्गे, तूररवुच्छलियकयचिन्धा ॥२२॥
पत्ता विहीसणघरं, मन्दरसिहरोवमं जगजगेन्तं । वरजुवइगीयवाइय—निच्चंकयमङ्गलाडोवं ॥२३॥
अह सो विहीसणेणं, रयणग्घाईकओवयारो य । सीयाए लक्खणेण य, सहिओ पविसरइ भवणं तं ॥२४॥

एतदन्तरे सुमाली बिभीषणो मालवान्नाम च । रत्नश्रवसादयः घनशोकसमवस्तृतशरीराः ॥११॥
दृष्ट्वा तान् विषण्णाञ्जल्पति पद्मः श्रुणुत मम वचनम् । शोकस्य मा खलु सङ्गं ददत मनो निजकरणीये ॥१२॥
इह सकलजीवलोके यद्येन समर्जितं निजकर्म । तत्तेन प्राप्तव्यं सुखं च दुःखं च जीवेन ॥१३॥
जातेन च मर्तव्यमवश्यं जीवेन त्रिभुवने सकले । तदेव जानन्मानः संसारस्थितिं मुञ्च शोकम् ॥१४॥
क्षणभङ्गुरं शरीरं कुसुमसमं यौवनं चलं जीवितम् । गजकर्णसमा लक्ष्मीः स्वप्नसमा बन्धुस्नेहाः ॥१५॥
मुक्त्वेदं शोकं सर्वे यूयमपि कुरतात्महितम् । उद्यच्छत जिनवराणां धर्मे सर्वया शक्त्या ॥१६॥
मधुराक्षरैरेवं संस्थाप्य रघुपतिना तान् सर्वान् । निजगृहाणि उपागताः सुमनास्ते बन्धुकरणीये ॥१७॥
तावद्बिभीषणगृहिणी युवतिसहस्रसहिता महादेवी । संप्राप्ता च विदग्धा पद्मसकाशं सपरिवारा ॥१८॥
पादपतनोपागता पद्मं विज्ञापयति लक्ष्मणेन समम् । अस्माकमनुग्रहार्थं कुरुत गृहे चरणपरिसङ्गम् ॥१९॥
यावदेवैषा कथा वर्तते इतो बिभीषणस्तावत् । भणति च पद्म ! गृहं मम व्रज, त्वं क्रियतां प्रसादः ॥२०॥
एवं भणितः प्रवृत्तो गजवरस्कन्धस्थितः सह प्रियया । सकल परिवार सहितः संघट्टोत्तिष्ठज्जननिवहः ॥२१॥
गज-तुरग-रथवरैर्यानविमानैः खेचरारुढाः । व्रजन्ति राजमार्गे तूर्यरवोच्छलितकृतचिह्नाः ॥२२॥
प्राप्ता बिभीषणगृहं मन्दरशिखरोपमं चकासन्तम् । वरयुवतिगीतवादितनित्यकृतमङ्गलाटोपम् ॥२३॥
अथ स बिभीषणेन रत्नार्घ्यादिकृतोपचारश्च । सीतया लक्ष्मणेन च सहितः प्रविशति भवनं तत् ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्झे घरस्स पेच्छइ, भवणं पउमप्पभस्स रमणिज्जं । थम्भसहस्सेणं चिय, धरियं वरकणयभित्तीयं ॥२५॥
खिङ्किणिमालोऊलं, पलम्बलम्बूविरइयाडोवं । नाणाविहधयचिन्धं, वरकुसुमकयच्चणविहाणं ॥२६॥
पउमप्पभस्स पडिमा, विसुद्धवरपउमरागनिम्माणा । पउमो पियाए सहिओ, संथुणइ विसुद्धभावेणं ॥२७॥
अन्ने वि लक्खणाई, सुहडा परिवन्दिऊण उवविट्ठा । तत्थेव जिणाययणे अच्छन्ति कहाणुबन्धेणं ॥२८॥
विज्जाहरीसु ताव य, ण्हाणविही विरइया महिड्ढीया । रामस्स लक्खणस्स य सीयाए तहाविसल्लाए ॥२९॥
वेरुलियण्हाणपीढे, ताण य उवविट्ठयाण मज्जणयं । बहुतूर-सङ्खपउरं, वत्तं चिय कणयकलसेहिं ॥३०॥
ण्हाओ अलंकियतणू, पउमो पउमप्पभं पणमिऊणं । भत्तस्स गिरिसरिच्छं, तत्थ य रइयं निवेयणयं ॥३१॥
पउमो लक्खणसहिओ, अन्नो वि य परियणो समन्तिजणो । भोयणघरं पविट्ठो, भुञ्जइ नाणाविहं भत्तं ॥३२॥
मिउसुरहिसाउकलियं, पञ्चण्हं चेव इन्दियत्थाणं । इट्ठं सुहं मणोज्जं, इच्छाए भोयणं भुत्तं ॥३३॥
सम्माणिया य सव्वे, विज्जाहरपत्थिवा सविभवेणं । वरहार-कडय-कुण्डल-वत्था-ऽलंकारमादीसु ॥३४॥
निव्वत्तभोयणा ते, जंपन्ति सुहासणट्ठिया सुहडा । रक्खसवंसस्स अहो !, विभीसणो भूसणो जाओ ॥३५॥
एत्तो विहीसणाई, सव्वे विज्जाहरा कयाडोवा । रज्जाहिसेयकज्जे, उवट्ठिया पउमणाहस्स ॥३६॥
तो भणइ पउमणाहो, भरहो अणुमन्निओ मह गुरूणं । रज्जे रज्जाहिवई, सयलसमत्थाए वसुहाए ॥३७॥
अभिसेयमङ्गलत्थे, दीसइ दोसो महापुरिसचिण्णो । भरहो सोऊणऽम्हे, संविग्गो होहइ कयाई ॥३८॥

मध्ये गृहस्य पश्यति भवनं पद्मप्रभस्य रमणीयम् । स्तम्भसहस्रेणैव धृतं वरकनकभित्तीकम् ॥२५॥
किंकीणीमालावचूलं प्रलम्बलम्बूसकविरचिताटोपम् । नानाविधध्वजचिह्नं वरकुसुमकृतार्चनविधानम् ॥२६॥
पद्मप्रभस्य प्रतिमां विशुद्धवरपद्मरागनिर्माणाम् । पद्मः प्रियया सहितः संस्तौति विशुद्धभावेन ॥२७॥
अन्येऽपि लक्ष्मणादयः सुभटाः परिवन्द्योपविष्टाः । तत्रैव जिनायतने आसते कथानुबन्धेन ॥२८॥
विद्याधरिभिस्तावच्च स्नानविधि विरचिता महर्द्धिकाः । रामस्य लक्ष्मणस्य च सीतायास्तथा विशल्यायाः ॥२९॥
वैडूर्यस्नानपीठे तेषां चोपस्थितानां मज्जनकम् । बहुतूर्य-शङ्खप्रचुरं वृत्तमेव कनककलशैः ॥३०॥
स्नातोऽलङ्कृततनूः पद्मः पद्मप्रभं प्रणम्य । भक्तस्य गिरिसदृशं तत्र च रचितं नैवेद्यकम् ॥३१॥
पद्मो लक्ष्मणसहितोऽन्योऽपि च परिजनः समन्त्रिजनः । भोजनगृहं प्रविष्टो भुञ्जते नानाविधं भक्तम् ॥३२॥
मृदुसुरभिस्वादुकलितं पञ्चानामेवेन्द्रियार्थाणाम् । इष्टं सुखं मनोज्ञमिच्छया भोजनं भुक्तम् ॥३३॥
सम्मानिताश्च सर्वे विद्याधरपार्थिवाः सविभवेन । वरहार-कटक-कुण्डल-वस्त्रालङ्कारादिभिः ॥३४॥
निवर्तभोजनास्ते जल्पन्ति सुखासनस्थिताः सुभटाः । राक्षसवंशस्याहो ! बिभीषणो भूषणो जातः ॥३५॥
इतो बिभीषणादयः सर्वे विद्याधराः कृताटोपाः । राज्याभिषेककार्ये उपस्थिताः पद्मनाभस्य ॥३६॥
तदा भणति पद्मनाभो भरतोऽनुमानितो मम गुरुणा । राज्ये राज्याधिपतिः सकलसमस्ताया वसुधायाः ॥३७॥
अभिषेकमङ्गलार्थे दृश्यते दोषो महापुरुषाचीर्णः । भरतः श्रुत्वाऽस्मान् संविग्नो भविष्यति कदाचित् ॥३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणियं च एवमेयं, सव्वेहि य खेयरेहि मिलिएहिं । लङ्कापुरीए रामो, अच्छि इन्दो व्व सुरलोए ॥३९॥

सव्वे वि खेयरभडा, तत्थेव ठिया पुरीए बलसहिया । अमरा इव सुरलोए, अइसयगुणरिद्धिसंपन्ना ॥४०॥

पउमो सीयाए समं, भुञ्जन्तो उत्तमं विसयसोक्खं । दोगुन्दुगो व्व देवो, गयं पि कालं न लक्खेइ ॥४१॥

सग्गसरिसो विदेसो, पियविरहे रण्णसन्निहो होइ । इट्ठजणसंपओगे, रण्णं पि सुरालयं[1] जिणइ ॥४२॥

[2]तह य विसल्लासहिओ, अच्छइ लच्छीहरो जणियतोसो । रइसागरवगाढो, सुरवइलीलं विडम्बन्तो ॥४३॥

एवं ताण रइसुहं, अणुहवमाणाणऽणेयवरिसाइं । वोलीणाणि दिणं पिव, अइसयगुणरिद्धिजुत्ताणं ॥४४॥

अह लक्खणो कयाई, पुराणि सरिऊण कुव्वरादीणि । कन्नाण कए लेहे, साहिन्नाणे विसज्जेइ ॥४५॥

विज्जाहरेहि गन्तुं ताण कुमारीण दरिसिया लेहा । लक्खणमणुस्सगाणं, अहियं नेहं वहन्तीणं ॥४६॥

दसपुरवईण धूया, रूवमई वज्जण्णनरवइणा । वीसज्जिया य पत्ता, लङ्कानयरिं सपरिवारा ॥४७॥

अह वालिखिल्लदुहिया, कुव्वरनयराहिवस्स गुणकलिया । सा वि तहिं संपत्ता, कन्ना कल्लाणमाल त्ति ॥४८॥

पुहवीधरस्स दुहिया, पुहइपुरे तत्थ होइ वणमाला । विज्जाहरेहि नीया, सा वि य लच्छीहरसमीवं ॥४९॥

खेमञ्जलीयनयरे, जियसत्तू नाम तस्स जियपउमा । धूया परियणसहिया, सा वि य लङ्कापुरिं पत्ता ॥५०॥

उज्जेणिमाइएसु य, नयरेसु वि जाओ रायकन्नाओ । लङ्कापुरी गयाओ, गुरूहि अणुमन्नियाओ ? ॥५१॥

भणितं चैवमेतत्सर्वैरपि खेचरै र्मिलितैः । लङ्कापूर्यां राम आस्त इन्द्र इव सुरलोके ॥३९॥

सर्वेऽपि खेचरभटास्तत्रैव स्थिताः पूर्यां बलसहिताः । अमरा इव सुरलोकेऽतिशयगुणर्द्धिसंपन्नाः ॥४०॥

पद्मः सीतया समं भुञ्जन्नुत्तमं विषयसुखम् । दोगुन्दुक इव देवो गतमपि कालं न लक्ष्यति ॥४१॥

स्वर्गसदृशोऽपि देशः प्रियविरहेऽरण्यसंनिभो भवति । इष्टजनसंप्रयोगेऽरण्यमपि सुरालयं जयति ॥४२॥

तथा च विशल्यासहित आस्ते लक्ष्मीधरो जनिततोषः । रतिसागरावगाढः सुरपतिलीलां विडम्बयन् ॥४३॥

एवं तेषां रतिसुखमनुभूयमानानामनेकवर्षाणि । व्यतीतानि दिनमिवातिशयगुणर्द्धियुक्तानाम् ॥४४॥

अथ लक्ष्मणः कदाचित्पुराणि स्मृत्वा कुबरादिनि । कन्यानां कृते लेखान् साभिज्ञानान् विसर्जयति ॥४५॥

विद्याधरैर्गत्वा तासां कुमारीणां दर्शिता लेखाः । लक्ष्मणमनोत्सुकानामधिकं स्नेहं वहन्तीनाम् ॥४६॥

दशपुरपतिना दुहिता रुपमती वज्रकर्णनरपतिना । विसर्जिता च प्राप्ता लङ्कानगरिं सपरिवारा ॥४७॥

अथ वालिखिलदुहिता कुबरनगराधिपस्य गुणकलिता । साऽपि तत्र संप्राप्ता कन्या कल्याणमालेति ॥४८॥

पृथिवीधरस्य दुहिता पृथिवीपुरे तत्र भवति वनमाला । विद्याधरै र्नीता साऽपि च लक्ष्मीधरसमीपम् ॥४९॥

क्षेमाञ्जलिकनगरे जितशत्रु र्नाम तस्य जितपद्मा । दुहिता परिजनसहिता साऽपि च लङ्कापुरिं प्राप्ता ॥५०॥

उज्जैन्यादिषु च नगरेष्वपि या राजकन्याः । लङ्कापुरिं गता गुरुभिरनुमताश्च ॥५१॥

---

१. ०लयं होइ-प्रत्य० । २. तत्थ वि०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणेइ लच्छिनिलओ, परमविभूईए ताओ कन्नाओ । सव्वङ्गसुन्दरीओ, सुरवहुसमसरिसरूवाओ ॥५२॥
परिणेइ पउमणाहो, कन्नाओ जाओ पुव्वदिन्नाओ । नवजोव्वणुज्जलाओ, रइगुणसारं वहन्तीओ ॥५३॥
एवं परमविभूई, हलहर-नारायणा समणुपत्ता । लङ्कापुरीए रज्जं, कुणन्ति विज्जाहरसमग्गा ॥५४॥
छव्वरिसाणि कमेण य, गयाणि तत्थेव पवरनयरीए । सोमित्ति-हलहराणं, विज्जाहररिद्धिजुत्ताणं ॥५५॥
एयं तु कहन्तरए, पुणरवि निसुणेहि अन्नसंबन्धं । इन्दइमुणिमाईणं, सेणिय ! लद्धीगुणहराणं ॥५६॥
झाणाणलेण सव्वं, दहिऊणं कम्मकयवरं धीरो । इन्दइमुणी महप्पा, केवलनाणी तओ जाओ ॥५७॥
अह मेहवाहणो वि य, धीरो अन्नोन्नकरणजोगेसु । जिणिऊण कम्ममल्लं, गेण्हइ सो केवलिपडायं ॥५८॥
दंसण-नाण-चरित्ते, सुद्धो तव-चरण-करणविणिओगे । केवलनाणाइसयं, संपत्तो भाणुकण्णो वि ॥५९॥
ठाणेसु जेसु एए, सिवमयलमणुत्तरं सुहं पत्ता । दीसन्ति ताणि सेणिय !, ते पुण साहू न दीसन्ति ॥६०॥
विञ्झत्थलीसु जेण उ, इन्दइ तह मेहवाहणो सिद्धो । तित्थं मेहरवं तं, विक्खायं तिहयुणे जायं ॥६१॥
समणो वि जम्बुमाली, कालं काऊण तो निमित्तम्मि । अहमिन्दत्तं पत्तो, सुचरियकम्माणुभावेणं ॥६२॥
तत्तो चुओ य सन्तो, होहइ एरावए महासमणो, केवलसमाहिजुत्तो, सिद्धिं पाविहिइ धुयकम्मो ॥६३॥
अह नम्मयाए तीरम्मि निव्वुओ कुम्भयण्णमुणिवसभो । पीढरखंडं तिभण्णइ, तं तित्थं देसविक्खायं ॥६४॥
मारीचि तवच्चरणं काऊणं कप्पवासिओ जाओ । जो जारिसम्मि ववसइ, फलं पि सो तारिसं लभइ ॥६५॥

परिणयति लक्ष्मीनिलयः परमविभूत्या ताः कन्याः । सर्वाङ्गसुन्दर्यः सुरवधुसमसदृशरुपाः ॥५२॥
परिणयति पद्मनाभः कन्या याः पूर्वदत्ताः । नवयौवनोज्वला रतिगुणसारं वहन्त्यः ॥५३॥
एवं परमविभूतिं हलधर-नारायणौ समनुप्राप्तौ । लङ्कापूर्या राज्यं कुर्वतो विद्याधरसमग्रौ ॥५४॥
षड्वर्षाणि क्रमेण च गतानि तत्रैव प्रवरनगर्याम् । सौमित्रि-हलधरयो विद्याधरर्द्धियुक्तयोः ॥५५॥
एतत्तु कथान्तरे पुनरपि निश्रुणुतान्यसम्बन्धम् । इन्द्रजिन्मुन्यादीनां श्रेणिक ! लब्धिगुणधराणाम् ॥५६॥
ध्यानानलेन सर्वं दग्ध्वा कर्मकचवरं धीरः । इन्द्रजिन्मुनि र्महात्मा केवलज्ञानी ततो जातः ॥५७॥
अथ मेघवाहनोऽपि च धीरोऽन्योन्यकरणयोगैः । जित्वा कर्ममलं गृह्णाति स केवलिपताकाम् ॥५८॥
दर्शन-ज्ञान-चारित्रेण शुद्धस्तपश्चरण-करणविनियोगेन । केवलज्ञानातिशयं संप्राप्तो भानुकर्णोऽपि ॥५९॥
स्थानेषु येष्वेते शिवमचलमनुत्तरं सुखं प्राप्ताः । दृश्यन्ते तानि श्रेणिक ! ते पुनः साधवो न दृश्यन्ते ॥६०॥
विन्ध्यस्थलिषु येन त्विन्द्रजित्तथा मेघवाहनः सिद्धः । तीर्थं मेघरवं तद्विख्यातं त्रिभुवने जातम् ॥६१॥
श्रमणोऽपि जम्बूमाली कालं कृत्वा तदा निमित्ते । अहमिन्द्रत्वं प्राप्तः सुचरितकर्मानुभावेन ॥६२॥
ततश्च्युतश्च सन् भविष्यत्यैरावते महाश्रमणः । केवलसमाधियुक्तः सिद्धिं प्राप्स्यति धुतकर्मा ॥६३॥
अथ नर्मदायास्तीरे निवृत्तः कुम्भकर्ण मुनिवृषभः। पीठरखण्डमिति भण्यते तत्तीर्थं देशविख्यातम् ॥६४॥
मारीची तपश्चरणं कृत्वा कल्पवासी जातः । यो यादृशे व्यवस्यति फलमपि स तादृशं लभते ॥६५॥

पुव्वं काऊण बहुं, पावं मयदाणवो वि मुणिवसभो । तवचरणपभावेणं, जाओ बहुलद्धिसंपन्नो ॥६६॥
एयन्तरम्मि राया, पुच्छइ गणनायगं पणमिऊणं । तह सो मओ महाजस !, जाओ च्चिय लद्धिसंपन्नो ॥६७॥
अन्नं पि सुणसु सामिय !, जा हवइ पइव्वया इहं नारी । सा सीलसंजमरया, साहसु कवणं गई लहइ ॥६८॥
तो भणइ इन्दभूई, जा दढसीला पइव्वया महिला । सीयाए हवइ सरिसी, सा सग्गं लहइ सुकयत्था ॥६९॥
जह तुरयरहवराणं, पत्थरलोहाण पायवाणं च । हवइ विसेसो नरवइ !, तहेव पुरिसाण महिलाणं ॥७०॥
एसो मणमत्तगओ, उद्दामो विसयलोलुओ चण्डो । नाणङ्कुसेण धरिओ, नरेण दढसत्तिजुत्तेणं ॥७१॥
निसुणेहि ताव सेणिय !, सीलविणासं पराभिमाणेणं । जायं चिय महिलाए, तं तुज्झ कहेमि फुडवियडं ॥७२॥
जइया आसि जणवओ, काले बहुरोगपीडिओ सव्वो । धन्नग्गामाउ तया, नट्ठो विप्पो सह पियाए ॥७३॥
सो अग्गिलो अडयणा, सा महिला माणिणी महापावा । चत्ता य महारण्णे, विप्पेणं माणदोसेणं ॥७४॥
दिट्ठा य कररुहेणं, नरवइणा अत्तणो कया भज्जा । पुप्फावइण्णनयरे, अच्छइ सोक्खं अणुहवन्ती ॥७५॥
अह अन्नया कयाई, लद्धपसायाए तीए सो राया । चलणेण उत्तिमङ्गे, पहओ रइकेलिसमयम्मि ॥७६॥
अत्थाणम्मि निविट्ठो, पुच्छइ राया बहुस्सुए सव्वे । पाएण जो नरिन्दं, हणइ सिरे तस्स को दण्डो ॥७७॥
तो पण्डिया पवुत्ता, नरवइ ! सो तस्स छिज्जए पाओ । हेमङ्केण निरुद्धा, विप्पेणं जंपमाणा ते ॥७८॥
हेमङ्को भणइ निवं, तस्स उ पायस्स कीरए पूया । भज्जाए वल्लभाए, तम्हा कोवं परिच्चयसु ॥७९॥

पूर्वं कृत्वा बहु पापं मयदानवोऽपि मुनिवृषभः । तपश्चरणप्रभावेन जातो बहुलब्धिसंपन्नः ॥६६॥
एतदन्तरे राजा पृच्छति गणनायकं प्रणम्य । कथं स मयो महायशः ! जात एव लब्धिसंपन्नः ॥६७॥
अन्यदपि श्रुणु स्वामिन् ! या भवति पतिव्रतेह नारी । सा शीलसंयमरता कथय कां गतिं लभते ॥६८॥
तदा भणतीन्द्रभूति र्या दृढशीला पतिव्रता महिला । सीताया र्भवति सदृशी सा स्वर्ग लभते सुकृतार्था ॥६९॥
यथा तुरगरथवराणां प्रस्तरलोहानां पादपानां च । भवति विशेषो नरपते । तथैव पुरुषाणां महिलाणाम् ॥७०॥
एष मनोमत्तगज उद्दामो विषयलोलुपश्चण्डः । ज्ञानाङ्कुशेन धृतो नरेण दृढशक्तियुक्तेन ॥७१॥
निश्रुणु तावच्छ्रेणिक ! शीलविनाशं पराभिमानेन । जातमेव महिलायास्तत्तव कथयामि स्फुटविकटम् ॥७२॥
यदाऽऽसीज्जनपदः काले बहुरोगपीडितः सर्वः । धन्यग्रामात्तदा नष्टो विप्रः सह प्रियया ॥७३॥
सोऽग्निलः कुलटा सा महिला मानिनी महापापा । त्यक्ता च महारण्ये विप्रेण मानदोषेण ॥७४॥
दृष्ट्या च कररुहेण नरपतिनाऽऽत्मनः कृता भार्या । पुष्पावकीर्णनगरे आस्ते सुखमनुभवन्ती ॥७५॥
अथान्दा कदाचिल्लब्धप्रसादया तया स राजा । चरणेनोत्तमाङ्गे प्रहतो रतिक्रीडासमये ॥७६॥
आस्थाने निविष्टः पृच्छति राजा बहुश्रुतान्सर्वान् । पादेन यो नरेन्द्रं हन्ति शिरसि तस्य को दण्डः ॥७७॥
तदा पण्डिताः प्रोक्ता नरपते ! स तस्य छिद्यते पादः । हेमांकेन निरुद्धा विप्रेण जल्पन्तस्ते ॥७८॥
हेमाङ्गो भणति नृपं तस्य तु पादस्य क्रियते पूजा । भार्याया वल्लभायास्तस्मात्कोपं परित्यज ॥७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणिऊण वयणमेयं, हेमङ्को नरवईण तुट्ठेणं । संपाविओ य रिद्धी, अणेगदाणाभिमाणेणं ॥८०॥

तइया हेमंकपुरे, मित्तजसा नाम अच्छइ वराई । सा भग्गवस्स भज्जा, अमोहसरलद्धविजयस्स ॥८१॥

अइदुक्खिया य विहवा, हेमङ्कं पेच्छिऊण धणपुण्णं । सिरिवड्ढियं सुयं सा, भणइ रुयन्ती मह सुणेहि ॥८२॥

ईसत्थागमकुसलो, तुज्झ पिया आसि भग्गवो नामं । धणरिद्धिसंपउत्तो, सव्वनरिन्दाण अइपुज्जो ॥८३॥

संठाविऊण जणणिं, वग्घपुरं सो कमेण संपत्तो । सव्वं कलागमगुणं, सिक्खइ गुरवस्स पासम्मि ॥८४॥

जाओ समत्तविज्जो, तत्थ पुरेसस्स सुन्दरा धूया । छिद्देण य अवहरिउं, वच्चइ सो नियघरहुत्तो ॥८५॥

सीहेन्दुनामधेओ, भाया कन्नाए तीए बलसहिओ । पुरओ अवट्ठिऊणं, जुज्झइ सिरिवड्ढिएण समं ॥८६॥

सीहेन्दुरायपुत्तं, बलसहियं निज्जिणित्तु[1] एगागी । सिरिवड्ढिओ कमेणं, गओ य जणणीए पासम्मि ॥८७॥

विन्नाणलाघवेणं, तोसविओ तेण कररुहो राया । सिरिवड्ढिएण लद्धं, रज्जं चिय पोयणे नयरे ॥८८॥

कालगयम्मि सुकगन्ते, सीहेन्दू वेरिएण [2]उच्छित्तो । निक्खमइ सुरङ्गाए, समयं घरिणीए भयभीओ ॥८९॥

एक्कोदराए सरणं, पोयणनयरम्मि होहती मज्झं । परिचिन्तिऊण वच्चइ, सिग्घं तम्बोलियसमग्गो ।९०॥

चारयभडेहि रत्तिं, सहसा वित्तासिओ पलायन्तो । भीमोरगेण दट्ठो, सीहेन्दू पोयणासन्ने ॥९१॥

मुच्छाविहलसरीरं, खन्धे काऊण दइययं मुद्धा । संपत्ता विलपन्ती, जत्थ मओ अच्छइ समणो ॥९२॥

श्रुत्वा वचनमेतद्धेमाङ्को नरपतिना तुष्टेन । संप्राप्तश्च ऋद्धिमनेकदानाभिमानेन ॥८०॥

तदा हेमाङ्कपुरे मित्रयशा नामास्ते वराकी । सा भार्गवस्य भार्याऽमोघशरलब्धविजयस्य ॥८१॥

अतिदुःखिता च विधवा हेमाङ्कं दृष्ट्वा धनपूर्णम् । श्रीवर्धितं सुतं सा भणति रुदन्ती मम श्रुणु ॥८२॥

इश्वस्त्रागमकुशलस्तव पिताऽऽसीद्भार्गवो नाम । धनर्द्धिसंप्रयुक्तः सर्वनरेन्द्राणामतिपूज्यः ॥८३॥

संस्थाप्य जननीं व्याघ्रपुरं स क्रमेण संप्राप्तः । सर्वं कलागमगुणं शिक्षते गुरोः पार्श्वे ॥८४॥

जातः समाप्तविद्यस्तत्र पुरेशस्य सुन्दरा दुहिता । छिद्रेण चापहृत्य व्रजति स निजगृहाभिमुखः ॥८५॥

सिंहेन्दुनामधेयो भ्राता कन्यायास्तस्या बलसहितः । पुरतोऽवस्थाय युध्यत श्रीवर्धितेन समम् ॥८६॥

सिंहेन्दु राजपुत्रं बलसहितं निर्जित्यैकाकी । श्रीवर्धितः क्रमेण गतश्च जनन्याः पार्श्वे ॥८७॥

विज्ञानलाघवेन तोषितस्तेन कररुहो राजा । श्रीवर्धितेन लब्धं राज्यमेव पोतने नगरे ॥८८॥

कालगते सुकान्ते सिंहेन्दु वैरिणोत्क्षिप्तः । निष्क्रामति सुरङ्गया समकं गृहिण्या भयभीतः ॥८९॥

एकोदरायाः शरणं पोतननगरे भवत्विति मम । परिचिन्त्य व्रजति शीघ्रं तम्बोलिकसमग्रः ॥९०॥

चारकभटै रात्रौ सहसा वित्रासितः पलायमानः । भीमोरगेण दष्टो सिंहेन्दुः पोतनासन्ने ॥९१॥

मूर्च्छाविह्वलशरीरं स्कन्धे कृत्वा दयितं मुग्धा । संप्राप्ता विलपन्ती यत्र मय आस्ते श्रमणः ॥९२॥

---

१. णिज्जिऊण-प्रत्य० । २. ओच्छन्ने-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिमं ठियस्स मुणिणो, तस्साऽऽसन्ने पियं पमोत्तूणं । समणस्स फुसइ चलणे, पुणरवि दइयं परामुसइ ॥९३॥
मुणिपायपसाएणं, सीहेन्दू जीविओ महुच्छाहो । जाओ पियाए समयं, पणमइ तं साहवं तुट्ठो ॥९४॥
अह उग्गयम्मि सूरे, समत्तनियमं [1] मुणी विणयदत्तो । अहिवन्दिऊण पुच्छइ, सीहेन्दुं महिलियासहियं ॥९५॥
गन्तूण सावओ सो, कहेइ सिरिवद्धियस्स संदेसं । सव्वं फुडवियडत्थं, जं भणियं सीहचन्देणं ॥९६॥
तं सोऊणं रुट्ठो, सहसा सिरिवद्धिओ उ सन्नद्धो । महिलाए उवसमं सो, नीओ मुणिपायमूलम्मि ॥९७॥
तं वन्दिऊण समणं, समयं भज्जाए तत्थ परितुट्ठो । संभासेइ सिणेहं, सालं सिरिवद्धिओ पयओ ॥९८॥
काऊण नरवरिन्दो, पियाइ बन्धूसमागमाणन्दं । निययं तत्थ परभवं, पुच्छइ य मयं महासमणं ॥९९॥
अह तस्स साहइ मुणी, भद्दायरिओ त्ति नाम सोमपुरे । ते वन्दओ नरिन्दो, जाइ सुमालो सह जणेणं ॥१००॥
अह तत्थ कुट्ठवाही, महिला मुणिवन्दणाए अल्लीणा । अग्घायइ दुग्गन्धं, तीए देहुब्भवं राया ॥१०१॥
गेहं गए नरिन्दे, भद्दायरियस्स पायमूलम्मि । सा कुट्ठिणी वयाइं, घेत्तूण सुरालयं पत्ता ॥१०२॥
तत्तो सा चविऊणं, जाया इह सीलरिद्धिसंपन्ना । रूवगुणजोव्वणधरी, जिणवरधम्मुज्जयमईया ॥१०३॥
अह सो सुमालराया, रज्जं दाऊण जेट्ठपुत्तस्स । कुणइ च्चिय संतोसं, अट्ठहिं गामेहिं दढचित्तो ॥१०४॥
अट्ठहिं गामेहिं निवो, संतुट्ठो सावयत्तणगुणेणं । देवो होऊण चुओ, जाओ सिरिवद्धिओ तुहयं ॥१०५॥

प्रतिमा स्थितस्य मुनेस्तस्याऽऽसन्ने प्रियं प्रमुच्य । श्रमणस्य स्पृशति चरणान्पुनरपि दयितं परिस्पृशति ॥९३॥
मुनि पादप्रसादेन सिंहेन्दु र्जीवितो महोत्साहः । जातः प्रियया समकं प्रणमति तं साधुं तुष्टः ॥९४॥
अथोद्गते सूर्ये समाप्तनियमं मुनिं विनयदत्तः । अभिवन्द्य पृच्छति सिंहेन्दुं महिलासहितम् ॥९५॥
गत्वा श्रावकः स कथयति श्रीवर्धितस्य संदेशम् । सर्वं स्फुटविकटार्थं यद्भणितं सिंहचन्द्रेण ॥९६॥
तच्छुत्वारुष्टः सहसा श्रीवर्धितस्तु सन्नद्धः । महिलयोपशमं सो नीतो मुनिपादमूले ॥९७॥
तं वन्दित्वा श्रमणं समकं भार्यया तत्र परितुष्टः । संभाषते स्नेहं शालकं श्रीवर्धितः प्रयतः ॥९८॥
कृत्वा नरवेन्द्रः प्रियादि बन्धुसमागमानन्दम् । निजकं तत्र परभवं पृच्छति च मयं महाश्रमणम् ॥९९॥
अथ तस्य कथयति मुनि भद्राचार्य इति नाम सोमपुरे । तान्वन्दको नरेन्द्रो याति सुमालः सह जनेन ॥१००॥
अथ तत्र कुष्टव्याधि र्महिला मुनिवन्दनाया आलीना । जिघ्रति दुर्गन्धं तस्या देहोद्भवं राजा ॥१०१॥
गृहं गते नरेन्द्रे भट्टाचार्यस्य पादमूले । सा कुष्टिनी व्रतानि गृहीत्वा सुरालयं प्राप्ता ॥१०२॥
ततः सा च्युत्वा जातेह शीलर्द्धिसंपन्ना । रुपगुणयौवनधरी जिनवरधर्मोद्यतमतिका ॥१०३॥
अथ स सुमालराजा राज्यं दत्वा ज्येष्टपुत्राय । करोत्येव संतोषमष्याभिर्ग्रामै र्दढचित्तः ॥१०४॥
अष्याभि र्ग्रामै नृपः संतुष्टः श्रावकत्वगुणेन । देवो भूत्वा च्युतो जातः श्रीवर्धितस्त्वम् ॥१०५॥

---

१. मुणि–प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जणणीए तुज्झ नरवइ !, कहेमि अह पुव्वजम्मसंबन्धं । एक्को च्चिय वइदेसो, पविसइ गामं छुहासत्तो ॥१०६॥
भोयणहरम्मि भत्तं, अलहन्तो भणइ कोवपज्जलिओ । सव्वं डहामि गामं, तत्तो य विणिग्गओ गामा ॥१०७॥
विहिसंजोएण तओ, पज्जलिओ हुयवहेण सो गामो । गामेल्लएहि घेत्तुं, छूढो अग्गीए सो पहिओ ॥१०८॥
मरिऊण समुप्पन्नो, अह सो सूयारिणी नरवइस्स । तत्तो वि य कालगया, जाया अइवेयणे नरए ॥१०९॥
नरयाओ समुत्तरिउं, उप्पन्ना तुज्झ नरवई माया । एसा वि य मित्तजसा, भग्गवघरिणी सुसीलमई ॥११०॥
[1]अह पोयणनयरवरे, वणिीओ गोहाणिओ त्ति नामेणं । भुयवत्ता से महिला, मओ य सो तीए उप्पन्नो ॥१११॥
जायस्स उ भुयवत्ता, रइवद्धणकामिणी गुणविसाला । अह गद्दभाइपीडा, पुरभारुव्वहणयं चेव ॥११२॥
एयं मओ कहेउं, गयणेण गओ जहिच्छियं देसं । सिरिवद्धिओ य राया, पोयणनयरं अह पविट्ठो ॥११३॥
पुण्णोदएण सेणिय !, कस्स वि रज्जं नरस्स उवणमइ । तं चेव उ विवरीयं, हवइह सुकयावसाणम्मि ॥११४॥
एक्कस्स कस्स वि गुरू, लद्धूणं धम्मसंगमो होइ । अन्नस्स गई अहमा, जायइ सनियाणदोसेणं ॥११५॥
एयं नाऊण सया, कायव्वं बुहजणेण अप्पहियं । जं होइ मरणकाले, सिवसोग्गइमग्गदेसयरं ॥११६॥

एवं दया-दम-तवोट्ठियसंजमस्स, सोउं जणो मयमहामुणिभासियत्थं ।
सामन्त-सेट्ठिसहिओ सिरिवद्धिओ सो, धम्मं करेइ विमलामलदेहलम्भं ॥११७॥

॥ इइ पउमचरिए मयवक्खाणं नाम सत्तहत्तरं पव्वं समत्तं ॥

जनन्यास्तव नरपते ! कथयाम्यथ पूर्वजन्मसम्बन्धम् । एकैव विदेशः प्रविशति ग्रामं क्षुधासक्तः ॥१०६॥
भोजनगृहे भक्तमलभमानो भणति कोपप्रज्वलितः । सर्वं दहामि ग्रामं ततश्च विनिर्गतो ग्रामात् ॥१०७॥
विधिसंयोगेन ततः प्रज्वलितो हुतवहेन स ग्रामः । ग्रामिणै गृहीत्वा क्षिप्तोऽग्न्यां स पथिकः ॥१०८॥
मृत्वा समुत्पन्नोऽथ स सूपकारिणी नरपतेः । ततोऽपि च कालगता जातातिवेदने नरके ॥१०९॥
नरकात्समुत्तीर्योत्पन्ना तव नरपते ! माता । एषाऽपि च मित्रयशा भार्गवगृहिणी सुशीलमती ॥११०॥
[1]अथ पोतनवरनगरे वणिग् गधानिक इति नाम्ना । भूजपत्रा तस्य महिला, मयश्च तस्यामुत्पन्नः ॥१११॥
जातस्य च भूजपत्रा, रतिवर्धन कामिनी गुणविशाला । अथ गदर्भादिपीडा पुरभारोद्वहनमेव ॥११२॥
एतन्मयः कथयित्वा गगनेन गतो यथेच्छितं देशम् । श्रीवर्धितोऽपि राजा पोतननगरमथ प्रविष्टः ॥११३॥
पुण्योदयेन श्रेणिक ! कस्यापि राज्यं नरस्योपनमति । तदेव तु विपरीतं भवतीह सुकृतावसाने ॥११४॥
एकस्य कस्यापि गुरुं लब्ध्वा धर्मसंगमो भवति । अन्यस्य गतिरधमा जायते सनिदानदोषेण ॥११५॥
एवं ज्ञात्वा सदा कर्त्तव्यं बुधजनेनात्महितम् । यद्भवति मरणकाले शिवसुगतिमार्गदेशकरम् ॥११६॥

एवं दया-दम तपोत्थितसंयमस्य श्रुत्वा जनो मयमहामुनिभाषितार्थम् ।
सामन्त-श्रेष्ठिसहितः श्रीवर्धितः स धर्मं करोति विमलामलदेहलभ्यम् ॥११७॥

॥ इति पद्मचरिते मयव्याख्यानं नाम सप्तसप्ततितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. श्लोक नं. १११/११२ नो संदर्भ बराबर नथी, ए माटे संस्कृत 'पद्मचरित्रं' ८०/२००-२०१ जोवुं.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७८. साएयपुरीवण्णणपव्वं

भत्तार-सुयविओगे, एगंतं दुक्खिया य सा भवणे । अवराइया पलोयइ, दस वि दिसाओ सुदीणमुही ॥१॥
पुत्तस्स दरिसणं सा कङ्खन्ती ताव पेच्छइ गवक्खे । उप्पयनिवयरकेन्तं, एक्कं चिय वायसं सहसा ॥२॥
तं भणइ वायसं सा, जइ मे पुत्तस्स तत्थ गन्तूणं । वत्तं आणेहि लहुं, देहामि य पायसं तुज्झ ॥३॥
एव भणिऊण तो सा, सुमरिय पुत्तस्स बहुगुणं चरियं । कुणइ पलावं कलुणं, मुञ्चन्ती अंसुजलनिवहं ॥४॥

हा वच्छ ! कत्थ देसे, कोमलकर-चरण ! कक्खडे पन्थे ।
परिसक्कसि सीया-ऽऽयव-दुहिओ घरिणीए समसहिओ ॥५॥
मोत्तूण मन्दभग्गा, चिरकालं पुत्त ! पवसिओ सि तुमं ।
[1]इअ दुहियं नियजणणिं, सुविणे वि ममं न संभरसि ॥६॥

एयाणि य अन्नाणि य, पलवन्ती जाव चिट्ठई देवी । ताव य गयणयलाओ, अवइण्णो नारओ सहसा ॥७॥
सेयम्बरपरिहाणो, दीहजडामउडधारिणो [2]भयवं । पविसइ ससंभमाए, अब्भुट्ठाणं कयं तीए ॥८॥
दिन्नासणोवविट्ठो, पेच्छइ अवराइयं पगलियंसुं । काऊण समुल्लावं, पुच्छइ किं दुम्मणा सि तुमं ? ॥९॥
एव भणियाए तो सो, देवरिसी पुच्छिओ कहिं देसे । कालं गमिऊण इहं, समागओ ? साहसु फुडं मे ॥१०॥

---

७८. साकेतपुरीवर्णनपर्वम्

भर्तृ-सुतवियोगे एकान्त दुःखिता च सा भवने । अपराजिता प्रलोकयति दशापि दिशः सुदीनमुखी ॥१॥
पुत्रस्य दर्शनं सा काङ्क्षते तावत्पश्यति गवाक्षे । उत्पातनिपात कुर्वन्तमेकमेव वायसं सहसा ॥२॥
तं भणति वायसं सा यदि मे पुत्रस्य तत्र गत्वा । वार्तामानय लघु ददामि च पायसं तव ॥३॥
एवं भणित्वा तदा सा स्मृत्वा पुत्रस्य बहुगुणं चरितम् । करोति प्रलापं करुणं मुञ्चन्त्यश्रुजलनिवहम् ॥४॥
हा वत्स ! कुत्र देशे, कोमलकरचरण ! कर्कशे पथि । परिसर्पषि शीताऽऽतप दुःखितो गृहिण्याः समसहितः ॥५॥
मुक्त्वा मन्दभाग्यां चिरकालं पुत्र ! प्रवसितोऽसि त्वम् । इह दुःखितां निजजननीं स्वप्नेऽपि मां न स्मरसि ॥६॥
एतानि चान्यानि च प्रलपन्ती यावत्तिष्ठति देवी । तावच्च गगनतलादवतीर्णो नारदो सहसा ॥७॥
श्वेताम्बरपरिधानो दीर्घजटामुकुटधारी भगवान् । प्रविशति ससंभ्रमेणाभ्युत्थानं कृतं तया ॥८॥
दत्ताऽऽसनोपविष्टः पश्यत्यपराजितां प्रगलिताश्रुम् । कृत्वा समुल्लापं पृच्छति किं दुर्मनाऽसि त्वम् ? ॥९॥
एवं भणितया तदा स देवर्षिः पृष्टः कस्मिन्देशे । कालं गमयित्वेह समागतः ? कथय स्फुटं मे ॥१०॥

---

१. अइदुक्खदेहदुहियं सुविणे वि मए न-मु० । २. भवणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह नारओ पवुत्तो, कल्लाणं आसि धायईसण्डे । पुव्विल्ले सुररमणे, नयरे तित्थंकरो जाओ ॥११॥
सुर-असुरेहि नगवरे, कीरन्तो जिणवरस्स अभिसेओ । दिट्ठो मए पमोओ, भावेण य वन्दिओ भयवं ॥१२॥
जिणदरिसणाणुसंगे, गमिउं तेवीस तत्थ [1]वासाइं । जणणिं व भरहभूमिं, सरिऊण इहाऽऽगओ अहयं ॥१३॥
अह तं भणइ सुभणिया, महरिसि ! निसुणेहि दुक्खसंभूई । जं पुच्छिया तुमे हं, तं ते साहिमि भूयत्थं ॥१४॥
भामण्डलसंजोगे [2]पव्वइए दसरहे सह भडेहिं । रामो पियाए समयं, विणिग्गओ लक्खणस[3]मग्गो ॥१५॥
सीयाए अवहियाए, जाओ सह कइवरेहि संजोगो । लङ्काहिवेण पहओ, सत्तीए लक्खणो समरे ॥१६॥
लङ्कापुरिं विसल्ला, नीया वि हु लक्खणस्स जीयत्थे । एयं ते परिकहियं सव्वं संखेवओ तुज्झं ॥१७॥
तत्थऽच्छइ वइदेही, बन्दी अइदुक्खिया पइविहूणा । सत्तिपहाराभिहओ, किं व मओ लक्खणकुमारो ? ॥१८॥
तं अज्ज वि एइ न वी, वत्ता संपरिफुडा महं एयं । सुमरन्तियाए हियए, सोगमहादारुणं जायं ॥१९॥
सुणिऊण वयणमेयं, अङ्काओ घत्तिऊण वरवीणं । जाओ उव्विग्गमणो, दीहुस्सासे मुयइ विप्पो ॥२०॥
भणिया य नारएणं, भद्दे ! छड्डेहि दारुणं सोगं । तव पुत्तस्स सयासे, गन्तूणाऽऽणेमि वत्तमहं ॥२१॥
एव भणिउं पयट्टो, वीणा कक्खन्तरे ठवेऊणं । उप्पइय नहयलेणं, लङ्का पत्तो खणद्धेणं ॥२२॥
हियएण मुणइ विप्पो, जइ वत्ता राहवस्स पुच्छेऽहं । तो मे कयाइ दोसं, काहिन्ति निसायरा पावा ॥२३॥

अथ नारदः प्रोक्तः कल्याणमासीद्धातकीखण्डे । पूर्वे सुररमणे नगरे तीर्थंकरो जातः ॥११॥
सुराऽऽसुरै र्नगवरे क्रियमाणो जिनवरस्याभिषेकः । दृष्टो मया प्रमोदो भावेन च वन्दितो भगवान् ॥१२॥
जिनदर्शनानुसंगे गमयित्वा त्रयोविंशतिस्तत्र वर्षाणि । जननीमिव भरतभूमिं स्मृत्वेहागतोऽहम् ॥१३॥
अथ तं भणति सुभणिता महर्षिन् ! निश्रुणु दुःखसंभूतिम् । यत्पृष्टा त्वयाऽहं तत्ते कथयामि भूतार्थम् ॥१४॥
भामण्डलसंयोगे प्रव्रजिते दशरथे सह भटैः । रामः प्रियया समं विनिर्गतो लक्ष्मणसमग्रः ॥१५॥
सीतायामपहृतायां जातः सह कपिवरैः संयोगः । लङ्काधिपेन प्रहतः शक्त्या लक्ष्मणः समरे ॥१६॥
लङ्कापुरिं विशल्या नीताऽपि खलु लक्ष्मणस्य जीवितार्थे । एतत्ते परिकथितं सर्वं संक्षेपतस्तत् ॥१७॥
तत्राऽऽस्ते वैदेही बन्द्यतिदुःखिता पतिविहीना । शक्तिप्रहाराभिहतः किं वा मृतो लक्ष्मणकुमारः ? ॥१८॥
तदद्यापि नैति नापि वार्ता संपरिस्फुटा ममैतत् । स्मरन्त्याः हृदये शोकमहादारुणं जातम् ॥१९॥
श्रुत्वा वचनमेतदङ्काद्गृहीत्वा वरवीणाम् । जात उद्विग्नमना दीर्घोच्छ्वासान्मुञ्चति विप्रः ॥२०॥
भणिता च नारदेन भद्रे ! मुञ्च दारुणं शोकम् । तवपुत्रस्यसकाशे गत्वाऽऽनयामि वार्तामहम् ॥२१॥
एवं भणित्वा प्रवृतो वीणां कक्षान्तरे स्थापयित्वा । उत्पत्य नभस्तलेन लङ्कां प्राप्तः क्षणार्धेन ॥२२॥
हृदयेन मुणति विप्रो यदि वार्ता राघवस्य पृच्छाम्यहम् । तदा मे कदाचिद्दोषं कथयिष्यन्ति निशाचराः पापाः ॥२३॥

---

१. वरिसाइं-प्रत्य० । २. पव्वइओ दासरहो-प्रत्य० । ३. ०समेओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताए च्चिय वेलाए, पुणसरे अङ्गओ सह पियाहिं । कीलइ जलमज्जणयं, गउ व्व समयं करेणूहिं ॥२४॥
सो रावणस्स कुसलं, पुच्छन्तो अङ्गयस्स भिच्चेहिं । नीओ पउमस[1]यासं, दहगीवहिओ त्ति काऊणं ॥२५॥
अब्बंभणं करेन्तो, आसासेऊण पउमणाहेणं । परिपुच्छिओ य अज्जय ! साह तुमं आगओ कत्तो ? ॥२६॥

सो भणइ देव ! निसुणसु, सुयसोगाणलपलित्तहिययाए ।
जणणीए तुज्झ पासं, विसज्जिओ नारओ अहयं ॥२७॥

सीही किसोररहिया, कलभयपरिवज्जिया करेणु व्व । तह सा तुज्झ विओगे, अच्चन्तं दुक्खिया जणणी ॥२८॥
विवइण्णकेसभारा, रोवन्ती दुक्खिया गमइ कालं । जणणी तुज्झ महाजस !, सोगमहासागरे पडिया ॥२९॥
लक्खण ! तुमं पि जणणी, पुत्तविओगग्गि[2]दीवियसरीरा । रोवन्ती अइकलुणं, कालं चिय दुक्खिया गमइ ॥३०॥

नाऽऽहारे न य [3]सयणे, न दिवा न य सव्वरीसु न पओसे ।
खणमवि न उवेन्ति धिइं, अच्चन्तं तुम्ह जणणीओ ॥३१॥

सुणिऊण वयणमेयं, हलहर-नारायणा सुदीणमुहा । रोवन्ता उवसमिया, [4]कह कह वि पवंगमभडेहिं ॥३२॥
तो भणइ नारयं सो, पउमो अइसुन्दरं ववसियं ते । वत्तादाणेणऽम्हं, जणणीणं जीवियं दिन्नं ॥३३॥
सो चेव सुकयपुण्णो, पुरिसो जो कुणइ अभिगओ विणयं । जणणीण अप्पमत्तो, आणावयणं अलङ्घन्तो ॥३४॥
जणणीण कुसलवत्तं, सोऊणं राम-लक्खणा तुट्ठा । पूएन्ति नारयं ते, समयं विज्जाहरभडेहिं ॥३५॥

तस्मिन्नेव समये पद्मसरस्यङ्गदःसह प्रियाभिः । क्रीडति जलमज्जनकं गज इव समकं करेणुभिः ॥२४॥
स रावणस्य कुशलं पृच्छन्नङ्गदस्य भृत्यैः । नीतः पद्मसकाशं दशग्रीवहित इति कृत्वा ॥२५॥
अब्राह्मण्यं कुर्वनाश्वास्य पद्मनाभेन । परिपृष्ट श्चार्यक ! कथय त्वमागतः कुतः ? ॥२६॥
स भणति देव ! निश्रुणु सुतशोकानलदग्धहृदयया । जनन्या तव पार्श्वं विसर्जितो नारदोऽहम् ॥२७॥
सिंही किशोररहिता कलभपरिवर्जिता करेणुरिव । तथा सा तव वियोगेऽत्यन्तं दुःखिता जननी ॥२८॥
विप्रकीर्णकेशभारा रुदन्ती दुःखिता गमयति कालम् । जननी तव महायशः ! शोकमहासागरे पतिता ॥२९॥
लक्ष्मण ! तवापि जननी पुत्रवियोगाग्निदीप्तशरीरा । रुदन्त्यतिकरुणं कालमेव दुःखिता गमयति ॥३०॥
नाऽऽहारे न च शयने न दिवा न च शर्वरिषु न प्रदोषे । क्षणमप्युपयान्ति धृतिमत्यन्तं युवयोर्जनन्योः ॥३१॥
श्रुत्वा वचनमेतद्धलधर-नारायणौ सुदीनमुखौ । रुदत उपशामितौ कथं कथमपि प्लवंगमभटैः ॥३२॥
तदा भणति नारदं स पद्मोऽतिसुन्दरं व्यवसितं त्वया । वार्तादानेनास्माकं जननीभ्यो जीवितं दत्तम् ॥३३॥
स एव सुकृतपुण्यः पुरुषो यः करोति अभिगतो विनयम् । जनन्या अप्रमत्त आज्ञावचनमलङ्घयन् ॥३४॥
जनन्याः कुशलवार्तां श्रुत्वा रामलक्ष्मणौ तुष्टौ । पूज्यमानौ नारदं तौ समकं विद्याधरभटैः ॥३५॥

---

१. ०सयासे, गलगहितो तेहि काऊणं-प्रत्य० । २. ०ग्गिदूमिय०-मु० । ३. सरणे-प्रत्य० । ४. कह कि पवंगममहाभडेहि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयन्तरम्मि पउमो, बिभीसणं भणइ सुहडसामक्खं । अम्हे साएयपुरी, भद्द ! अवस्सेण गन्तव्वं ॥३६॥
सुयसोगाणलतवियाण ताण जणणीण तत्थ गन्तूणं । दरिसणजलेण अम्हे, णिव्व[१]वियव्वाइं अङ्गाइं ॥३७॥
काऊण सिरपणामं, बिभीसणो भणइ सुणह वयणं मे । राहव ! सोलस दियहा, अच्छेयव्वं हं भवणे ॥३८॥
अन्नं पि सामि ! निसुणसु, पडिवत्ताकार[२]णेण साएए । पेसिज्जन्ति नरुत्तम !, दूया भरहस्स तूरन्ता ॥३९॥
राहववयणेण तओ, दूया संपेसिया तुरियवेगा । गन्तूण पणमिऊण य, भरहस्स कहेन्ति पडिवत्तं ॥४०॥
पत्तो हलं समुसलं, रामो चक्कं च लक्खणो धीरो । निहओ लङ्काहिवई, सीयाए समागमो जाओ ॥४१॥
अह बन्धणाउ मुक्का, इन्दइपमुहा भडा उ पव्वइया । लद्धाओ गरुड-केसरिविज्जाओ राम-चक्कीणं ॥४२॥
जाया बिभीसणेणं, समयं च निरन्तर महापीई । लङ्कापुरीए रज्जं, कुणन्ति बल-केसवा मुइया ॥४३॥
एवं राघव-लक्खण-रिद्धी, सुणिऊण हरिसिओ भरहो । तम्बोल-सुगन्धाइसु दूए पूएइ विभवेणं ॥४४॥
घेत्तूण तओ दूए, भरहो जणणीणमुवगओ मूलं । सुयसोगदुक्खियाणं, कहेन्ति वत्ता अपरिसेसा ॥४५॥
सोऊण कुसलवत्ता, सुयाण अभिणन्दियाउ जणणीओ । ताव य अन्ने वि बहू, नयरी विज्जाहरा पत्ता ॥४६॥
अह ते गयणयलत्था, बिभीसणाणाए खेयरा सव्वे । मुञ्चन्ति रयणवुट्ठिं, घरे घरे तीए नयरीए ॥४७॥
अह तत्थ पुरवरीए, विज्जाहरसिप्पिएसु दक्खेसु । सयलभवणाण भूमी, उवलितता रयणकणएणं ॥४८॥

एतदन्तरे पद्मो बिभीषणं भणति सुभटसमक्षम् । अस्माभिः साकेतपुरिं भद्र ! अवश्यं गन्तव्यम् ॥३६॥
सुतशोकानलतप्तानां तासां जननीनां तत्र गत्वा । दर्शनजलेनास्माभि र्निर्वापितव्यान्यङ्गानि ॥३७॥
कृत्वा शिरःप्रणामं बिभीषणो भणति श्रुणु वचनं मे । राघव षोडशदिवसान्यास्तव्यं मम भवने ॥३८॥
अन्यदपि स्वामिन्निश्रुणु प्रतिवार्त्ताकारणेन साकेते । प्रेष्यन्ते नरोत्तम ! दूता भरतस्य त्वरन्माणाः ॥३९॥
राधववचनेन तदा दूताः संप्रैषितास्त्वरितवेगाः । गत्वा प्रणम्य च भरतस्य कथयन्ति प्रतिवार्ताम् ॥४०॥
प्राप्तो हलं समुसलं रामश्चक्रं च लक्ष्मणो धीरः । निहतो लङ्काधिपतिः सीतया समागमो जातः ॥४१॥
अथ बन्धनान्मुक्ता इन्द्रजित्प्रमुखा भटास्तु प्रव्रजिताः । लब्धे गरुड-केसरिविद्ये राम-चक्रिभ्याम् ॥४२॥
जाता बिभीषणेन समकं च निरन्तरं महाप्रीतिः । लङ्कापूर्यां राज्यं कुर्वतो बल-केशवौ मुदितौ ॥४३॥
एवं राघव-लक्ष्मणर्द्धिं श्रुत्वा हर्षितो भरतः । तम्बोल-सुगन्धादिभि र्दूतान्पूजयति विभवेन ॥४४॥
गृहीत्वा ततो दूतान्भरतो जननीनामुपागतो मूलम् । सुतशोकदुःखितानां कथयन्ति वार्तामपरिशेषाम् ॥४५॥
श्रुत्वा कुशलवार्त्तां सुतानामभिनन्दिता जनन्यः । तावच्चान्येऽपि बहवो नगरीं विद्याधराः प्राप्ताः ॥४६॥
अथ ते गगनतलस्था बिभीषणाज्ञया खेचराः सर्वे । मुञ्चन्ति रत्नवृष्टिं गृहे गृहे तस्या नगर्याः ॥४७॥
अथ तत्र पूरवर्यां विद्याधरशिल्पिभि र्दक्षैः । सकलभवनानां भूमिरुपलिप्ता रत्नकनकेन ॥४८॥

---

१. विज्झविय०-मु० । २. ०रणे य सा०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिणवरभवणाणि बहू, सिग्घं चिय निम्मियाइं तुङ्गाइं । पासायसहस्साणि य, अट्ठावयसिहरसरिसाइं ॥४९॥

वरकणयथम्भपउरा, वित्थिण्णा मण्डवा रयणचित्ता ।
रइया समन्तओ वि य, विजयपडागा[1]सु रमणीया ॥५०॥

कञ्चणरयणमयाइं, मोत्तियमालाउलाइं विउलाइं । रेहन्ति तोरणाइं, दिसासु सव्वासु रम्माइं ॥५१॥

सुरवइभवणसमेसुं, लग्गा ण्हवणूसवा जिणहरेसु । नडनट्टगीयवाइय-रवेण अभिणन्दिया अहिया ॥५२॥

तरुतरुणपल्लवुग्गय-नाणाविहकुसुमगन्धपउराइं । छज्जन्ति उववणाइं, कोइलभमरोवगीयाइं ॥५३॥

वावीसु दीहियासु य, कमलुप्पलपुण्डरीयछन्नासु । जिणवरभवणेसु पुणो, रेहइ सा पुरवरी अहियं ॥५४॥

एवं साएयपुरी, सुरनयरिसमा कया दणुवईहिं । रामस्स समक्खाया, अहियं गमणुस्सुगमणस्स ॥५५॥

अचिन्तियं सयलमुवेइ सोभणं, नरस्स तं सुकयफलस्स संगमे ।
अहो जणा ! कुणह तवं सुसंतयं, जहा सुहं विमलयरं निसेवह ॥५६॥

॥ इइ पउमचरिए साएयपुरीवण्णणं नाम अट्ठहत्तरं पव्वं समत्तं ॥

जिनवरभवनानि बहुनि शीघ्रमेव निर्मित्तानि तुङ्गानि । प्रासादसहस्राणि चाष्टापदशिखरसदृशानि ॥४९॥

वरकनकस्तम्भप्रचुरा विस्तीर्णा मण्डपा रत्नविचित्राः । रचिताः समन्ततोऽपि च विजयपताकाभी रमणीयाः ॥५०॥

कञ्चनरत्नमयानि मौक्तिकमालाकुलानि विपुलानि । शोभन्ते तोरणानि दिक्षु सर्वासु रम्याणि ॥५१॥

सुरपतिभवनसमेषु लग्नाः स्नानोत्सवा जिनगृहेषु । नटनाट्यगीतवादितरवेणाभिनन्दिता अधिका ॥५२॥

तरुतरुणपल्लवोद्गतनानाविधकुसुमगन्धप्रचुराणि । राजन्त उपवनानि कोकिलभ्रमरोपगीतानि ॥५३॥

वापीभि दीर्धिकाभिश्च कमलोत्पलपुण्डरिकछन्नाभिः । जिनवरभवनैः पुनः राजते सा पुरवर्यधिकम् ॥५४॥

एवं साकेतपुरी सुरनगरीसमा कृता दनुपतिभिः । रामस्य समाख्याताऽधिकं गमनोत्सुकमनसः ॥५५॥

अचिन्त्यं सकलमुपैति शोभनं नरस्य तं सुकृतफलस्य संगमे ।
अहो जनाः ! कुरुत तपः सुसंततं यथा सुखं विमलतरं निसेवध्वम् ॥५६॥

॥ इति पद्मचरिते साकेतपुरीवर्णनं नामाष्टसप्ततितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. ०गाए रम०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७९. राम-लक्खणसमागमपव्वं

अह सोलसमे दियहे[1], कओवयारा पभायसमयम्मि । राहव-सोमित्ति[2]-सिया पुप्फविमाणं समारूढा ॥१॥
सव्वे वि खेयरभडा, विमाण-रह-गय-तुरङ्गमारूढा । रामेण समं चलिया, साएयपुरी नहयलेणं ॥२॥
पउमङ्कसन्निविट्ठा, पुच्छइ सीया पइं अइमहन्तं । जम्बुद्दीवस्स ठियं, मज्झे किं दीसई एयं ॥३॥
पउमेण पिया भणिया, एत्थ जिणा सुरवरेसु[3] अहिसित्ता । मेरू नाम नगवरो, बहुरयणजलन्तसिहरोहो ॥४॥
जलहरपब्भारनिभं, नाणाविहरुक्खकुसुमफलपउरं । एयं दण्डारण्णं, जत्थ तुमं अवहिया भद्दे ! ॥५॥
एसा वि य कण्णरवा, महानई विमलसलिलकल्लोला । जीसे तडम्मि साहू, सुन्दरि ! पडिलाहिया य तुमे ॥६॥
एसो दीसइ सुन्दरि !, वंसइरी जत्थ मुणिवरिन्दाणं । कुल-देसभूसणाणं, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥७॥
भवणुज्जाणसमिद्धं, एयं तं कुब्बरं पिए ! नयरं । इह वसइ वालिखिल्लो, जणओ कल्लाणमालाए ॥८॥
[4]एयं पि पेच्छ भद्दे !, दसण्णनयरं जहिं कुलिसयन्नो । राया अणन्नदिट्ठी, [5]रूववतिपिया परिव्वसइ ॥९॥
तत्तो वि वइक्कन्ता, भणइ पियं जणयनन्दिणी एसा । दीसइ पुरी पहाणा, कवणा सुरनयरिसंठाणा ॥१०॥
भणिया य राहवेणं, सुन्दरि ! एसा महं हिययइट्ठा । विज्जाहरकयभूसा, साएयपुरी मणभिरामा ॥११॥

---

७९. रामलक्ष्मणसमागमपर्वम्

अथ षोडशे दिवसे कृतोपचाराः प्रभातसमये । राघव-सौमित्रि-सीताः पुष्पकविमानं समारूढाः ॥१॥
सर्वेऽपि खेचरभटा विमानरथगजतुरङ्गमारुढाः । रामेण समं चलिताः साकेतपुरिं नभस्तलेन ॥२॥
पद्माङ्कसन्निविष्टा पृच्छति सीता पतिमतिमहत् । जम्बूद्वीपस्य स्थितं मध्ये किं दृश्यत एतत् ॥३॥
पद्मेन प्रिया भणिताऽत्र जिनाः सुरवरैरभिसिक्ताः । मेरु नाम नगवरो बहुरत्नज्वलच्छिखरौघः ॥४॥
जलधरप्राग्भारनिभं नानाविधवृक्षकुसुमफलप्रचूरम् । एतद्दण्डारण्यं यत्र त्वमपहृता भद्रे ! ॥५॥
एषाऽपि च कर्णरवा महानदी विमलसलिलकल्लोला । यस्यास्तटे साधवः सुन्दरि ! प्रतिलाभिताश्च त्वया ॥६॥
एष दृश्यते सुन्दरि ! वंशगिरि र्यत्र मुनिवरेन्द्राणाम् । कुल-देशभूषणानां केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥७॥
भवनोद्यानसमृद्धमेतत्तत्कुर्बरं प्रिये ! नगरम् । इह वसति वालिखिल्यो जनकः कल्याणमालायाः ॥८॥
एतदपि पश्य भद्रे ! दशकर्णनगरं यत्र कुलिशकर्णः । राजाऽनन्यदृष्टी रूपवतीपिता परिवसति ॥९॥
ततोऽपि व्यतिक्रान्ता भणति प्रियं जनकनन्दिनी एषा । दृश्यते पुरी प्रधाना का सुरनगरी संस्थाना ॥१०॥
भणिता च राघवेन सुन्दरि ! एषा मम हृदयेष्ठा । विद्याधरकृतभूषा साकेतपुरी मनोभिरामा ॥११॥

---

१. दिवसे-प्रत्य० । २. ०त्तिभडा पु०-प्रत्य० । ०त्तिसुया पु०-मु० । ३. ०वरेहिं अहिं०-प्रत्य० । ४. एयं पिच्छसु भद्दे !-प्रत्य० । ५. रूववइपिया-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण समासन्ने, पुप्फविमाणं ससंभमो भरहो । निप्फिडइ गयारूढो बल[१]सहिओ अहिमुहं सिग्घं ॥१२॥
दट्ठूण य एज्जन्तं, भरहं भडचडगरेण पउमाभो । ठावेइ धरणिवट्ठे, पुप्फविमाणं तओइण्णो ॥१३॥
भरहो मत्तगयाओ, ओयरिओ देइ सहरिसो अग्घं । रामेण लक्खणेण य, अवगूढो तिव्वनेहेणं ॥१४॥
संभासिएक्कमेक्का, पुप्फविमाणं [२]पुणो वि आरूढा । पविसन्ति कोसलं ते, विज्जाहरसुहडपरिकिण्णा ॥१५॥
रह-गय-तुरङ्गमेहिं, संघट्टुट्ठेन्तजोहनिवहेहिं । पविसन्तेहि निरुद्धं, गयणयलं महियलं नयरं ॥१६॥
भेरी-मुइङ्ग-तिलिमा-काहल-सङ्खाउलाइं तूराइं । वज्जन्ति घणरवाइं, चारणगन्धव्वमीसाइं ॥१७॥
गय-तुरयहेसिएणं, तूरनिणाएण बन्दिसद्देणं । न [३]सुणंति एक्कमेक्कं, उल्लावं कण्णवडियं पि ॥१८॥
एवं महिड्ढिजुत्ता, हलहर-नारायणा निवइमग्गे । वच्चन्ते नयरजणो आढत्तो पेच्छिउं सव्वो ॥१९॥
नायरवहूहि सिग्घं, भवणगवक्खा निरन्तरा छन्ना । रेहन्ति वयणपङ्कय-सराण रुद्धा व उद्देसा ॥२०॥
अह कोउएण तुरिया, अन्ना अन्नं करेण पेल्लेउं । पेच्छन्ति पणइणीओ, पउमं नारायणसमेयं ॥२१॥
अन्नोन्ना भणइ सही ! सीयासहिओ इमो पउमणाहो । लच्छीहरो वि एसो, हवइ विसल्लाए साहीणो ॥२२॥
सुग्गीवमहाराया, एसो वि य अङ्गओ वरकुमारो । भामण्डलो य हणुओ, नलो य नीलो सुसेणो य ॥२३॥
एए अन्ने य बहू, चन्दोयरनन्दणाइयासुहडा । पेच्छ हला ! देवा इव, महिड्ढिया रूवसंपन्ना ॥२४॥

दृष्ट्वा समासन्ने पुष्कविमानं ससंभ्रमो भरतः । निष्फिटति गजारुढो बलसहितोऽभिमुखं शीघ्रम् ॥१२॥
दृष्ट्वा चायान्तं भरतं भटसमूहेन पद्माभः । स्थापयति धरणिपृष्टे पुष्पकविमानं ततोऽवतीर्णः ॥१३॥
भरतो मत्तगजादवतरितो ददाति नमति सहर्षः अर्ध्य । रामेण लक्ष्मणेन चालिङ्गितस्तीव्रस्नेहेन ॥१४॥
संभाषितैकमेकाः पुष्पविमानं पुनप्यारुढाः । प्रविशन्ति कौशल्यां ते विद्याधरसुभटपरिकीर्णाः ॥१५॥
रथगजतुरङ्गमैः संघटेत्तिष्ठत्सुभटनिवहैः । प्रविशद्भि निरुद्धं गगनतलं महितलं नगरम् ॥१६॥
भेरि-मृदङ्ग-तिलिमा-काहल-शङ्खाकुलानि तूर्याणि । ध्वनन्ति घनरवाणि चारणगान्धर्वमिश्राणि ॥१७॥
गज-तुरगहैषितेन तूर्यनिनादेन बन्दिशब्देन । न श्रुण्वन्त्येकमेकमुल्लापं कर्णपतितमपि ॥१८॥
एवं महर्द्धियुक्तयो र्हलधरनारायणयो र्नृपतिमार्गे । व्रजतयो र्नगरजन आरब्धो दृष्टुं सर्वः ॥१९॥
नागरवधुभिः शीघ्रं भवनगघाक्षा निरन्तराश्च्छन्नाः । राजन्ते वदनपङ्कजसरोभी रुद्धा इवोद्देशाः ॥२०॥
अथ कौतुकेन त्वरिता अन्या अन्याः करेण प्रेर्य । पश्यन्ति प्रणयिन्यः पद्मं नारायणसमेतम् ॥२१॥
अन्योन्या भणति सखि ! सीतासहितोऽयं पद्मनाभः । लक्ष्मीधरोऽप्येष भवति विशल्यायाः स्वाधीनः ॥२२॥
सुग्रीवमहाराजा एषोऽपि चाङ्गदो वरकुमारः । भामण्डलश्च हनुमान्नलश्च नीलः सुषेणश्च ॥२३॥
एत अन्ये च बहवश्चन्द्रोदरनन्दनादयः सुभटाः । पश्य हला ! देवा इव महर्द्धिका रुपसंपन्नाः ॥२४॥

---

१. ०सहिओ सम्मुहो सिग्घं-मु० । २. पुणो समारूढा । पविसंति कोसलाए वि० मु० । ३. सुणेइ एक्कमेक्को-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं ते पउमाई, पेच्छिज्जन्ता य नायरजणेणं । संपत्ता रायघरं, लुलियचलुच्चलणधयसोहं ॥२५॥
सा पेच्छिऊण पुत्ते, घराउ अवराइया समोइण्णा । [१]अह केकई वि देवी, सोमित्ती केगया चेव ॥२६॥
अन्नं भवन्तरं पिव, पत्ताओ पुत्तदरिसणे ताओ । बहुमङ्गलुज्जयाओ, ठियाउ ताणं समासन्ने ॥२७॥
आलोइऊण ताओ, अवइण्णा पुप्फयाउ तूरन्ता । सयलपरिवारसहिया, अह ते जणणीओ पणमन्ति ॥२८॥
सुयदरिसणुस्सुगाहिं, ताहि वि आसासिया सिणेहेणं । परिचुम्बिया य सीसे, पुणो पुणो राम-सोमित्ती ॥२९॥
पण्हुयपओहराओ, जायाओ पुत्तसंगमे ताओ । पुलइयरोमञ्चीओ, तोसेण य वीरजणणीओ ॥३०॥
दिन्नास[२]णोवविट्ठा, समयं जणणीहि राम-सोमित्ती । नाणाकहासु सत्ता, चिट्ठन्ति तहिं परमतुट्ठा ॥३१॥
जं सुवि[३]ऊण विउज्झई, जं च पउत्थस्स दरिसणं होइ[४] । जं मुच्छिओ वि जीवइ, किं न हु अच्छेरयं एयं ॥३२॥

चिर[५]पवसिओ वि दीसइ, चिरपडिलग्गो वि निव्वुइं कुणइ ।
बन्धमगओ वि मुच्चइ, सय त्ति झीणा कहा लोए ॥३३॥
एक्को वि कओ नियमो, पवइ अच्चब्भुयं महासुरलच्छि ।
तम्हा करेह विमलं, धम्मं तित्थंकराण सिवसुहफलयं ॥३४॥

॥ इइ पउमचरिए राम-लक्खण[६]समागमविहाणं नाम एगूणासीयं पव्वं समत्तं ॥

एवं ते पद्मादयः प्रेक्ष्यमाणाश्च नागरजनेन । संप्राप्ता राजगृहं लोलितचलच्चलनध्वजशोभम् ॥२५॥
सा दृष्ट्वा पुत्रान्गृहादपराजिता समवतीर्णा । अथ कैकय्यपि देवी सोमित्री केकया एव ॥२६॥
अन्यं भवान्तरमिव प्राप्ताः पुत्रदर्शने ताः । बहुमङ्गलोद्यताः स्थितास्तेषां समासन्ने ॥२७॥
अवलोक्य ता अवतीर्णाः पुष्पकात्त्वरमाणाः । सकलपरिवार सहिता अथ ते जननीः प्रणमन्ति ॥२८॥
सुतदर्शनोत्सुकाभिस्ताभिरप्याश्वासिताः स्नेहेन । परिचुम्बिताश्च शीर्षे पुनः पुना राम-सौमित्री ॥२९॥
प्रश्नुतपयोधरा जाताः पुत्रसंगमे ताः । पुलकितरोमाञ्च्यस्तोषेण च वीरजनन्यः ॥३०॥
दत्ताऽऽसनोपविष्टाः समकं जननिभी रामसौमित्री । नाना कथासु सक्तास्तिष्ठन्ति तत्र परमतुष्टाः ॥३१॥
यत्सुप्त्वा विबुध्यति यच्च प्रवसितस्य दर्शनं भवति । यन्मूर्च्छितोऽपि जीवति किं न खल्वाश्चर्यमेतत् ॥३२॥
चिरप्रवसितोऽपि दृश्यते चिरप्रतिलग्नोऽपि निवृत्तिं करोति । बन्धनगतोऽपि मुञ्चति सदैति क्षीणा कथा लोके ॥३३॥
एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्नोत्यत्यद्भूतां महासुरलक्ष्मीम् । तस्मात्कुरुत विमलं धर्मं तीर्थकराणां शिवसुखफलदम् ॥३४॥

॥ इति पद्मचरिते राम-लक्ष्मणसमागमविधानं नामैकोनाऽशीतितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. अह कोसल्ला देवी-प्रत्य० । २. ०सणा णिविट्ठा-प्रत्य० । ३. सुणिऊण-प्रत्य० । ४. हवइ-प्रत्य० । ५. नास्तीयं गाथा प्रत्यन्तरयोः । ६. ०णमायाहिं समा० मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८०. भुवणालंकारहत्थिसंखोभणपव्वं

पुणरवि नमिऊण मुणिं, पुच्छइ सिरिवित्थरं मगहराया । हलहर-सोमित्तीणं, कहेइ साहू समासेणं ॥१॥
निसुणेहि सेणिय !, तुमं, हलहर-नारायणाणुभावेणं । नन्दावत्तनिवेसं, बहुदारं गोउरं चेव ॥२॥
सुरभवणसमं गेहं, खिइसारो नाम हवइ पायारो । मेरुस्स चूलिया इव, तह य सभा वेजयन्ती य ॥३॥
साला य विउलसोहा, चक्कमिणं हवइ सुविहिनामेणं । गिरिकूडं पासायं, तुङ्गं अवलोयणं चेव ॥४॥
नामेण वद्धमाणं, चित्तं पेच्छाहरं गिरिसरिच्छं । कुक्कुडअण्डावयवं, कूडं गब्भग्गिहं रम्मं ॥५॥
कप्पतरुसमं दिव्वं, एगत्थम्भं च हवइ पासायं । तस्स पुण सव्वओ च्चिय, ठियाणि देवीण भवणाइं ॥६॥
अह सीहवाहीणी वि य, सेज्जा हरविट्ठरं दिणयराभं । ससिकिरणसन्निभाइं, चमराइं मउयफरिसाइं ॥७॥
वेरुलियविमलदण्डं, छत्तं ससिसन्निहं सुहच्छायं । विसमोइयाउ गयणं लङ्घन्ती पाउयाओ य ॥८॥
वत्थाइ अणग्घाइं, दिव्वाइँ चेव भूसणवराइं । दुब्भेज्जं चिय कवयं, मणिकुण्डलजुवलयं कन्तं ॥९॥
खग्गं गया य चक्कं, कणयारिसिलीमुहा वि य अमोहा । विविहाइ महत्थाइं, अन्नाणि वि एवं[१]मादीणि ॥१०॥
पन्नाससहस्साइं, कोडीणं साहणस्स परिमाणं । एक्का य हवइ कोडी, अब्भहिया पवरधेणूणं ॥११॥

---

८०. भुवनालङ्कारहस्तिसंक्षोभणपर्वम्

पुनरपि नत्वा मुनिं पृच्छति श्रीविस्तरं मगधराजा । हलधर-सौमित्र्योः कथयन्ति साधवः संक्षेपेण ॥१॥
निश्रुणु श्रेणिक ! त्वं हलधरनारायणानुभावेन । नन्दावर्तनिवेशं बहुद्वारं गोपुरमेव ॥२॥
सुरभवनसमं गृहं क्षितिसारो नाम भवति प्राकरः । मेरोश्चूलिकोपमस्तथा च सभा वैजयन्ती च ॥३॥
शाला च विपुलशोभा चक्रमिदं भवति सुविधिनाम्ना । गिरिकूटं प्रासादं तुङ्गमवलोकनमेव ॥४॥
नाम्ना वर्धमानं चित्रं प्रेक्षागृहं गिरिसदृशम् । कुर्कुटाण्डावयवं स्फुटं गर्भगृहं रम्यम् ॥५॥
कल्पतरुसमं दिव्यमेकस्तम्भं च भवति प्रासादम् । तस्य पुनः सर्वत एव स्थितानि देवीनां भवनानि ॥६॥
अथ सिंहवाहिन्यपि च शैय्या हरिविष्टरं दिनकराभम् । शशिकिरणसन्निभानि चामराणि मृदुस्पर्शानि ॥७॥
वैडूर्यविमलदण्डं छत्रं शशिसंनिभं सुखच्छायम् । विषमोदिता गगनं लङ्घयन्ती पादुका च ॥८॥
वस्त्राण्यनर्घ्याणि दिव्यान्येव भूषणवराणि । दुर्भेद्यमेव कवचं मणिकुण्डलयुगलकं कान्तम् ॥९॥
खड्गं गदा च चक्रं कनकारिशिलीमुखा अपि चामोघाः । विविधानि महार्घ्याण्यन्यान्यप्येवमादीनि ॥१०॥
पञ्चाशत्सहस्राणि कोटीनां साधनस्य परिमाणम् । एका च भवति कोटिरभ्यधिका प्रवरधेनूनाम् ॥११॥

---

१. ०माइं पि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरि कुलकोडीओ, अहियाउ कुडुम्बियाण जेट्ठाणं । साएयपुरवरीए, वसन्ति धणरयणपुण्णाओ ॥१२॥
कइलाससिहरसरिसोवमाइ भवणाइ ताण [1]सव्वाणं । बलय-गवा-महिसीहिं, समाउलाइं सुरम्माइं ॥१३॥
पोक्खरिणिदीहियासु य, आरामुज्जाणकाणणसमिद्धा । जिणवरघरेसु रम्मा, देवपुरी चेव साएया ॥१४॥
जिणवरभवणाणि तहिं रामेणं कारियाणि बहुयाणि । हरिसेणेण व तइया, भवियज[2]णाणंदयकराइं ॥१५॥
गाम-पुर-खेड-कव्वड-नयरी सा पट्टणाण मज्झत्था । इन्दपुरी य कया सा, साएया रामदेवेणं ॥१६॥
सव्वो जणो सुरूवो, सव्वो [3]धम-धण्ण-रयणसंपुण्णो । सव्वो करभररहिओ, सव्वो दाणुज्जओ निच्चं ॥१७॥
एक्को त्थ महादोसो, दीसइ फुडपायडो जणवयस्स । परनिन्दासत्तमणो न चयइ निययं चिय सहावं ॥१८॥
लङ्काहिवेण जा वि य, हरिऊणं रामिया धुवं सीया । सा [4]कह रामेण पुणो, ववगयलज्जेण आणीया ॥१९॥
खत्तियकुलजायाणं, पुरिसाणं माणगव्वियमईणं । लोगे दुगुंछणीयं, कम्मं न य एरिसं जुत्तं ॥२०॥
एयन्तरम्मि भरहो, तम्मि य गन्धव्वनट्टगीएणं । न लहइ रइं महप्पा, विसएसु विरत्तगयभावो ॥२१॥
संसारभउव्विग्गो, भरहो परिचिन्तिऊण[5]माढत्तो । विसयासत्तेण मया, न कओ धम्मो सुहनिवासो ॥२२॥
दुक्खेहि माणुसत्तं, लद्धं जलबुब्बुओवमं चवलं । गयकण्णसमा लच्छी, कुसुमसमं जोव्वणं हवइ ॥२३॥
किंपागफलसरिच्छा, भोगा जीयं च सुविणपरितुल्लं । पक्खिसमागमसरिसा, बन्धवनेहा अइदुरन्ता ॥२४॥

सप्तति कुलकोटयोऽधिकाः कुटुम्बिकानां ज्येष्ठानाम् । साकेतपुरवर्यां वसन्ति धनरत्नपूर्णाः ॥१२॥
कैलासशिखरसदृशोपमानि भवनानि तेषां सर्वेषाम् । बलीवर्द-गो-महिषिभिः समाकुलानि सुरम्याणि ॥१३॥
पुष्करिणि-दीर्घिकाभिश्चारामोद्यानकाननसमृद्धा । जिनगृहै रम्या देवपूरीव साकेता ॥१४॥
जिनवरभवनानि तत्र रामेण कारितानि बहूनि । हरिषेणेनैव तदा भविकजनानन्दकराणि ॥१५॥
ग्राम-पुर-खेट-कर्बट-नगरी सा पत्तनानां मध्यस्था । इन्द्रपुरीव कृता सा साकेता रामदेवेन ॥१६॥
सर्वो जनः सुरुपः सर्वो धनधान्यरत्नसंपूर्णः । सर्वः करभररहितः सर्वो दानोद्यतो नित्यम् ॥१७॥
एकोऽत्र महादोषो दृश्यते स्फुटप्रकटो जनपदस्य । परनिन्दासक्तमना न त्यजति नित्यमेव स्वभावम् ॥१८॥
लङ्काधिपेन याऽपि च हृत्वा रमिता ध्रुवं सीता । सा कथं रामेण पुन र्व्यपगतलज्जेनानीता ॥१९॥
क्षत्रियकुलजातानां पुरुषाणां मानगर्वितमतीनाम् । लोके जुगुप्सनीयं कर्म न चैतादशं युक्तम् ॥२०॥
एतदन्तरे भरतस्तस्मिंश्च गंधर्वनाट्यगीतेन । न लभते रतिं महात्मा विषयेषु विरक्तगतभावः ॥२१॥
संसारभयोद्विग्नो भरतः परिचिन्तयितुमारब्धः । विषयासक्तेन मया न कृतो धर्मः सुखनिवासः ॥२२॥
दुःखै र्मनुष्यत्वं लब्धं जलबुद्बुदोपमं चपलम् । गजकर्णसमा लक्ष्मीः कुसुमसमं यौवनं भवति ॥२३॥
किंपाकफलसदृशा भोगा जीवं च स्वप्नपरितुल्यम् । पक्षिसमागमसदृशा बान्धवस्नेहा अतिदुरन्ताः ॥२४॥

---

१. सव्वाइं-मु० । ०जणाणंदियकराइं-प्रत्य० । २. ०जणाणंदियवराइं-मु० । ३. धण-कणय-रयणपरिपुण्णो-मु० । ४. किह-मु० । ५. ०ण आढ०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन्ना हु तायमाई, जे सव्वे उज्झिऊण रज्जाइं। उसभसिरिदेसियत्थं, सुगइपहं ते समोइण्णा ॥२५॥

धण्णा ते बालमुणी, बालत्तणयम्मि गहियसामण्णा। न य नाओ पेम्मरसो, सज्झाए वावडमणेहिं ॥२६॥

भरहाइमहापुरिसा, धन्ना ते जे सिरिं पयहिऊणं। निग्गन्था पव्वइया, पत्ता सिवसासयं सोक्खं ॥२७॥

तरुणत्तणम्मि धम्मं, जइ हं न करेमि सिद्धिसुहगमणं। गहिओ जराए पच्छा, डज्झिस्सं सोगअग्गीणं ॥२८॥

गलगण्डसमाणेसुं, सरीरछीरन्त[1]रावहन्तेसु। थणफोडएसु का वि हु, हवइ रई, मंसपिण्डेसु ? ॥२९॥

तम्बोलर[2]सालिद्धे, भरिए च्चिय दन्तकीडयाण मुहे। केरिसिया हवइ रई, चुम्बिज्जन्ते अहरचम्मे ? ॥३०॥

अन्तो कयारभरिए, बाहिरमट्ठे सभावदुग्गन्धे। को नाम करेज्ज रई, जुवइसरीरे नरो मूढो ? ॥३१॥

संगीयए य रुण्णे, नत्थि विसलेसो बुहेहिं निद्दिट्ठो। उम्मत्तयसमसरिसे, [3]को व गुणो नच्चियव्वम्मि ? ॥३२॥

सुरभोगेसु न तित्तो, [4]जीवो पवरे विमाणवासम्मि। सो किह[5] अवियण्हमणो, माणुसभोगेसु तिप्पिहिइ ॥३३॥

भरहस्स एव दियहा, बहवो वच्चन्ति चिन्तयन्तस्स। बलविरियसमत्थस्स वि, सीहस्स व पञ्जरत्थस्स ॥३४॥

एवं संविग्गमणो, भरहो चिय [6]कइगईए परिमुणिउं। भणिऊण समाढत्तो, पउमो महुरेहिं वयणेहिं ॥३५॥

अम्ह पियरेण जो वि हु, भरह ! तुमं ठाविओ महारज्जे। तं भुञ्जसु निस्सेसं, वसुहं तिसमुद्दपेरन्तं ॥३६॥

एयं सुदरिसणं तुह, वसे य विज्जाहराहिवा सव्वे। अहयं धरेमि छत्तं, मन्ती वि य लक्खणो निययं ॥३७॥

धन्या खलु तातादयो ये सर्वे त्यक्त्वा राज्यादीन्। श्रीऋषभदेशितार्थं सुगतिपथं ते समवतीर्णाः ॥२५॥

धन्यास्ते बालमुनयो बालत्वे गृहीतश्रामण्याः। न च ज्ञातः प्रेमरसः स्वाध्याये व्यापृतमनसैः ॥२६॥

भरतादिमहापुरुषा धन्यास्ते ये श्रियं प्रहाय। निर्ग्रन्थाः प्रव्रजिताः प्राप्ताः शिवशाश्वतं सुखम् ॥२७॥

तरुणत्वे धर्मं यद्यहं न करोमि सिद्धिसुखगमनम्। गृहीतो जरया पश्चाद्धक्ष्यामि शोकाग्निना ॥२८॥

गलगण्डसमानैः शरीरक्षीरान्तरावहद्भिः। स्तनस्फोटैः काऽपि खलु भवति रति मांसपिण्डैः ? ॥२९॥

ताम्बुलरसालिद्धे भृत एव दन्तकीटकानां मुखे। कीदृशा भवति रतिश्चुम्बितेऽधरचर्मणी ॥३०॥

अन्तः कयारभृते बाह्यमृष्टे स्वभावदुर्गन्धे। को नाम कुर्याद्रतिं युवतिशरीरे नरो मूढः ॥३१॥

संगीतके च रुदने नास्ति विशेषो बुधै र्निर्दिष्टः। उन्मत्तसदृशे को वा गुणो नर्तितव्ये ॥३२॥

सुरभोगै र्न तृप्तो जीवः प्रवरे विमानवासे। स कथमवितृष्णमना मनुष्यभोगैस्तर्पिस्यति ॥३३॥

भरतस्यैवं बहवो दिवसा व्रजन्ति चिन्तयतः। बलवीर्यसमर्थस्यापि सींहस्येव पिञ्जरस्थस्य ॥३४॥

एवं संविग्नमनसं भरतं एवं कैकेय्या परिज्ञाय। भणितुं समारब्धः पद्मो मधुरै र्वचनैः ॥३५॥

अस्मत्पित्रा योऽपि हु भरत ! त्वं स्थापितो महाराज्ये। तेन भुङ्ग्धि निःशेषां वसुधां त्रिसमुद्रपर्यन्ताम् ॥३६॥

एतत्सुदर्शनं तव वशे च विद्याधराधिपाः सर्वे। अहं धारयामि छत्रं मन्त्र्यपि च लक्ष्मणो निजकम् ॥३७॥

---

१. ०न्तहावह०-प्रत्य०। २. सलित्ते-मु०। ३. को णु गु०-मु०। ४. जीवो सुरवरविमा०-प्रत्य०। ५. कह-प्रत्य०। ६. केगईए-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होइ तुहं सत्तुहणो, चामरधारो भडा य सन्निहिया । बन्धव [1]करेहि रज्जं, चिरकालं जाइओ सि मया ॥३८॥
जिणिऊण रक्खसवइं इहागओ दरिसणुस्सुओ तुज्झं ।अम्हेहि समं भोगे, भोत्तूणं पव्वइज्जासु ॥३९॥
एव भणन्तं पउमं, भरहो पडिभणइ ताव निसुणेहि । इच्छामि देव ! मोत्तुं, बहुदुक्खकरिं नरिन्दसिरिं ॥४०॥
एव भणियं सुणेउं, अंसुजलाउण्णलोयणा सुहडा । जंपन्ति विम्हियमणा, देव निसा[2]मेह वयणऽम्हं ॥४१॥
तायस्स कुणसु वयणं, पालसु [3]लोयं सुहं अणुहवन्तो । पच्छा तुमं महाजस!, गिण्हेज्जसु जिणमए दिक्खं ॥४२॥
भणइ भरहो नरिन्दो, पिउवय[4]णं पालियं जहावत्तं । परिवालिओ य लोगो, भोगविही माणिया सव्वा ॥४३॥
दिन्नं च महादाणं, साहुजणो तप्पिओ जहिच्छाए । ताएण ववसियं जं, कम्मं तमहं पि ववसामि ॥४४॥
अणुमन्नह मे [5]सिग्घं, विग्घं मा कुणह जाइया तुब्भे । कज्जं सलाहणिज्जं, जह तह वि नरेण कायव्वं ॥४५॥
नन्दाइणो नरिन्दा, बहवो अणियत्तविसय[6]पेम्मा य । बन्धवनेहविनडिया, कालेण अहोगइं पत्ता ॥४६॥
जह इन्धणेण अग्गी, न य [7]तिप्पइ सागरो नइसएसु । तह जीवो वि न तिप्पइ, महएसु वि कामभोगेसु ॥४७॥
एव भणिऊण भरहो, समुट्ठिओ आसणाउ वच्चन्तो । लच्छीहरेण रुद्धो, गरुयसिणेहं वहन्तेणं ॥४८॥
जाव य तस्सुवएसं, देइ च्चिय लक्खणो रइनिमित्तं । ताव य पउमाणाए, समागयाओ पणइणीओ ॥४९॥
एयन्तरम्मि सीया, तह य विसल्ला सुभा य भाणुमई । इन्दुमई रयणमई, लच्छी कन्ता गुणमई य ॥५०॥

भवति तव शत्रुघ्नश्चामरधरो भटाश्च संनिहिताः । बन्धवः कुरु राज्यं चिरकालं याचितोऽसि मया ॥३८॥
जित्वा राक्षसपतिमिहागतो दर्शनोत्सुकस्तव । अस्माभिः समं भोगान्भुक्त्वा प्रवजिष्यषि ॥३९॥
एवं भणन्तं पद्मं भरतः प्रतिभणति तावन्निश्रृणु । इच्छामि देव ! मोक्तुं बहुदुःखकरीं नरेन्द्रश्रीम् ॥४०॥
एवं भणितं श्रुत्वाऽश्रुजालापूर्णलोचनाः सुभटाः । जल्पन्ति विस्मितमनसो देव ! निश्रृणुत वचनमस्माकम् ॥४१॥
तातस्य कुरु वचनं पालय लोकं सुखमनुभवन् । पश्चात्वं महायशः ! ग्रहिष्यसि जिनमते दीक्षाम् ॥४२॥
भणति भरतो नरेन्द्र ! पितृवचनं पालितं यथावृत्तम् । परिपालितश्च लोको भोगविधयो मानिताः सर्वाः ॥४३॥
दत्तं च महादानं साधुजनस्तर्पितो यथेच्छया । तातेन व्यवसितं यत् कर्म तदहमपि व्यवसामि ॥४४॥
अनुमन्यत मां शीघ्रं विघ्नं मा कुरुत याचिता यूयम् । कार्यं श्लाघनीयं यथा तथापि नरेण कर्तव्यम् ॥४५॥
नन्दादयो नरेन्द्र ! बहवोऽनिर्वृत्तविषयप्रेमाणश्च । बन्धवस्नेहनटिताः कालेनाधोगतिं प्राप्ताः ॥४६॥
यथेन्धनेनाग्नि र्न च तृप्यति सागरो नदीशतैः । तथा जीवोऽपि न तृप्यति महद्भिरपि कामभोगैः ॥४७॥
एवं भणित्वा भरतः समुत्थित आसनाद्व्रजन् । लक्ष्मीधरेण रुद्धो गुरुकस्नेहं वहता ॥४८॥
यावच्च तस्मा उपदेशं ददात्येव लक्ष्मणो रतिनिमित्तम् । तावच्च पद्माज्ञया समागताः प्रणयिन्यः ॥४९॥
एतदन्तरे सीता तथा च विशल्या शुभा च भानुमती । इन्दुमती रत्नमती लक्ष्मीः कान्ता गुणमती च ॥५०॥

---

१. करेह-प्रत्य० । २. निसामेहि-प्रत्य० । ३. ०सु वसुहं सु०-प्रत्य० । ४. ०यणं जं जहा य आणत्तं । परि०-प्रत्य० । ५. सिग्घं, मा कुणह विलंबणं महं तुब्भे-प्रत्य० । ६. ०यपिम्माओ-प्रत्य० । ०यपेम्माओ-प्रत्य० । ७. य तप्पइ जलनिही नइ०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नलकुव्वरी कुबेरी, बन्धुमई, चन्दणा सुभद्दा य । सुमणसुया [१] कमलमई, नन्दा कल्लाणमाला य ॥५१॥

तह चेव चन्दकन्ता, सिरिकन्ता [२] गुणमई गुणसमुद्दा । पउमावइमाईओ, उज्जुवई एवमाईओ ॥५२॥

मणनयणहारिणीओ, सव्वालंकारभूसियङ्गीओ । परिवेढिऊण भरहं, ठियाओ हत्थिं व्व करिणीओ ॥५३॥

तं भणइ जणयतणया, देवर ! अम्हं करेहि वयणमिणं । कीलसु जलमज्जणयं, सहिओ य इमासु जुवईसु ॥५४॥

सो एव [३] भणियमेत्तो, भरहो वियलियसिणेहसंबन्धो । दक्खिण्णेण महप्पा, अणिच्छइ पयणुमेत्तेणं ॥५५॥

भरहस्स महिलियाओ, ताव तहिं उवगयाउ सव्वाओ । अवइण्णाउ सरवरं, दइएण समं पहट्ठाओ ॥५६॥

निद्धेसु सुयन्धेसु य, उव्वट्टणएसु विविहवण्णेसु । उव्वट्टिओ महप्पा, ण्हाओ जुवईहि समसहिओ ॥५७॥

उत्तिण्णो य सराओ, जिणवरपूयं [४] च भावओ काउं । नाणाभरणेसु तओ, विभूसिओ, पणइणिसमग्गो ॥५८॥

कील [५] णरईविरत्तो, भरहो तच्चत्थदिट्ठसब्भाओ । वरजुवईहि परिमिओ, सो परमुव्वेयमुव्वहइ ॥५९॥

एयन्तरम्मि जो सो, हत्थी तेलोक्कमण्डणो नामं । [६] खुहिओ आलाणखम्भं, भन्तुं सालाओ निप्फिडिओ ॥६०॥

भणिऊण समाढत्तो, भञ्जन्तो भवणतोरणवराइं । पायारगोयरावण, वित्तासेन्तो य नयरजणं ॥६१॥

पलयघणसद्दसरिसं, तस्स रवं निसुणिऊण सेसगया । विच्छड्डियमयदप्पा, दस वि दिसाओ पलायन्ति ॥६२॥

वरकणयरयणतुङ्गं, भंतूणं नयरगोउरं सहसा । भरहस्स समासन्ने, उवट्ठिओ सो महाहत्थी ॥६३॥

नलकुबरी कुबेरी बन्धुमती चन्दना सुभद्रा च । सुमनसुता कमलमती नन्दा कल्याणमाला च ॥५१॥

तथैव चन्द्रकान्ता श्रीकान्ता गुणती गुणसमुद्रा । पद्मावत्यादयो ऋजुमतिरेवमादयः ॥५२।

मननयनहारिण्यः सर्वालङ्कारभूषिताङ्ग्यः । परिवेष्टय भरतं स्थिता हस्तिनमिव करिण्यः ॥५३॥

तं भणति जनकतनया देवर ! अस्माकं कुरु वचनमिदम् । क्रीड जलमज्जनकं सहितश्चेमाभि र्युवतिभिः ॥५४॥

स एवं भणितमात्रो भरतो विगलितस्नेहसम्बन्धः । दाक्षिण्येन महात्मा नेच्छति प्रतनुमात्रेण ॥५५॥

भरतस्य महिलास्तावत्तत्रोपागताः सर्वाः । अवतीर्णाः सरोवरं दयितेन समं प्रहृष्टाः ॥५६॥

स्निग्धैः सुगन्धैश्चोद्वर्तनै र्विविधवर्णैः । उद्वर्तितो महात्मा स्नातो युवतिभिः समसहितः ॥५७॥

उत्तीर्णश्च सरसो जिनपूजां च भावतः कृत्वा । नानाभरणैस्ततो विभूषितः प्रणयिनिसमग्रः ॥५८॥

क्रीडनरतिविरक्तो भरतस्तथ्यार्थदृष्टसद्भावः । वरयुवतिभिः परिमितः स परमुद्वेगमुद्वहति ॥५९॥

एतदन्तरे यः स हस्ती त्रैलोक्यमंडनो नाम । क्षुभित आलानस्तंभं भङ्क्त्वा शालाया निष्फिटितः ॥६०॥

भ्रान्तुं समारब्धो भञ्जन्भवनतोरणवराणि । प्राकारगोचरावनं वित्रासयंश्च नगरजनम् ॥६१॥

प्रलयघनसदृशं तस्य रवं निश्रुत्य शेषगजाः । विगलितमददर्पा दशापि दिशः प्रलायन्ते ॥६२॥

वरकनकरत्नतुङ्गं भङ्क्त्वा नगरगोपूरं सहसा । भरतस्य समासन्न उपस्थितः स महाहस्ती ॥६३॥

---

१. कमलवई-प्रत्य० । २. सिरिचंदा-प्रत्य० । ३. एत्थ-प्रत्य० । ४. ०पूया य-मु० । ५. कीलइ रई०-प्रत्य० । ६. खुहिउं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण गयवरं तं, जुवईओ भयपवेविरङ्गीओ । भरहं समासियाओ, आइच्चं चेव रस्सीओ ॥६४॥

भरहाहिमुहं हत्थिं, जन्तं दट्ठूण नायरो लोगो । [१]हाहाकारमुहरवं, कुणइ महन्तं परियणो य ॥६५॥

अह ते दोण्णि वि समयं, हलहर-नारायणा गयं दट्ठुं । घेत्तूण समाढत्ता, निम्मज्जियपरियरावेढा ॥६६॥

ताव य भरहनरिन्दं, अणिमिसनय[२]णो गओ पलोएउं । सुमरइ अईयजम्मं, पसन्तहियओ सिढिलगत्तो ॥६७॥

तं भणइ भरहसामी, केण तुमं रोसिओ अणज्जेणं । गयवर पसन्नचित्तो, होहि कसायं परिच्चयसु ॥६८॥

सुणिऊण तस्स वयणं, अहिययरं सोमदंसणसहावो । जाओ मयङ्गओ सो, ताहे संभरइ सुरजम्मं ॥६९॥

एसो महिड्ढिजुत्तो, मित्तो बम्भुत्तरे सुरो पुरा आसि । चविऊण नरवरिन्दो, जाओ बलसत्तिसंपन्नो ॥७०॥

हा कट्ठं अहयं पुण, निन्दियकम्मो तिरिक्खजोणीसु । कह हत्थि समुप्पन्नो, विवेगरहिओ [३]अकयकारी ॥७१॥

तम्हा करेमि संपइ[४], कम्मं तं जेण नियपदुक्खाइं । छेत्तूण देवलोए, भुञ्जामि जहिच्छिए भोगे ॥७२॥

[५]एवं वइक्कन्तभवं सरेउं, जाओ सुसंवेगपरो गइन्दो ।
चिन्तेइ तं एत्थ करेमि कम्मं, जेणं तु ठाणं विमलं लहे[६] हं ॥७३॥

॥ इइ पउमचरिए तिहुयणालंका[७]रसंखोभविहाणं नाम आसीइमं पव्वं समत्तं ॥

दृष्ट्वा गजवरं तं युवतयो भयवेपमानाङ्ग्यः । भरतं समाश्रिता आदित्यमेव रश्मयः ॥६४॥

भरताभिमुखं हस्तिनं यान्तं दृष्ट्वा नागरो लोकः । हाहाकारमुखरवं करोति महान्तं परिजनश्च ॥६५॥

अथ तौ द्वावपि समकं हलधर-नारायणौ गजं दृष्ट्वा । ग्रहितुं समारब्धौ निर्मर्जितपरिकरावेष्टौ ॥६६॥

तावच्च भरतनरेन्द्रमनिमिषनयनो गजः प्रलोक्य । स्मरत्यतीतजन्म प्रशांतहृदयः शिथीलगात्रः ॥६७॥

तं भणति भरतस्वामी केन त्वं रोषितोऽनार्येण । गजवर ! प्रसन्नचित्तो भव कषायं परित्यज ॥६८॥

श्रुत्वा तस्य वचनमधिकतरं सौम्यदर्शनस्वभावः । जातो मतङ्गज स तदा स्मरति सुरजन्म ॥६९॥

एष महर्द्धियुक्तो मित्रो ब्रह्मोत्तरे सुरः पुराऽऽसीत् । च्युत्वा नरवरेन्द्रो जातो बलशक्तिसंपन्नः ॥७०॥

हा कष्टमहं पुनर्निन्दितकर्मातिर्यग्योनिषु । कथं हस्ती समुत्पन्नो विवेकरहितोऽकृतकारी ॥७१॥

तस्मात्करोमि संप्रति कर्म तद्येन निजदुःखानि । छित्वा देवलोके भुनग्मि यथेच्छया भोगान् ॥७२॥

एवं व्यतीक्रान्तभवं स्मृत्वा जातः सुसंवेगपरो गजेन्द्रः ।
चिन्तयति तदत्र करोमि कर्म येन तु स्थानं विमलं लभेऽहम् ॥७३॥

॥ इति पद्मचरिते त्रिभुवनालङ्कारसंक्षोभविधानं नामासीतितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. हाहारावमु०-मु० । २. ०यणो पलोइउं लग्गो । सु०-प्रत्य० । ३. अनय-प्रत्य० । ४. ०इ, तं कम्मं जेण सव्वदु०-प्रत्य० । ५. एवं अइ०-प्रत्य० । ६. लहेमि-मु० । ७. ०रसंखोहणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८१. भुवणालंकारहत्थिसल्लपव्वं

तत्तो सो वरहत्थी, हलहर-नारायणेहि सहिएहिं । अइकढिणदप्पिएहि वि, गहिओ च्चिय सङ्कियमणेहिं ॥१॥
नारायणवय[१]णेणं, नीओ च्चिय मन्तिणेहि निययघरं । संपेसिओ गओ सो, पूयं परिलम्भिओ चेव ॥२॥
दट्टूण गयं गहियं, समयं विज्जाहरेहि सव्वजणो । पउमस्स लक्खणस्स य, बलमाहप्पं पसंसन्ति ॥३॥
सीया य विसल्ला वि य, भरहो सह पणइणीहि निययाहिं । लक्खणरामा य तओ, कुसुमुज्जाणं समुच्चलिया ॥४॥
बहुतूरनिणाएणं, जयसद्दुग्घुट्ठमङ्गलरवेणं । अहिनन्दिया पविट्ठा, राहवभवणं सुरपुराभं ॥५॥
ओयरिय वाहणाणं, उवविट्ठाऽऽहारमण्डवं सव्वे । पडिलाहिऊण साहुं, परियणसहिया तओ जिमिया ॥६॥
ताव य मगहनराहिव[२], सव्वे मंती समागया तत्थ । काऊण सिरपणामं, राहव ! निसुणेहि वयणऽम्हं ॥७॥
जत्तो पभूइ सामिय !, खुभिऊणं सो समागओ हत्थी । तत्तो पभूइ गाढं, झायइ किं किं पि हियएणं ॥८॥
ऊससिऊण सुदीहं निमीलियच्छो करेण महिवेढं । आहणइ धुणइ सीसं, पुणरवि चिन्तावरो होइ ॥९॥
[३]थुव्वन्तो च्चिय कवलं, न य गेण्हइ निट्ठुरं पि भण्णन्तो । झायइ थम्भनिसण्णो, करेण दसणं च वेढेउं॥१०॥
लेप्पमओ इव सुइरं, चिट्ठइ सो अचलियङ्गपच्चङ्गो । किं जीवपरिग्गहिओ, होज्ज न होज्ज ? त्ति संदेहो ॥११॥

---

८१. भुवनालङ्कारहस्तिशल्यपर्वम्

ततः स वरहस्ती हलधरनारायणैः सहितैः । अतिकठिनदर्पितैरपि गृहीत एव शंकितमनोभिः ॥१॥
नारायणवचनेन नीत एव मन्त्रिभि र्निजगृहम् । संप्रेषितो गज स पूजां प्रतिलाभित एव ॥२॥
दृष्ट्वा गजं गृहीतं समकं विद्याधरैः सर्वजनः । पद्मस्य लक्ष्मणस्य च बलमाहात्म्यं प्रशंसन्ति ॥३॥
सीता च विशल्याऽपि च भरतः सह प्रणयिनिभि र्निजाभिः । लक्ष्मणरामौ च ततः कुसुमोद्यानं समुचच्लिताः ॥४॥
बहुतूर्यनिनादेन जयशब्दोद्घुष्टमङ्गलरवेण । अभिनन्दिताः प्रविष्टा राघवभवनं सुरपुराभम् ॥५॥
अवतीर्य वाहनेभ्य उपविष्टा आहारमण्डपं सर्वे । प्रतिलाभ्य साधुं परिजनसहितास्ततो जिमिताः ॥६॥
तावच्च मगधनराधिप ! सर्वे मंत्रिणः समागतास्तत्र । कृत्वा शिरःप्रणामं राघव ! निश्रुणु वचनमस्माकम् ॥७॥
यतः प्रभूति स्वामिन् ! क्षुभित्वा स समागतो हस्ती । ततः प्रभूति गाढं ध्यायति किं किमपि हृदयेन ॥८॥
उच्छ्वस्य सुदीर्घं निमिलिताक्षः करेण महीपृष्टम् । आहन्ति धुनाति शीर्षं पुनरपि चिन्तापरो भवति ॥९॥
स्तूयमान एव कवलं न गृह्णाति निष्ठुरमपि भण्यमानः । ध्यायति स्तम्भनिषण्णः करेण दशने च वेष्टय ॥१०॥
लेप्यमय इव सुचिरं तिष्ठति सोऽचलिताङ्गप्रत्याङ्गः । किं जीवपरिगृहीतो भवेन्न भवेदिति संदेहः ॥११॥

---

१. ०यणेहिं मंतीहिं करी निओ य नियय०-प्रत्य० । २. ०व ताण तहिं आयया महामती । का०-मु० । ३. छुब्भंतो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्तेहि ओसहेहि य, वेज्जपउत्तेहि तस्स सब्भावो । न य लक्खिज्जइ सामिय !, अहि[१] यं वियणाउरो सो उ ॥१२॥
संगीययं पि न सुणइ, न य कुणइ धिइं सरे ण सेज्जासु । न य गामे न य[२] रण्णे, आहारे नेव पाणे य ॥१३॥
एयावत्थसरीरो, वट्टइ तेलोक्कमण्डणो हत्थी । अम्हेहि तुज्झ सिट्ठो, तस्स उवायं पहू कुणसु ॥१४॥

एयं महामन्तिगिरं सुणेउं, ठिया विचिन्ता बल-चक्कपाणी ।
जंपन्ति तेलोक्कविभूसणेणं, हीणं असोभं विमलं पि रज्जं ॥१५॥

॥ इइ पउमचरिए (ति)भुवणालंकारसल्लविहाणं नाम एक्कासीयं पव्वं समत्तं ॥

मन्त्रैरौषधैश्च वैद्यप्रयुक्तैस्तस्य स्वभावः । न च लक्ष्यते स्वामिन्नधिकं वेदनातुरः स तु ॥१२॥
संगीतकमपि न श्रुणोति न च करोति धृतिं सरसि न शय्यासु । न च ग्रामे न चारण्ये आहारे नैव पाने च ॥१३॥
एवदवस्थशरीरो वर्तते त्रैलोक्यमण्डनो हस्ती । अस्माभिस्तव शिष्टस्तस्योपायं प्रभो ! कुरु ॥१४॥

एतन्महामन्त्रिगिरं श्रुत्वा स्थितौ विचिन्त्यन्तौ बल-चक्रपाणी ।
जल्पतस्त्रैलोक्यविभूषणेन हीनमशोभं विमलमपि राज्यम् ॥१५॥

॥ इति पद्मचरिते त्रिभुवनालङ्कारशल्यविधानं नामैकाशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. ०यं चिय लालिओ सो उ-प्रत्य० । २. य नयरे न य हारे णेव-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८२. भुवणालंकाररहत्थिपुव्वभवाणुकित्तणपव्वं

एयन्तरंमि सेणिय !, महामुणी देसभूसणो नामं । कुलभूसणो त्ति बीओ, [1]सुर-असुरनमंसिओ भयवं ॥१॥
जाणं वंसनगवरे, पडिमं चउराणणं उवगयाणं । जणिओ च्चिय उवसग्गो, पुव्वरिवूणं सुरवरेणं ॥२॥
रामेण लक्खणेण य, ताण कए तत्थ पाडिहेरम्मि । सयलजगुज्जोयकरं, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥३॥
तुट्ठेण जक्खवइणा, दिन्नो य वरो महागुणो तइया । जस्स पसाएण जिओ, सत्तू बल-वासुदेवेहिं ॥४॥
ते समणसङ्घसहिया, संपत्ता कोसला [2]पुरिं पवरं । कुसुमामोउज्जाणे, अहिट्ठिया फासुगुद्देसे ॥५॥
अह ते संजमनिलया, साहू सव्वो वि नागरो लोओ । आगन्तूण सुमणसो, वन्दइ परमेण विणएणं ॥६॥
पउमो भाईहि समं, साहूणं दरिसणुज्जुओ पत्तो । जाईसरं गयं तं, पुरओ काऊण निप्फिडिओ ॥७॥
अवराइया य देवी, सोमित्ती केगई तहऽन्नाओ । जुवईओ मुणिवरे ते, वन्दणहेउं उवगयाओ ॥८॥
जगडिज्जन्ततुरङ्गम-हत्थिघडाडोववियडमग्गेणं । बहुसुहडसंपरिवुडो, गओ य पउमो तमुज्जाणं ॥९॥
साहुस्स आयवत्तं, दट्ठुं ते वाहणाउ ओइण्णा । गन्तूण पउममादी, [3]सव्वे पणमन्ति मुणिवसभे ॥१०॥
उवविट्ठाण महियले, ताण मुणी देसभूसणो धम्मं । दुविहं कहेइ भयवं, सागारं तह निरागारं ॥११॥

---

८२. भुवनालङ्कारहस्तिपूर्वभवानुकीर्त्तनपर्वम्

एतदन्तरे श्रेणिक ! महामुनि र्देशभूषणो नाम । कुलभूषण इति द्वितीयः सुरासुरनतो भगवान् ॥१॥
ययो र्वंशनगवरे प्रतिमां चतुराननमुपागतयोः । जनित एवोपसर्गः पूर्वरिपुणा सुरवरेण ॥२॥
रामेण लक्ष्मणेन च तयोः कृते तत्र प्रातिहार्ये । सकलजगदुद्योतकरं केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥३॥
तुष्टेन यक्षपतिना दत्तश्च वरो महागुणस्तदा । यस्य प्रसादेन जितः शत्रु र्बलवासुदेवाभ्याम् ॥४॥
तौ श्रमणसङ्घसहितौ संप्राप्तौ कोशलापुरिं प्रवराम् । कुसुमामोदोद्यानेऽधिष्ठितौ प्रासुकदेशे ॥५॥
अथ तौ संयमनिलयौ साधू सर्वोऽपि नागरो लोकः । आगत्य सुमनसो वन्दति परमेण विनयेन ॥६॥
पद्मो भ्रातृभिः समं साधूनां दर्शनोद्यतः प्राप्तः । जातिस्मरं गजं तं पुरतः कृत्वा निष्फिटितः ॥७॥
अपराजिता च देवी सोमित्रि कैकयी तथान्याः । युवतयो मुनिवरौ तौ वन्दनहेतुमुपागताः ॥८॥
कलहन्तुरङ्गमहस्तिघटाटोपविकटमार्गेण । बहुसुभटसंपरिवृत्तो गतश्च पद्मस्तमुद्यानम् ॥९॥
साधोरातपत्रं दृष्ट्वा ते वाहनादवतीर्णाः । गत्वा पद्मादयः सर्वे प्रणमन्ति मुनिवृषभौ ॥१०॥
उपविष्यनां महीतले तेषां मुनि र्देशभूषणो धर्मम् । द्विविधं कथयति भगवान् साकारं तथा निराकारम् ॥११॥

---

१. सुरायनमं०-प्रत्य० । २. ०पुरी वीरा । कु०-मु० । ३. सव्वे वंदंति मुणिचलणे-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमो गिहवासीणं, सायारोऽणेयपज्जवो धम्मो। होइ निरायारो पुण, निग्गन्थाणं जइवराणं ॥१२॥
लोए अणाइनिहणे, एवं अन्नाणमोहिया जीवा। अणुहोन्ति कुजोणिगया, दुक्खं संसारकन्तारे ॥१३॥
धम्मो परभवबन्धू, ताणं सरणं च होइ जीवस्स। धम्मो सुहाण मूलं, धम्मो कामंदुहा धेणू ॥१४॥
सयलम्मि वि तेलोक्के, जं दव्वं उत्तमं महग्घं च। तं सव्वं धम्मफलं, लभइ [1]नरो उत्तमतवेणं ॥१५॥
जिणवरविहिए मग्गे, धम्मं काऊण निच्छियं पुरिसा। उम्मुक्ककम्मकलुसा, जन्ति सिवं सासयं ठाणं ॥१६॥
एयन्तरंमि पुच्छइ, साहू लच्छीहरो पणमिऊणं। साहेहि गओ खुभिओ, किह पुणरवि उवसमं पत्तो ॥१७॥
अह देसभूसणमुणी, भणइ गओ अइबलेण संखुभिओ। संभरिऊण परभवं, पुणरवि सोमत्तणं पत्तो ॥१८॥
आसि पुरा इह नयरे, नाभी भज्जा य तस्स मरुदेवी। तीए गब्भंमि जिणो, उप्पन्नो सयलजगनाहो ॥१९॥
सुर-असुरनमियचलणो, रज्जं दाऊण जेट्ठपुत्तस्स। चउहि सहस्सेहि समं, पव्वइओ नरवरिन्दाणं ॥२०॥
अह सो वाससहस्सं, ठिओ य पडिमाए जिणवरो धीरो। जत्थुद्देसंमि फुडं, भणइ जणो अज्ज वि पयागं ॥२१॥
जे ते सामियभत्ता, तेण समं दिक्खिया नरवरिन्दा। दुस्सहपरिस्सहेहिं, छम्मासब्भन्तरे भग्गा ॥२२॥
असण-तिसाए किलन्ता, सच्छन्दवया कुधम्मधम्मेसु। जाया वक्कलधारी, तरुफल-मूलासिणो मूढा ॥२३॥
+अह उप्पन्ने नाणे, जिणस्स [2]मरिई तओ य निक्खन्तो। सामण्णा पडिभग्गो, पारिव्वज्जं पवत्तेइ ॥२४॥

प्रथमो गृहवासीनां साकारोऽनेकपर्यायो धर्मः। भवति निराकारः पुन निर्ग्रन्थानां यतिवराणाम् ॥१२॥
लोकेऽनादिनिधन एवमज्ञानमोहिता जीवाः। अनुभवन्ति कुयोनिगता दुःखं संसारकान्तारे ॥१३॥
धर्मो परमबन्धुस्त्राणं शरणं च भवति जीवस्य। धर्मः सुखानां मूलं धर्मः कामदुहा धेनुः ॥१४॥
सकलेऽपि त्रैलोक्ये यद्द्रव्यमुत्तमं महार्घ्यं च। तत्सर्वं धर्मफलं लभते नर उत्तमतपसा ॥१५॥
जिनवरविहिते मार्गे धर्मं कृत्वा निश्चितं पुरुषाः। उन्मुक्तकर्मकालुष्या यान्ति शिवं शाश्वतं स्थानम् ॥१६॥
एतदन्तरे पृच्छति साधुं लक्ष्मीधरः प्रणम्य। कथय गजः क्षुभितः कथं पुनरप्युपशमं प्राप्तः ॥१७॥
अथ देशभूषणमुनि र्भणति गजोऽतिबलेन संक्षुभितः। स्मृत्वा परभवं पुनरपि सौम्यत्वं प्राप्तः ॥१८॥
आसीत्पुरेह नगरे नाभी भार्या च तस्य मरुदेवी। तस्या गर्भे जिन उत्पन्नः सकलजगन्नाथः ॥१९॥
सुरासुरनतचरणो राज्यं दत्वा ज्येष्ठपुत्राय। चतुर्भिः सहस्रैः समं प्रव्रजितो नरवरेन्द्राणाम् ॥२०॥
अथ स वर्षसहस्रं स्थितश्च प्रतिमया जिनवरो धीरः। यत्रोद्देशे स्फुटं भणति जनोऽद्यापि प्रयागम् ॥२१॥
ये ते स्वामिभक्तास्तेन समं दिक्षिता नरवरेन्द्राः। दुःषहपरिषहैश्छण्मासाभ्यन्तरे भग्नाः ॥२२॥
अशन-तृषा-क्लान्ताः स्वच्छन्दव्रताः कुधर्मधर्मेषु। जाता वल्कलधारिणस्तरुफलमूलाशिनो मूढाः ॥२३॥
अथोत्पन्ने ज्ञाने जिनस्य मरीची ततश्च निष्क्रान्तः। श्रामण्यात्प्रतिभग्नः पारिव्राजं प्रवर्तयति ॥२४॥

---

१. नरो जिणवरतवेणं-मु०। २. मिरिई-प्रत्य०।
+ ताणं चिय मज्झेक्को मारीजी अण्णया इमं हार्णि। पारिव्वयपासंडं कुणइ कसाएहिं परिहाणो ॥ इति जे० प्रत्याम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह सुप्पभस्स तइया, पुत्ता पल्हायणाए देवीए । चन्दोदय सूरोदय, पव्वइया जिणवरेण समं ॥२५॥
भग्गा सामण्णाओ, सीसा मारिज्जिनामधेयस्स । होऊणं कालगया, भमिया संसारकन्तारे ॥२६॥
चन्दोदओ कयाई, नागपुरे हरिमइस्स भज्जाए । पल्हायणाए गब्भे, [१] जाओ य कुलंकरो राया ॥२७॥
सूरोदओ वि एत्तो, तंमि पुरे विस्सभूइविप्पेणं । जाओ सुइरयनामो, गब्भंमि य अग्गिकुण्डाए ॥२८॥
राया कुलंकरो वि य, गच्छन्तो तावसाण सेवाए । अह पेच्छइ मुणिव[२] सभं, धीरं अभिणन्दणं नामं ॥२९॥
भणिओऽवहिनाणीणं, जत्थ तुमं जासि तत्थ कट्ठगओ । नवरइ ! पियामहो ते, चिट्ठइ सप्पो समुप्पन्नो ॥३०॥
अह फालियम्मि कट्ठे-रक्खिस्सइ तावसो तुमं दट्ठुं । गन्तूण पेच्छइ निवो, तं चेव तहाविहं सव्वं ॥३१॥
तच्चत्थदरिसणेणं, मुणिवरवयणेण तत्थ पडिबुद्धो । राया इच्छइ काउं, पव्वज्जं जायसंवेगो ॥३२॥
चउपव्वन्तसुईए, तं विप्पो सुइरओ विमोहेइ । जंपइ कुलागओ च्चिय, नरवइ ! तुह पेइओ धम्मो ॥३३॥
रज्जं भोत्तूण चिरं, निययपए ठाविउं सुयं जेट्ठं । पच्छा करेज्जसु हियं, सामिय ! वयणं ममं कुणसु ॥३४॥
एयं चिय वित्तन्तं, सिरिदामा तस्स महिलिया सोउं । चिन्तेइ परपसत्ता, अहयं मुणिया नरिन्देणं ॥३५॥
तेण इमो पव्वज्जं, राया गिण्हेज्ज वा न गिण्हेज्जा । को जाणइ परहिययं, तम्हा मारेमिह विसेणं ॥३६॥
पावा पुरोहिएणं, सह संजुत्ता कुलंकरं ताहे । मारेइ तक्खणं चिय, पसुघाएणं निययगेहे ॥३७॥

अथ सुप्रभस्य तदा पुत्रौ प्रह्लादनया देव्या । चन्द्रोदयः सूर्योदयः प्रव्रजितौ जिनवरेण समम् ॥२५॥
भग्नौ श्रामण्याच्छिष्यौ मारीचिनामधेयस्य । भूत्वा कालगतौ भ्रान्तौ संसार कान्तारे ॥२६॥
चन्द्रोदयः कदाचिन्नागपुरे हरिमते भार्यायाः । प्रह्लादनाया गर्भे जातश्च कुलंकरो राजा ॥२७॥
सूर्योदयोऽपी तस्मिन्पुरे विश्वभूतिविप्रेण । जातः श्रुतिरतनामा गर्भे चाग्निकुण्डायाः ॥२८॥
राजाकुलंकरोऽपि च गच्छंस्तापसानां सेवायाम् । अथ पश्यति मुनिवृषभं धीरमभिनन्दनं नाम ॥२९॥
भणितोऽवधिज्ञानिना यत्र त्वं यासि तत्र काष्टगतः । नरपते ! पितामहस्ते तिष्ठति सर्पः समुत्पन्नः ॥३०॥
अथ स्फाटिते काष्टे रक्षिष्यति तापसस्त्वां दृष्ट्वा । गत्वा पश्यति नृपस्तमेव तथाविधं सर्वम् ॥३१॥
तथ्यार्थदर्शनेन मुनिवरवचनेन तत्र प्रतिबुद्धः । राजेच्छति कृत्वा प्रव्रज्यां जातसंवेगः ॥३२॥
चतुष्पर्वान्तश्रुत्या तं विप्रः श्रुतिरतो विमुह्यति । जल्पति कुलागत एव नरपते ! तव पैतृको धर्मः ॥३३॥
राज्यं भुक्त्वा चिरं निजपदे स्थापयित्वा सुतं ज्येष्ठम् । पश्चात्कुर्या हितं स्वामिन् ! वचनं मम कुरु ॥३४॥
एतदेव वृत्तान्तं श्रीदामा तस्य महिला श्रुत्वा । चिन्तयति परप्रसक्ताहं मुणिता नरेन्द्रेण ॥३५॥
तेनायं प्रव्रज्यां राजा गृह्ण्याद्वा न गृह्ण्यात् । को जानाति परहृदयं तस्मान्मारयामीह विषेण ॥३६॥
पापा पुरोहितेन सह संयुक्ता कुलंकरं तदा । मारयति तत्क्षणमेव पशुघातेन निजगृहे ॥३७॥

---

१. जाओ च्चिय कुलगरो-मु० । २. ०वसहं वीरो अभि०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो कालगओ ताहे, ससओ होऊण पुण तओ मोरो । नागो य समुप्पन्नो, [1]कुररो तह दद्दुरो चेव ॥३८॥
अह सुइरओ वि पुव्वं, मरिऊणं गयवरो समुप्पन्नो । अक्कमइ दद्दुरं तं, सो हत्थी नियपाएणं ॥३९॥
कालगओ उप्पन्नो, मच्छो कालेण सरवरे सुक्के । काएसु खज्जमाणो, मरिऊणं कुक्कुडो जाओ ॥४०॥
मज्जारो पुण हत्थी, तिण्णि भवा कुक्कुडो समुप्पन्नो । माहणमज्जारेणं, खद्धो तिण्णेव जम्माइं ॥४१॥
बम्भणमज्जारो सो, मरिउं मच्छो तओ समुप्पन्नो । इयरो वि सुंसुमारो, जाओ तत्थेव सलिलंमि ॥४२॥
ते सुंसुमारमच्छा, धीवरपुरिसेहि जालपडिबद्धा । आयड्ढिऊण वहिया, बहुहा [2]समया समुप्पन्ना ॥४३॥
जो आसि सुंसुमारो, सो य विणोओ त्ति नामओ विप्पो । इयरो तस्स कणिट्ठो, रमणो रायग्गिहे विप्पो ॥४४॥
मुक्खत्तणेण रमणो, निव्विण्णो निग्गओ य वेयत्थी । लद्धूण गुरुं सिक्खइ, सङ्गोवङ्गे तहिं वेए ॥४५॥
पुणरवि मगहपुरं सो, एक्कोयरदरिसणुस्सुओ रमणो । संपत्तो जक्खहरे, निसासु तत्थालयं कुणइ ॥४६॥
तत्थ विणोयस्स पिया, असोयदत्तस्स दिन्नसंकेया । तं चेव जक्खनिलयं, साहा नामेण संपत्ता ॥४७॥
रमणो तीए समाणं, गहिओ च्चिय दण्डवासियनरेहिं । ताव य ताण [3]सयासं, गओ विणोओ असिं घेत्तुं ॥४८॥
सब्भावम[4]न्तणं सो, सोउं महिलाए कारणे रुट्ठो । घाएइ विणोओ तं, रमणं खग्गेण [5]रयणिम्मि ॥४९॥
गेहं गओ विणोओ, सययं महिलाए रइसुहं भोत्तुं । कालगओ संसारं, परिहिण्डइ दुक्खसंबाहं ॥५०॥

स कालगतस्तदा शशको भूत्वा पुनस्ततो मयूरः । नागश्च समुत्पन्नः कुररस्तथा दर्दुर एव ॥३८॥
अथ श्रुतिरतोऽपि पूर्वं मृत्वा गजवरः समुत्पन्नः । आक्रामति दर्दुर तं स हस्ती निजपादेन ॥३९॥
कालगत उत्पन्नो मत्स्यः कालेन सरोवरे शुष्के । काकैः खाद्यमानो मृत्वा कुर्कुटो जातः ॥४०॥
मार्जारः पुन र्हस्ती त्रयो भवाः कुर्कुटः समुत्पन्नः । माहणमार्जारेणात्तस्त्रिण्येव जन्मनि ॥४१॥
बाह्मणमार्जारः स मृत्वा मत्स्यस्ततः समुत्पन्नः । इतरोऽपि सुंसुमारो जातस्तत्रैव सलिले ॥४२॥
तौ सुंसुमारमत्स्यौ धीवरपुरुषै र्जालप्रतिबद्धौ । आकृष्य हतौ बहुधा समकौ समुत्पन्नौ ॥४३॥
य आसीत्सुंसुमारः स च विनोद इति नामको विप्रः । इतरस्तस्य कनिष्ठो रमणो राजगृहे विप्रः ॥४४॥
मूर्खत्वेन रमणो निर्विण्णो निर्गतश्च वेदार्थी । लब्ध्वा गुरुं शिक्षते साङ्गोपाङ्गांस्तत्र वेदान् ॥४५॥
पुनरपि मगधपुरं स एकोदरदर्शनोत्सुको रमणः । संप्राप्तो यक्षगृहे निशायां तत्रालयं करोति ॥४६॥
तत्र विनोदस्य प्रियाऽशोकदत्तस्य दत्तसंकेता । तमेव यक्षनिलयं शाखा नाम्ना संप्राप्ता ॥४७॥
रमणस्तस्याः समानं गृहीत एव दण्डवासिनरैः । तावच्च तेषां सकाशं गतो विनोदोऽसिं गृहीत्वा ॥४८॥
सद्भावमन्त्रां स श्रुत्वा महिलायाः कारणे रुष्टः । घातयति विनोदस्तं रमणं खड्गेन रजन्याम् ॥४९॥
गृहं गतो विनोदः स्वयं महिलया रतिसुखं भुक्त्वा । कालगतः संसारे परिहिण्डते दुःखसंबाधम् ॥५०॥

---

१. कुररो-प्रत्य० । २. ससुया मु० इसी पाठका अनुसरण पद्मचरितमें है-पर्व ८५ श्लोक ६९ । ३. सयासे प्रत्य० । ४. मन्तरेणं सो सोउं सहकारणेत्य-प्र० । ५. रयणम्मि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह ते विणोय-रमणा, उप्पन्ना महिसया सकम्मेहिं । जाया य अच्छभल्ला, निच्चक्खू वणदवे दड्ढा ॥५१॥
अह ते वाहजुवाणा, जाया हरिणा तओ य सारङ्गा । संतासिएण रण्णे, मुक्का नियएण जूहेणं ॥५२॥
अह नरवई सयंभू, विमलजिणं वन्दिउं पडिनियत्तो । पेच्छइ य हरिणए ते, निययघरं नेइ परितुट्ठो ॥५३॥
पेच्छन्ति वराहारं, दिज्जन्तं मुणिवराण ते हरिणा । जाया पसन्नहियया, नरवइभवणे धिइं पत्ता ॥५४॥
आउक्खए समाहिं, लद्धूण तओ सुरा समुप्पन्ना । चविया पुणो वि तिरिया, भमन्ति विविहासु जोणीसु ॥५५॥
कह कह वि माणुसत्तं , लद्धूण य सो विणोयसारङ्गो । बत्तीसकोडिसामी, जओ धणओ त्ति कम्पिल्ले ॥५६॥
रमणजीओ सारङ्गो, संसारं हिण्डिऊणऽणेगविहं । कम्पिल्ले धणयसुओ, उप्पन्नो भूसणो नामं ॥५७॥
पुत्तसिणेहेण पुणो, सव्वं धणएण तत्थ वरभवणे । देहुवगरणं विविहं, कयं च तस्सेव सन्निहियं ॥५८॥
सेविज्जन्तो निययं, जुवईसु मणोहरासु नियभवणे । न य पेच्छइ उदयन्ते, ससि-सूरे अत्थमन्ते य ॥५९॥
इह पेच्छसु संसारे, सेणिय ! नडचेट्ठियं तु जीवाणं । धणओ य आसि भाया, जाओ च्चिय भूसणस्स पिया ॥६०॥
ताव य निसावसाणे, सोऊणं देवदुन्दुहिनिनायं । देवागमं[1] च दट्ठुं, पडिबुद्धो भूसणो सहसा ॥६१॥
भद्दो सभावसीलो, धम्मरओ तिव्वभावसंजुत्तो । सिरिधरमुणिस्स[2] पासे, वन्दणहेउं अह पयट्टो ॥६२॥
सो[3] तत्थ पविसरन्तोऽसोगवणे तक्खणंमि उरगेणं । दट्ठो च्चिय कालगओ, माहिन्दे सुरवरो जाओ ॥६३॥

अथ तौ विनोदरमणावुत्पन्नौ महिषौ स्वकर्मभिः । जातौ चर्क्षभल्लौ निश्चक्षू वनदवे दग्धौ ॥५१॥
अथ तौ व्याधयुवानौ जातौ हरिणौ ततश्च सारङ्गौ । संत्रासितेनारण्ये मुक्तौ निजकेन यूथेन ॥५२॥
अथ नरपतिः स्वयंभूर्विमलजिनं वन्द्य प्रतिनिवृत्तः । पश्यति च हरिणौ तौ निजगृहं नयति परितुष्टः ॥५३॥
पश्यतो वराहारं दीयमानं मुनिवराणां तौ हरिणौ । जातौ प्रसन्नहृदयौ नरपतिभवने धृतिं प्राप्तौ ॥५४॥
आयुःक्षये समाधिं लब्ध्वा ततः सुरौ समुत्पन्नौ । च्युतौ पुनरपि तिर्यञ्चौ भ्रमतो विविधासु योनिषु ॥५५॥
कथं कथमपि मनुष्यत्वं लब्ध्वा च स विनोद सारङ्गः । द्वात्रिंशत्कोटिस्वामी जातो धनद इति काम्पिल्ये ॥५६॥
रमणजीवः सारंगः संसारं हिण्डयित्वाऽनेकविधम् । काम्पिल्ये धनदसुत उत्पन्नो भूषणो नाम ॥५७॥
पुत्र स्नेहन पुनः सर्वं धनदेन तत्र वरभवने । देहोपकरणं विविधं कृतं च तस्यैव सन्निहितम् ॥५८॥
सेव्यमानो निजकं युवतिभिर्मनोहराभि र्निजभवने । न च पश्यत्युदयान्तौ शशिसूर्यावस्तमन्तौ च ॥५९॥
इह पश्य श्रेणिक ! नटचेष्टितं तु जीवानाम् । धनदश्चासीद्भ्राता जात एव भूषणस्य पिता ॥६०॥
तावच्च निशावसाने श्रुत्वा दुन्दुभिनिनादम् । देवागमं च दृष्ट्वा प्रतिबुद्धो भूषणः सहसा ॥६१॥
भद्रः स्वभावशीलो धर्मरतस्तीव्रभावसंयुक्तः । श्रीधरमुनेः पार्श्वे वन्दनहेतुमथ प्रवृत्तः ॥६२॥
स तत्र प्रविशन्नशोकवने तत्क्षण उरगेण । दृष्ट एव कालगतो माहिन्द्रे सुरवरो जातः ॥६३॥

---

१. ०गामणं दट्ठुं-मु० । २. पासं-प्रत्य० । ३. तत्थ अवयरंतो-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चविओ पुक्खरदीवे, [१]माहविदेवीए कुच्छिसंभूओ । चन्दाइच्चपुरे सो, पयासजसनन्दणो जाओ ॥६४॥
अमरिन्दरूवसरिसो, नामेण जगज्जुई जुइसमग्गो । संसारपरमभीरू, रज्जंमि अणायरं कुणइ ॥६५॥
तवसीलसमिद्धाणं, साहूणाऽहारदाणपुण्णेणं । मरिऊण य देवकुरुं, गओ य ईसाणकप्पं सो ॥६६॥
सो तत्थ देवसोक्खं, भोत्तुं पलिओवमाइ बहुयाइं । चविओ जम्बुद्दीवे, अवरविदेहे महासमए ॥६७॥
रयणपुरे चक्कहरो, अयलो महिलाए तस्स घरिणीए । गब्भंमि समुप्पन्नो, लोगस्स समूसवो य विभू ॥६८॥
वेरग्गसमावन्नं, चक्की नाऊण अत्तणो पुत्तं । परिणावेइ बला तं, तिण्णि कुमारीसहस्साइं ॥६९॥
सो तेहि लालिओ वि य, मन्नइ [२]धीरो विसोवमे भोगे । महइ च्चिय पव्वज्जं, नवरं एक्केण भावेणं ॥७०॥
केऊरहारकुण्डल-विभूसिओ वरवहूण मज्झत्थो । उवएसं देइ[३] विभू, गुणायरं जिणवरुद्दिट्ठं ॥७१॥
खणभङ्गुरेसु को वि हु, भोगेसु रइं करेज्ज जाणन्तो । किम्पागफलसमेसु य, नियमा पच्छा अपत्थेसु ॥७२॥
सा हवइ सलाहणिया, सत्ती एक्का नरस्स जियलोए । जा महइ तक्खणं चिय, मुत्तिसुहं चञ्चले जीए ॥७३॥
सुणिऊण पणइणीओ, एयं दइएण भासियं धम्मं । उवसन्ताओ ताओ नियमे, गेण्हन्ति जहाणुसत्तीए ॥७४॥
अह सो नरवउपुत्तो, नियसरीरे वि ववगयसिणेहो । छट्ठट्ठमाइएसुं, पुणो वि भावेइ अप्पाणं ॥७५॥
चउसट्ठिसहस्साइं, वरिसाणं अकम्पिओ तवं काउं । कालगओ उववन्नो, देवो बम्भुत्तरे कप्पे ॥७६॥

च्युतः पुष्करद्वीपे माधवीदेव्याः कुक्षिसंभूतः । चन्द्रादित्यपुरे स प्रकाशयशोनन्दनो जातः ॥६४॥
अमरेन्द्ररुपसदृशो नाम्ना जगद्द्युति र्द्युतिसमग्रः । संसारपरमभीरू राज्ये ऽनादरं करोति ॥६५॥
तपःशीलसमृद्धानां साधूनामाहारदानपुण्येन । मृत्वा च देवकुरुं गतश्चेशानकल्पं सः ॥६६॥
स तत्र देवसुखं भुक्त्वा पल्योपमानि बहूनि । च्युतो जम्बूद्वीपे ऽपरविदेहे महासमये ॥६७॥
रत्नपुरे चक्रधरोऽचलो महिलायास्तस्य गृहिण्याः । गर्भे समुत्पन्नो लोकस्य समुत्सवश्च विभुः ॥६८॥
वैराग्यसमापन्नं चक्री ज्ञात्वाऽऽत्मनः पुत्रम् । परिणाययति बलात्तं त्रिणि कुमारीसहस्राणि ॥६९॥
स ताभि र्लालितोऽपि च मन्यते धीरो विषोपमान्भोगान् । काङ्क्षत एव प्रव्रज्यां नवरमेकेन भावेन ॥७०॥
केयूरहारकुण्डलविभूषितो वरवधूनां मध्यस्थः । उपदेशं ददाति विभु र्गुणाकरं जिनवरोपदिष्टम् ॥७१॥
क्षणभङ्गुरेषु कोऽपि खलु भोगेषु रतिं कुर्यात् जानन् । किम्पाकफलसमेषु च नियमा पश्चादप्रशस्तेषु ॥७२॥
सा भवति श्लाघनीया शक्तिरेका नरस्य जीवलोके । या काङ्क्षते तत्क्षणमेव मुक्तिसुखं चञ्चले जीवे ॥७३॥
श्रुत्वा प्रणयिन्य एतद्दयितेन भाषितं धर्मम् । उपशान्ता स्तानियमान्गृह्णन्ति यथानुशक्त्या ॥७४॥
अथ स नरपतिपुत्रो निजशरीरेऽपि विगतस्नेहः । षष्ठाष्टमादिभिः पुनरपि भावयत्यात्मानम् ॥७५॥
चतुषष्ठिसहस्राणि वर्षाणामकम्पितस्तपः कृत्वा । कालगत उत्पन्नो देवो बह्मोत्तरे कल्पे ॥७६॥

---

१. माहवदे०-प्रत्य० । २. वीरो-प्रत्य० । ३. ०इ गुरू, गुणा०-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो सो पुण सो धणओ, भमिउं नाणाविहासु जोणीसु । जम्बूदक्खिणभरहे, पोयणनयरे धणसमिद्धे ॥७७॥
सोअ[1]ग्गिमुहो नामेण बम्भणो तस्स बम्भणीगब्भे । [2]कम्माणिलेरिओ सो उववण्णो मिउमई नामं ॥७८॥
अविणय-जूयाभिरओ, बहुविहअवराहकारगो दुट्ठो । निद्धाडिओ घराओ, पियरेणुवलम्भभीएणं ॥७९॥
दोकप्पडपरिहाणो, हिण्डन्तो मेइणी चिरं कालं । एक्कम्मि घरे सलिलं, मग्गइ तण्हाकिलन्तो सो ॥८०॥
तो बम्भणीए उदयं, दिन्नं चिय तस्स सीयलं सुरहिं । जाओ पसन्नहियओ, पुच्छइ तं मिउमई विप्पो ॥८१॥
दट्ठूण मए सहसा, केण व कज्जेण रुयसि सावित्ती ! । तीए वि य सो भणिओ, मज्झ वि वयणं निसामेहि ॥८२॥
भद्द ! तुमे अणुसरिसो, मज्झ सुओ निग्गओ नियघराओ । जइ कह वि भमन्तेणं, दिट्ठो तो मे परिकहेहि ॥८३॥
भणिया य मिउमई णं, अम्मो ! मा रुयसु हवसु परितुट्ठा । चिरलक्खगो भमेउं, तुज्झ सुओ आगओ सो हं ॥८४॥
सोअ[3]ग्गिमुहस्स पिया, पियपुत्तसमागमे जणियतोसा । पण्हुयपओहरा सा, कुणइ तओ संगमाणन्दं ॥८५॥
सव्वकलागमकुसलो, धुत्ताण य मत्थयट्ठिओ धीरो । [4]जाओवभोगसेवी, जूए अवराजिओ निययं ॥८६॥
तस्स उ वसन्तअमरा, गणिया नामेण रूवसंपन्ना । बीया य हवइ रमणा, इट्ठा कन्ता मिउमइस्स ॥८७॥
जणओ बन्धूहि समं, दारिद्दस्स उ विमोइओ तेणं । माया य कुण्ड[5]लाइसु, विभूसिया पाविया रिद्धी ॥८८॥
एत्तो ससङ्कनयरे, [6]रायहरं चोरियागओ सन्तो । अह नन्दिवद्धमनिवं, जंपतं मिउमई सुणइ ॥८९॥

यः स पुनः स धनदो भ्रान्त्वा नानाविधासु योनिषु । जम्बूदक्षिणभरते पोतननगरे धनसमृद्धे ॥७७॥
शोकाग्निमुखो नाम्ना ब्राह्मणस्तस्य बाह्मणीगर्भे । कर्मानिलेरितः स उत्पन्नो मृदुमति र्नाम ॥७८॥
अविनय-द्युताभिरतो बहुविधापराधाकारको दुष्टः । निर्घाटितो गृहात् पित्रोपालम्भभीतेन ॥७९॥
द्विवस्त्रपरिधानो हिण्डमानोमेदिनीं चीरं कालम् । एकस्मिन्गृहे सलिलं मार्गयति तृष्णाक्लान्तः सः ॥८०॥
तदा ब्राह्मण्योदकं दत्तमेव तस्य शीतलं सुरभिम् । जातः प्रसन्नहृदयः पृच्छति तं मृदुमति र्विप्रः ॥८१॥
दृष्ट्वा मां सहसा केन वा कार्येण रोदिषि सावित्रे ! । तयाऽपि स भणितो ममापि वचनं निशामय ॥८२॥
भद्र ! त्वयानुसदृशो मम सुतो निर्गतो निजगृहात् । यदि कथमपि भ्रमता दृष्टस्तदा मां परिकथय ॥८३॥
भणिता च मृदुमती अम्ब ! मा रोदी र्भव परितुष्य । चिरलक्षको भ्रान्त्वा तव सुत आगतः सोऽहम् ॥८४॥
शोकाग्निमुखस्य प्रिया प्रियपुत्रसमागमे जनिततोषा । प्रश्नुतपयोधरा सा करोति ततः संगमानन्दम् ॥८५॥
सर्वकलागमकुशलो धुर्तानां च मध्यस्थितो धीरः । जातोपभोगसेवी द्युतेऽपराजितो नित्यम् ॥८६॥
तस्य तु वसन्तामरा गणिका नाम्ना रुपसंपन्ना । द्वितीया च भवति रमणेष्या कान्ता मृदुमतेः ॥८७॥
जनको बन्धुभिः समं दारिद्रात्तु विमोचितस्तेन । माता च कुण्डलादिभि र्विभूषिता प्राप्ता ऋद्धिम् ॥८८॥
इतः शशाङ्कनगरे राजगृहं चौरिकागतः सन् । अथ नंदिवर्धनृपं जल्पन्तं मृदुमतिः श्रुणोति ॥८९॥

---

१. सउणग्गि०-मु० इस पाठका अनुसरण पद्मचरित में है ८५.११९ । २. कम्माणुलेविओ सो उप्पन्नो मि०-मु० । ३. सउणग्गि०-मु० । ४. राओव०-मु० । ५. ०लाइ, वि०-मु० । ६. रायगिहे चोरियंगओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्दमुहस्स सयासे, मुणिवरवसहस्स अज्ज परमगुणो ।
धम्मो सुओ किसोयरि !, सिवसुहफलओ नियबन्धू ॥९०॥

विसया विसं व देवी, परिणामदुहावहा महासत्तू । तम्हा लएमि दिक्खं, जइ न कुणसि सोगसंबन्धं ॥९१॥

एवं च सिक्खयन्तं, देवी सिरिवद्धणं तओ सोउं । अह तक्खणम्मि बोही, संपत्तो मिउमई ताहे ॥९२॥

संसारभउव्विग्गो, मुणिस्स पासम्मि चन्दवयणस्स । गिण्हइ जिणवरविहियं, पव्वज्जं मिउमई एत्तो ॥९३॥

तप्पइ तवं सुघोरं, जहागमं सील-संजमसमग्गो । मेरु व्व धीरगरुओ, भमइ मही फासुयाहारो ॥९४॥

अवरो पव्वयसिहरे, नामेणं गुणनिही समणसीहो । चिट्ठइ चउरो मासा, वारिसिया विबुहपरिमहिओ ॥९५॥

साहू समत्तनियमो, अन्नुद्देसं गओ नहयलेणं । तं चेव पव्वयवरं, संपत्तो मिउमई तइया ॥९६॥

पविसइ भिक्खाहेउं, रम्मं आलोयनयरनामं सो । समणो समाहियमणो, वन्दिज्जन्तो जणवएणं ॥९७॥

जंपइ जणो इमो सो, जो गिरिसिहरे सुरेहिं परिमहिओ । साहू बहुगुणनिलओ, भयसोगविव्जिओ [1]धीरो ॥९८॥

भुञ्जावेइ जणो तं, सुसायआहार-पाणयादीहिं । सो तत्थ कुणइ मायं, इड्ढीरसगारवनिमित्तं ॥९९॥

जो सो पव्वयसिहरे, सो हु तुमं मुणिवरो भणइ लोगो । अणुमन्नइ तं वयणं, माइल्लो तिव्वरसगिद्धो ॥१००॥

एयं मायासल्लं, जेणं नालोइयं गुरुसयासे । तेण तुमे नागगई, बद्धं तिरियाउयं कम्मं ॥१०१॥

सो मिउमई कयाई, काऊण तवं च सोहु वरकप्पे । उववन्नो कयपुण्णो, जत्थऽभिरामो सुरो वसइ ॥१०२॥

चन्द्रमुखस्य सकाशे मुनिवरवृषभस्याद्य परमगुणः । धर्मः श्रुतः कृशोदरि ! शिवसुखफलदो निजबन्धुः ॥९०॥

विषया विषमिव देवी परिणामदुःखावहा महाशत्रवः । तस्माल्लामि दीक्षां यदि न करोषि शोकसंबन्धम् ॥९१॥

एवं च शिक्षमाणं देवी श्रीवर्धनं ततः श्रुत्वा । अथ तत्क्षणे बोधिं संप्राप्तो मृदुमतिस्तदा ॥९२॥

संसारभयोद्विग्नो मुनेः पार्श्वे चन्द्रवदनस्य । गृह्णाति जिनवरविहितां प्रव्रज्यां मृदुमतिरितः ॥९३॥

तप्यति तपः सुघोरं यथागमं शीलसंयमसमग्रः । मेरुरिव धीरगुरुको भ्रमति महीं प्रासुकाहारः ॥९४॥

अपरः पर्वतशिखरे नाम्ना गुणनिधिः श्रमणसिंहः । तिष्ठति चत्वारो मासानुपोषितो विबुधपरिमहितः ॥९५॥

साधुः समाप्तनियमोऽन्योद्देशं गतो नभस्तलेन । तमेव पर्वतवरं संप्राप्तो मृदुमतिस्तदा ॥९६॥

प्रविशति भिक्षाहेतुं रम्यमालोकनगरनामं सः । श्रमणः समाधितमना वन्द्यमानो जनपदेन ॥९७॥

जल्पति जनोऽयं स यो गिरिशिखरे सुरैः परिमहितः । साधु र्बहुगुणनिलयो भयशोकविवर्जितो धीरः ॥९८॥

भोजयते जनस्तं सुस्वाद्वाहारपानकादिभिः । स तत्र करोति मायामृद्धिरसगारवनिमित्तम् ॥९९॥

यः स पर्वतशिखरे स खलु त्वं मुनिवरो भणति लोकः । अनुमन्यते तद्वचनं मायी तीव्ररसगृद्धः ॥१००॥

एवं मायाशल्यं येन नालोचितं गुरुसकाशे । तेन त्वया नागगते ! बद्धं तिर्यगायुष्यं कर्म ॥१०१॥

स मृदुमतिः कदाचित् कृत्वा तपश्च सहु वरकल्पे । उत्पन्नः कृतपुण्यो यत्राभिरामः सुरो वसति ॥१०२॥

---

१. वीरो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुभवकम्मनिबद्धा, एयाण निरन्तरं [1]पिई परमा । आसि च्चिय सुरलोगे, [2]महिड्ढिजुत्ताण दोण्हं पि ॥१०३॥

सुरव[3]हुयामज्झगया, दिव्वङ्गयतुडियकुण्डलाभरणा । रइसागरोवगाढा, गयं पि कालं न याणन्ति ॥१०४॥

सो मिऊमई कयाई, चइउं मायावसेण इह भरहे । सल्लइवणे निगुञ्जे, उप्पन्नो पव्वए हत्थी ॥१०५॥

घणकसिणकज्जलनिभो, संखुभियसमुद्दसरिसनिग्घोसो । सियदसणो पवणजवो, वेएण कुलुत्तमो सूरो ॥१०६॥

एरावणसमसरिसो सच्छन्दविहारिणो रिवुपणासो । अच्छन्तु ताव मणुया, खेयरवसभाण वि अगेज्झो ॥१०७॥

नाणाविहेसु कीलइ, सिहरनिगुञ्जेसु तरुसमिद्धेसु । अवयरइ माणससरं, लीलायन्तो कमलपुण्णं ॥१०८॥

कइलासपव्वयं पुण, वच्चइ मन्दाइणी विमलतोयं । करिणीसहस्ससहिओ, अणुभवइ जहिच्छियं सोक्खं ॥१०९॥

सो तत्थ गयवरिन्दो, करिवरपरिवारिओ विहरमाणो । सोहइ वणमज्झगओ, गरुडो इव पक्खिसङ्घेहिं ॥११०॥

लङ्काहिवेण दिट्ठो, सो हु इमो गयवरो मयसणाहो । गहिओ य विरइयं से, भुवणालंकारनामं तु ॥१११॥

देवीसु समं सग्गे, रमिऊणं वरविमाणमज्झगओ । कीलइ करिणिसमग्गो, संपइ तिरिओ वि उप्पन्नो ॥११२॥

कम्माण इमा सत्ती, जं जीवा सव्वजोणिउप्पन्ना । सेणिय ! अइदुहिया वि य, तत्थ उ अहियं धिइमुवेन्ति ॥११३॥

[4]चइउं सो अहिरामो, सागेयानयरिसामिओ जाओ । राया भरहो त्ति इमो, फलेण सुविसुद्धधम्मस्स ॥११४॥

[5]मोहमलपडलमुक्को, भोगाण अणायरं गओ एसो । इच्छइ काऊण महा-पव्वज्जं दुक्खमोक्खत्थे ॥११५॥

बहुभवकर्मनिबद्धैतयो र्निरंतरं प्रीतिः परमा । आसीदेव सुरलोके महर्द्धियुक्तयो र्द्वयोरपि ॥१०३॥

सुरवधुकामध्यगतौ दिव्याङ्गदत्रुटितकुण्डलाभरणौ । रतिसागरावगाढौ गतमपि कालं न जानीतः ॥१०४॥

स मृदुमतिः कदाचिच्च्युत्वा मायावशेनेह भरते । शल्यकीवने निकुञ्जे उत्पन्नः पर्वते हस्ती ॥१०५॥

घनकृष्णकज्जलनिभः संक्षुभितसमुद्रसदृशनिर्घोषः । श्वेतदशनः पवनजवो वेगेन कुलोत्तमः शूरः ॥१०६॥

ऐरावणसमसदृशः स्वच्छन्दविहारी रिपुप्रणाशः । आस्ताम् तावन्मनुष्याः खेचरवृषभानामप्यग्राह्यः ॥१०७॥

नानाविधेषु क्रीडति शिखरनिकुञ्जेषु तरुसमृद्धेषु । अवतरति मानससरं लीलायन्कमलपूर्णम् ॥१०८॥

कैलाशपर्वतं पुन र्व्रजति मन्दाकिनीं विमलतोयाम् । करिणिसहस्रसहितोऽनुभवति यथेच्छितं सुखम् ॥१०९॥

स तत्र गजवरेन्द्रः करिवरपरिवारितो विहरमाणः । शोभते वनमध्यगतो गरुड इव पक्षिसङ्घैः ॥११०॥

लङ्काधिपेन दृष्टः स खल्वयं गजवरो मदसनाथः । गृहीतश्च विरचितं तस्य भुवनालङ्कारनाम तु ॥१११॥

देविभिःसमं स्वर्गे रन्त्वा वरविमानमध्यगतः । क्रीडति करिणिसमग्रः संप्रति तिर्यञ्चोऽप्युत्पन्नः ॥११२॥

कर्माणामिमा शक्ति र्यज्जीवाः सर्वयोन्युत्पन्नाः । श्रेणिक ! अतिदुःखिता अपि च तत्र त्वधिकं धृतिमुपयान्ति ॥११३॥

च्युत्वा सोऽभिरामः साकेतनगरिस्वामी जातः । राजाभरत इत्ययं फलेन सुविशुद्धधर्मस्य ॥११४॥

मोहमलपटलमुक्तो भोगानामनादरं गत एषः । इच्छति कर्तुं महाप्रव्रज्यां दुःखमोक्षार्थे ॥११५॥

---

१. रई-मु० । २. महिड्ढिपत्ताण-प्रत्य० । ३. ०वहिया०-प्रत्य० । ४. चइओ मु० । ५. मोहमलविप्पमुक्को-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे ते जिणेण समयं, पवज्जं गिण्हिऊण परिवडिया । चन्दोदय सूरोदय, लग्गा मारीइपासण्डे ॥११६॥
एए ते परिभमिया, संसारं भायरो सुइरकालं । सगकम्मपभावेणं, भरहगइन्दा इमे जाया ॥११७॥
चन्दो कुलंकरो जो, समाहिमरणेण जाओ सारङ्गो । सो हु इमो उप्पन्नो, भरहो राया महिड्ढीओ ॥११८॥
सूरोदओ य विप्पो, जो सो हु कुरङ्गओ तया आसि । कुच्छियकम्मवसेणं, संपइ एसो गओ जाओ ॥११९॥
भन्तूणालाणखम्भं, एसो हु गओ बलेण संखुभिओ । भरहालोए सुमरिय, पुव्वभवं उवसमं पत्तो ॥१२०॥
नाऊणं एवमेयं चवलतडिसमं सव्वसत्ताण जीयं, संजोगा विप्पओगा पुणरवि बहवो होन्ति संबन्धिबन्धा ।
संसारं दुक्खसारं परिभमिय चिरं माणुसत्तं लहेउं, तुब्भेत्थं धम्मकज्जं कुणह सुविमलं बुद्धिमन्ता[१]ऽपमत्ता ॥१२१॥

॥ इइ पउमचरिए तिहुयणालंकारपुव्वभवाणुकित्तणं नाम बासीइमं पव्वं समत्तं ॥

यौ तौ जिनेन समकं प्रव्रज्यां गृहीत्वा प्रतिपतितौः । चन्द्रोदयः सूर्योदयो लग्नौ मरीचिपाखण्डे ॥११६॥
एतौ तौ परिभ्रमितौ संसारं भ्रातरौ सुचिरकालम् । स्वकर्मप्रभावेन भरतगजेन्द्राविमौ जातौ ॥११७॥
चन्द्रः कुलंकरो यः समाधिमरणेन जातः सारङ्गः । स खल्वयमुत्पन्नो भरतो राजा महर्द्धिकः ॥११८॥
सूर्योदयश्च विप्रो यः स खलु कुरङ्गरतदासीत् । कुत्सितकर्मवेशन संप्रत्येष गजो जातः ॥११९॥
भङ्क्त्वालानस्तम्भमेष खलु गजो बलेन संक्षुभितः । भरतालोके स्मृत्वा पूर्वभवमुपशमं प्राप्तः ॥१२०॥
ज्ञात्वेवमेतच्चपलतडित्समं सर्वसत्त्वानां जीवितम् । संयोगा विप्रयोगाः पुनरपि बहवो भवन्ति संबन्धिबन्धाः ॥१२१॥
संसारं दुःखसारं परिभ्रम्य चिरं मानुष्यत्वं लब्ध्वा । यूयमत्र धर्मकार्यं कुरुत सुविमलं बुद्धिमन्तोऽप्रमत्ताः ॥१२२॥

॥ इति पद्मचरिते त्रिभुवनालङ्कारपूर्वभवानुत्कीर्तनं नाम द्व्यसीतितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. ०न्ता समत्ता-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८३. भरह-केगईदिक्खापव्वं

तं मुणिवरस्स वयणं, सुणिऊणं भरहमाइया सुहडा । बहवे संवेगपरा, दिक्खाभिमुहा तओ जाया ॥१॥
एयन्तरंमि भरहो, समुट्ठिओ कुण्डलुज्जलकवोलो । आबद्धञ्जलिमउलो, पणमइ साहुं विगय[1] मोहो ॥२॥
संसारभउव्विग्गो, भरहो तं मुणिवरं भणइ एत्तो । बहुजोणिसहस्साइं, नाह ! भमन्तो य खिन्नो हं ॥३॥
मरणतरङ्गुग्गाए, संसारनईए[2] वुज्झमाणस्स । दिक्खाकरेण साहव !, हत्थालम्बं पयच्छाहि ॥४॥
अणुमन्निओ गुरूणं, भरहो मोत्तूण तत्थऽलंकारं । निस्सेसस[3] ङ्गरहिओ, लुञ्चइ धीरो निययकेसे ॥५॥
वय-नियम-सील-संजम-गुणायरो दिक्खिओ भरहसामी । जाओ महामुणी सो, रायसहस्सेण अहिएणं ॥६॥
साहु त्ति साहु देवा, जंपन्ता संतयं कुसुमवासं । मुञ्चन्ति नहयलत्था, संथुणमाणा भरहसाहुं ॥७॥
अन्ने सवयधम्मं, संवेगपरा लएन्ति नरवसभा । एयन्तरंमि भरहं, पव्वइयं केगई सोउं ॥८॥
मुच्छागया विउद्धा, पुत्तविओयम्मि दुक्खिया कलुणं । धेणु व्व वच्छरहिया, कुणइ पलावं पयलियंसू ॥९॥
सव्वन्तेउरसहिया, रुयमाणी केगई महादेवी । महुरवयणेहि एत्तो, संथविया राम-केसीहिं ॥१०॥
अह सा उत्तमनारी, पडिबुद्धा तिव्वजायसंवेगा । निन्दइ निययसरीरं, बीभच्छं असुइदुग्गन्धं ॥११॥
नारीण सएहि तिहिं, पासे अज्जाए पुहइसच्चाए । पव्वइया दढभावा, सिद्धिपयं उत्तमं पत्ता ॥१२॥
एवं जणो तत्थ सुभावियप्पा, नाणावओवासनिओयचित्तो । जाओ महुच्छहपरो समत्थो, धम्मं च निच्चं विमलं करेइ ॥१३॥

॥ इइ पउमचरिए भरह-केगईदिक्खाभिहाणं तेयासीइमं पव्वं समत्तं ॥

---

८३. भरतकैकयीदिक्षा पर्वम्

तन्मुनिवरस्य वचनं श्रुत्वा भरतादयः सुभटाः । बहवः संवेगपरा दिक्षाभिमुखास्ततो जाताः ॥१॥
एतदन्तरे भरतः समुत्थितः कुण्डलोज्वलकपोलः । आबद्धाञ्जलिमुकुलः प्रणमति साधुं विगतमोहः ॥२॥
संसारभयोद्विग्नो भरतस्तं मुनिवरं भणतीतः । बहुयोनिसहस्राणि नाथ ! भ्रमंश्च खिन्नोऽहम् ॥३॥
मरणतरङ्गोग्रायां संसारनद्यां निमज्जतः । दिक्षाकरेण साधव ! हस्तालम्बनं प्रयच्छत ॥४॥
अनुमतो गुरुणा भरतो मुक्त्वा तत्राऽलङ्कारम् । निःशेषसङ्गरहितो लुञ्चति धीरो निजकेशान् ॥५॥
व्रतनियमशीलसंयमगुणाकरो दिक्षितो भरतस्वामी । जातो महामुनिः स राजसहस्रेणाधिकेन ॥६॥
साध्विति साधु देवा जल्पन्तः सन्तः कुसुमवर्षम् । मुञ्चन्ति नभःस्थलस्थाः संस्तुयमाना भरतसाधुम् ॥७॥
अन्ये श्रावकधर्मं संवेगपरा लान्ति नरवृषभाः । एतदन्तरे भरतं प्रव्रजितं कैकयी श्रुत्वा ॥८॥
मूर्च्छागता विबुद्धा पुत्रवियोगे दुःखिता करुणम् । धेनुरिव वत्सरहिता करोति प्रलापं प्रगलिताश्रुः ॥९॥
सर्वान्तःपुर सहिता रुदन्ती कैकयी महादेवी । मधुरवचनैरित संस्थापिता रामकेशिभ्याम् ॥१०॥
अथ सोत्तमनारी प्रतिबुद्धा तीव्रजातसंवेगा । निन्दति निजशरीरं बिभत्समशुचिदुर्गन्धम् ॥११॥
नारीणां शतैस्त्रिभिः पार्श्वे आर्यायाः पृथ्वीसत्यायाः । प्रव्रजिता दृढभावा सिद्धिपदमुत्तमं प्राप्ता ॥१२॥
एवं जनस्तत्र सुभावितात्मा नानाव्रतोपवासनियोगचित्तः । जातो महोत्साहपरः समर्थो धर्मं च नित्यं विमलं करोति ॥१३॥

॥ इति पद्मचरिते भरत-कैकयी दिक्षाभिधानं त्रयोऽशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. विगययणेहो-प्रत्य० । २. ०ए बुड्डमाणस्स-प्रत्य० । ३. ०सगंधरहिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८४. भरहनिव्वाणगमणपव्वं

सो गयवरो मुणीणं, वयाणि परिलम्भिओ पसन्नप्पा । सागारधम्मसाहिओ[1], जाओ तवसंजमुज्जुत्तो ॥१॥
छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहि मासद्धमासखमणेहिं । भुञ्जइ य एक्कवेलं, पत्ताइं सहावपडियाइं ॥२॥
संसारगमणभीओ, सम्मत्तपरायणो मिउसहावो । विहरइ पूइज्जन्तो, ससंभमं नायरजणेणं ॥३॥
लड्डुगमण्डादीया, भक्खा नाणाविहा रससमिद्धा । तस्स सुपसन्नहियओ, पारणसमए जओ देइ ॥४॥
तणुकम्मसरीरो सो, संवेगालाणणियमसंजमिओ । उग्गं तवोविहाणं, करेइ चत्तारि वरिसाइं ॥५॥
तो अणसणं च काउं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो । [2]बम्भुत्तरे विमाणे, हारङ्गय कुण्डलाहरणो ॥६॥
सुरगणियमज्झगओ उवगीयमाण य नाऽय सएहिं । पुव्वसुहं संपत्तो हत्थी सुकयाणुभावेण ॥७॥
भरहो वि महासमणो, पञ्चमहव्वयधरो समिइजुत्तो । मेरु व्व धीरगरुओ सलिलनिही चेव गम्भीरो ॥८॥
समसत्तुमित्तभावो, समसुहदुक्खो पसंसनिन्दसमो । परिभमइ [3]महिं भरहो, जुगंतरपलोयणो धीरो ॥९॥
भरहो वि तवबलेणं, निस्सेसं कम्मकयवरं डहिउं । केवलनाणसमग्गो, सिवमयलमणुत्तरं पत्तो ॥१०॥
इमा कहा भरहमुणिस्स संगया, सुणन्ति[4] जे वियलियमच्छरा जणा ॥
लहन्ति ते धणबलरिद्धिसंपयं, विसुद्धधिइविमलजसं सुहालयं ॥११॥

॥ इइ पउमचरिए भरहनिव्वाणगमणं नाम चउरासीइमं पव्वं समत्तं ॥

---

८४. भरतनिर्वाणगमन पर्वम्

स गजवरो मुनिना व्रतानि प्रतिलाभितः प्रसन्नात्मा । साकारधर्मसाधितो जातस्तपः संयमोद्यतः ॥१॥
षष्ठाष्टमदशमद्वादशै र्मासार्द्धमासक्षपणैः । भुञ्जते चैकवेलं पत्राणि स्वभावपतितानि ॥२॥
संसारगमनभीतः सम्यक्त्वपरायणो मृदुस्वभावः । विहरति पूज्यमानः ससंभ्रमं नागरजने ॥३॥
लड्डुकमण्डकादिका भक्ष्या नानाविधा रससमृद्धाः । तस्मै सुप्रसन्नहृदयः पारणासमये जनो ददाति ॥४॥
तनुकर्मशरीरः स संवेगालाननियमसंयमितः । उग्रतपोविधानं करोति चत्वारि वर्षाणि ॥५॥
ततोऽनशनं च कृत्वा कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः । ब्रह्मोत्तरे विमाने हाराङ्गदकुण्डलाभरणः ॥६॥
सुरगणिकामध्यगत उपगीयमानश्च नाटकशतैः । पूर्वसुखं संप्राप्तो हस्ती सुकृतानुभावेन ॥७॥
भरतोऽपि महाश्रमणः पञ्चमहाव्रतधरः समितियुक्तः । मेरुरिव धीरगुरुकः सलिलनिधिरिव गंभीरः ॥८॥
समशत्रुमित्रभावः समसुखदुःखः प्रशंसानिन्दासमः । परिभ्रमति महीं भरतो युगान्तरप्रलोचनो धीरः ॥९॥
भरतोऽपि तपोबलेन निःशेषं कर्मकचवरं दग्ध्वा । केवलज्ञानसमग्रः शिवमचलमनुत्तरं प्राप्तः ॥१०॥
इमा कथा भरतमुनेः संगता श्रुण्वन्ति ये विगलितमत्सरा जनाः ॥
लभन्ते ते धनबलर्द्धिसंपद्विशुद्धधृतिविमलयशः सुखालयम् ॥११॥

॥ इति पदमचरिते भरतनिर्वाणगमनं नाम चतुरशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. ०निरतो, तव-संजमकरणउज्जुत्तो-प्रत्य० । २. बंमम्मि वरविमाणे,-प्रत्य० । ३. मही भरहो, चउरंगुलचारणो धीरो-मु० । ४. सुणंतु-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८५. रज्जाहिसेयपव्वं

भरहेण समं धीरा, निक्खन्ता जे तहिं विगयसङ्गा । नामाणि ताण सेणिय !, भणामि उल्लावमेत्तेणं ॥१॥
सिद्धत्थो य नरिन्दो, तहेव रइवद्धणो य [1]सज्झत्थो । घणवाहरहो जम्बूणओ य सल्लो ससङ्को य ॥२॥
विरसो य नन्दणो वि य, नन्दो आणन्दिओ सुबुद्धी य । सूरो य महाबुद्धी, तहव सच्चासओ वीरो ॥३॥
इन्दाभो य सुयधरो, तहेव जणवल्लहो सुन्दो य । पुहईधरो य सुमई, अयलो कोधो हरी चेव ॥४॥
अह कण्डुरू सुमित्तो, संपुण्णिन्दू य धम्ममित्तो य । नघुसो सुन्दरसत्ती, पहायरो चेव पियधम्मो ॥५॥
एए अन्ने य बहू, नरवसभा उज्झिऊण रज्जाइं । [2]सहसाहियसंखाणा, जाया समणा समियपावा ॥६॥
अणुपालियवयनियमा, नाणालद्धीसु सत्तिसंपन्ना । पण्डियमरणोवगया, जहाणुरूवं पयं पत्ता ॥७॥
निक्खन्ते च्चिय भरह, भरहोवमचेट्ठिए गुणे सरिउं । सोगं समुव्वहन्तो, विराहियं लक्खणो भणइ ॥८॥
कत्तो सो भरहमुणी, जो तरुणत्तमि ऊज्झिउं रज्जं । सुकुमालकोमलङ्गो, कह धम्मधुरं समुव्वहइ ॥९॥
सोऊण वयणमेयं, विराहिओ भणइ सामि ! सो भरहो । केवलनाणसमग्गो, पत्तो सिवसासयं ठाणं ॥१०॥
भरहं निव्वाणगयं, पउमाईया भडा नि[3]सुणिऊणं । अइदुक्खिया मुहुत्तं, तत्थ ठिया सोगसंतत्ता ॥११॥

८५. राज्याभिषेकपर्वम्

भरतेन समं धीरा निष्क्रान्ता ये तत्र विगतसङ्गाः । नामानि श्रेणिक ! भणाम्युल्लापमात्रेण ॥१॥
सिद्धार्थश्च नरेन्द्रस्तथैव रतिवर्धनश्च सन्ध्यस्त्रः । घनवाहरथो जम्बूनदश्च शल्यः शशाङ्कश्च ॥२॥
विरसश्च नन्दनोऽपि च नन्द आनन्दितः सुबुद्धिश्च । शूरश्च महाबुद्धिस्तथैव सत्याशयो धीरः ॥३॥
इन्द्राभश्च श्रुतधरस्तथैव जनवल्लभः सुचन्द्रश्च । पृथिवीधरश्च सुमतिश्चः क्रोधो हरिरेव ॥४॥
अथ कण्डुरुः सुमित्रः संपूर्णेन्द्रश्च धर्ममित्रश्च । नघुषः सुन्दरसत्त्वः प्रभाकर एव प्रियधर्मः ॥५॥
एतेऽन्ये च बहवो नरवृषभा उज्झित्वा राज्यानि । सहस्राधिकसंख्यानां जाताः श्रमणाः समितपापाः ॥६॥
अनुपालितव्रतनियमा नानालब्धिभिः शक्तिसंपन्नाः । पण्डितमरणोपगता यथानुरुपं पदं प्राप्ताः ॥७॥
निष्क्रान्त एव भरते भरतोपमचेष्टितान्गुणान्स्मृत्वा । शोकं समुद्वहन् विराधितं लक्ष्मणो भणति ॥८॥
कुतः स भरतमुनि र्यस्तरुणत्वे उज्झित्वा राज्यम् । सुकुमालकोमलाङ्गः कथं धर्मधुरं समुद्वहति ॥९॥
श्रुत्वा वचनमेतद्विराधितो भणति स्वामिन् ! स भरतः । केवलज्ञानसमग्रः प्राप्तः शिवशाश्वतं स्थानम् ।
भरतं निर्वाणगतं पद्मादयो भटा निश्रुत्य । अतिदुःखिता मुहूर्तं तत्र स्थिताः शोकसंतप्ताः ॥११॥

---

१. संघत्थो-प्रत्य० । २. सहसा हियसंपण्णा-प्रत्य० । ३. णिसिऊिणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमे समुट्ठिए ते, निययधराइं गया नरवरिन्दा । काऊण संपहारं, पुणरवि रामालयं पत्ता ॥१२॥
नमिऊण राहवं ते, भणन्ति निसुणेहि सामि ! वयणऽम्हं । रज्जाभिसेयविभवं, अन्नेच्छसु पट्टबन्धं च ॥१३॥
रामो भणइ नरवई, मिलिया तुब्भे हि परम[1] विभवेण । नारायणस्स संपइ, करेह रज्जाभिसेयं से ॥१४॥
भुञ्जन्तो [2] सत्तगुणं इस्सरियं सयलमेइणीनाहो । जं नमइ इमो चलणे, संपइ तं किं न मे रज्जं ? ॥१५॥
सुणीऊण वयणमेयं, सव्वे वि नराहिवा तहिं गन्तुं । पायप्पडणोवगया, भणन्ति लच्छिहरं एत्तो ॥१६॥
अणुमन्निओ गुरूणं, पालेहि वसुन्धरं अपरिसेसं । रज्जाभिसेयविहवं, अन्नेच्छसु सामि ! कीरन्तं ॥१७॥
अणुमन्नियंमि सहसा, काहल[3]-तलिमा-मुइङ्गपउराइं । पहयाइ बहुविहाइं, तूराइं मेहघोसाइं ॥१८॥
वीणा-वंससणाहं, गीयं नड-नट्ट-छत्त-गोज्जेहिं । बन्दिजणेण सहरिसं, जयसद्दालोयणं च कयं ॥१९॥
कणयकलसेहि एत्तो, सव्वुवगरणेसु संपउत्तेसु । अह राम-लक्खणा ते, अहिसित्ता नरवरिन्देहिं ॥२०॥
वरहार-कडय-कुण्डल-मउडालंकारभूसियसरीरा । चन्दणकयङ्गरागा, सुगन्धकुसुमेसु कयमाला ॥२१॥
काऊण महाणन्दं, हलहर-नारायणा [4] दणुवइन्दा । अहिसिञ्चन्ति सुमणसा, एत्तो सीयं महादेविं ॥२२॥
अहिसित्ता य विसल्ला, देवी लच्छीहरस्स हियइट्ठा । जा सयलजीयलोए गुणेहि दूरं समुव्वहइ ॥२३॥
अह ते सुहासणत्था, बन्दिजणुग्घुट्ठजयजयरावा । दाऊण समाढत्ता, रज्जाइं खेयरिन्दाणं ॥२४॥

पद्मे समुत्थिते ते निजगृहाणि गता नरवरेन्द्राः । कृत्वा संप्रधारं पुनरपि रामालयं प्राप्ताः ॥१२॥
नत्वा राघवं ते भणन्ति निश्रुणु स्वामिन् ! वचनमस्माकम् । राज्याभिषेकविभवमन्यदिच्छ पट्टबन्धं च ॥१३॥
रामो भणति नरपतयः ! मिलिता यूयं हि परमविभवेन । नारायणस्य संप्रति कुरत राज्याभिषेकं तस्य ॥१४॥
भुञ्जन्सत्त्वगुणमैश्वर्यं सकलमेदिनीनाथः । यन्नमत्ययं चरणे संप्रति तत्किं न मे राज्यम् ? ॥१५॥
श्रुत्वा वचनमेतत्सर्वेऽपि नराधिपास्तत्र गत्वा । पादपतनोपगता भणन्ति लक्ष्मीधरमितः ॥१६॥
अनुमतो गुरुणा पालय वसुंधरामपरिशेषाम् । राज्याभिषेकविभवमन्यदिच्छ स्वामिन् ! क्रियमाणम् ॥१७॥
अनुमते सहसा काहल-तलिमा-मृदङ्गप्रचूराणि । प्रहतानि बहुविधानि तूर्याणि मेघघोषाणि ॥१८॥
वीणा वंशसनाथं गीतं नट-नाट्य-छत्र-गायकैः । बन्दिजनेन सहर्षं जयशब्दालोचनं च कृतम् ॥१९॥
कनककलशैरितः सर्वोपकरणेषु संप्रयुक्तेषु । अथ राम-लक्ष्मणौ तावभिषिक्तौ नरवरेन्द्रैः ॥२०॥
वरहार-कटक-कुण्डल-मुकुटालङ्कारभूषितशरीरौ । चन्दनकृताङ्गरागौ सुगन्धकुसुमैः कृतमालौ ॥२१॥
कृत्वा महानन्दं हलधर-नारायणौ दानवेन्द्रौ । अभिषिञ्चतः सुमनसौ इतः सीतां महादेवीम् ॥२२॥
अभिषिक्ता च विशल्या देवी लक्ष्मीधरस्य हृदयेष्टा । या सकलजीवलोके गुणैर्दूरं समुद्वहति ॥२३॥
अथ ते सुखासनस्था बन्दिजनोद्घुष्टजयजयारावाः । दातुं समारब्धा राज्यानि खेचरेन्द्रेभ्यः ॥२४॥

---

१. ०मविणएण-प्रत्य० । २. संतगुणं-प्रत्य० । ३. ०ल-तिलिमा०-प्रत्य० । ४. ०णा मणुइन्दा-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमो तिकूडसिहरे विभीसणं ठवइ रक्खसाहिवई । सुग्गीवस्स वि एत्तो, किक्किन्धिं देइ परिसेसं ॥२५॥
सिरिपव्वयसिहरत्थं च सिरिपुरं मारुइस्स [1] उद्दिट्ठं । पडिसूरस्स हणुरुहं, दिन्नं नीलस्स रिक्खपुरं ॥२६॥
पायालंकारपुरं, चन्दोयरनन्दणस्स दिन्नं तं । देवोवगीयनयरे, रयणजडी ठाविओ राया ॥२७॥
भामण्डलो वि भुञ्जइ, वेयड्ढे दक्खिणाए सेढीए । रहनेउरं ति नामं, नयरं सुरनयरसमविभवं ॥२८॥
सेसा वि य नरवसभा, अणुसरिसाणं तु देसविसयाणं । पउमेण कया सामी, धण-जणरिद्धीसमिद्धाणं ॥२९॥

एवं नरिन्दा पउमेण रज्जं, संपाविया उत्तमवंसजाया ।
भुञ्जन्ति देवा इव देवसोक्खं, आणाविसालं विमलप्पहावा ॥३०॥

॥ इइ पउमचरिए रज्जाभिसेयं नाम पञ्चासीइमं पव्वं समत्तं ॥

पद्मस्त्रिकूटशिखरे बिभीषणं स्थापयति राक्षसाधिपतिम् । सुग्रीवायापीतः किष्किन्धिं ददाति परिशेषम् ॥२५॥
श्रीपर्वतशिखरस्थं च श्रीपुरं मारुतेरुद्दिष्टम् । प्रतिसूर्याय हनुरुहं दत्तं नीलायर्क्षपुरम् ॥२६॥
पाताललङ्कापुरं चन्द्रोदरनन्दनाय दत्तं तम् । देवोपगीतनगरे रत्नजटी स्थापितो राजा ॥२७॥
भामण्डलोऽपि भुनक्ति वैताढ्ये दक्षिणायां श्रेण्याम् । रथनूपुरमिति नाम नगरं सुरनगरसमविभवम् ॥२८॥
शेषा अपि च नरवृषभा अनुसदृशानां तु देश-विषयाणाम् । पद्मेन कृता स्वामिनो धन-जनर्द्धिसमृद्धीनाम् ॥२९॥
एवं नरेन्द्राः पद्मेन राज्यं संप्राप्ता उत्तमवंशसंजाताः । भुञ्जन्ति देवा इव देवसुखमाज्ञाविशालं विमलप्रभावाः ॥३०॥

॥ इति पद्मचरिते राजयाभिषेकं नाम पञ्चाशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. उवइट्ठं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८६. महुसुंदरवहपव्वं

अह राहवेण भणिओ, सत्तुग्घो जं [1] तुमं हिययइट्ठं । इह मेइणीए नयरं, जं मग्गसि तं पणामेमि ॥१॥
एयं साएयपुरिं, गेण्हसु अहवा वि पोयणं नयरं । तह पोण्डवद्धणं पि य, अन्नं च जहिच्छियं देसं ॥२॥
भणइ तओ सत्तुग्घो, महुरं मे देहि देव हियइट्ठं । पडिभणइ राहवो तं, किं न सुओ तत्थ महुराया ! ॥३॥
सो रावणस्स वच्छय !, जामाऊ सुरवरिन्दसमविभवो । चमरेण जस्स दिन्नं, सूलं पलयक्कसमतेयं ॥४॥
मारेऊण सहस्सं, पुणरवि सूलं करं समल्लियइ । जस्स जयत्थं च महं, न एइ रत्तिंदियं निद्दा ॥५॥
जाएण तमो तइआ, पणासिओ जेण निययतेएणं । उज्जोइयं च [2] भवणं, किरणसहस्सेण रविणं व ॥६॥
जो खेयरेसु वि णवी, साहिज्जइ तिव्वबलसमिद्धेसु । सो कह सत्तुग्घ ! तुमे, जिप्पइ दिव्वत्थकयपाणी ॥७॥
पउमं भणइ कुमारो, किं वा बहुएहि भासियव्वेहिं । महुरं देहि महायस !, तमहं जिणिऊण गेण्हामि ॥८॥
जइ तं महुरारायं, न जिणामि खणन्तरेण संगामे । तो [3] तहरहस्स नामं, पियरस्स फुडं न गेण्हामि ॥९॥
एवं पभासमाणं, सत्तुग्घं राहवो करे घेत्तुं । जंपइ कुमार ! एक्कं, संपइ मे दक्खिणं देहि ॥१०॥
भणइ तओ सत्तुग्घो, महुणा सह रणमुहं पमोत्तूणं । अन्नं जं भणसि पहू !, करेमि तं पायपडिओ हं ॥११॥

---

८६. मधुसुदनवधपर्वम्

अथ राघवेन भणितः शत्रुघ्नो यत्तव हृदयेष्टम् । इह मेदिन्यां नगरं यन्मार्गयषि तदर्पयामि ॥१॥
एवं साकेतपुरिं गृहाणाथवापि पोतननगरम् । तथा पुण्ड्रवर्धनमपि चान्यं च यथेच्छितं देशम् ॥२॥
भणति ततः शत्रुघ्नो मथुरां मे देहि देव हृदयेष्टाम् । प्रतिभणति राघवस्तं किं न श्रुतस्तत्र मधुराजा ? ॥३॥
स रावणस्य वत्स ! जामातृ सुरवरेन्द्रसमविभवः । चमरेण यस्मै दत्तं शूलं प्रलयार्कसमतेजसम् ॥४॥
मारयित्वा सहस्त्रं पुनरपि शूलं करं समालीनाति । यस्य जयार्थं च मम नैति रात्रिंदिवा निंद्रा ॥५॥
जातेन तमस्तदा प्रणाशितो येन निजतेजसा । उद्योतितं च भवनं किरणसहस्रेण रविणैव ॥६॥
यः खेचरैरपि नापि साध्यते तीव्रबलसमृद्धैः । स कथं शत्रुघ्न ! त्वया जीयते दिव्यास्त्रकृतपाणिः ॥७॥
पद्मं भणति कुमारः किं वा बहुभि र्भाषितव्यैः । मथुरां देहि महायशः ! तमहं जित्वा गृह्णामि ॥८॥
यदि तन्मथुराराज्यं न जयामि क्षणान्तरेण संग्रामे । तदा दशरथस्य नाम पितुः स्फुटं न गृह्णामि ॥९॥
एवं प्रभाषमाणं शत्रुघ्नं राघवः करे गृहीत्वा । जल्पति कुमार ! एकां सम्प्रति मे दक्षिणां देहि ॥१०॥
भणति ततः शत्रुघ्नो मधुना सह रणमुखं प्रमुच्य । अन्यद्यद्भणसि प्रभो ! करोमि तत्पादपतितोऽहम् ॥११॥

---

१. तुमे-प्रत्य० । २. भुवणं-प्रत्य० । ३. दसर०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निज्झाइऊण पउमो, जंपइ छिद्देण सो[१] हु तो राया । सूलरहिओ पमाई, घेत्तव्वो पत्थणा एसा ॥१२॥
जं आणवेसि एवं, भणिऊण जिणालयं समल्लीणो । सत्तुग्घकुमारवरो, संथुणइ जिणं सुकयपूयं ॥१३॥
अह सो मज्जियजिमिओ, आपुच्छइ मायरं कयपणामो । दट्ठूण सुयं देवी, अग्घायइ उत्तमङ्गम्मि ॥१४॥
देइ तओ आसीसं, जणणी जय पुत्त ! रणमुहे सत्तुं । रज्जं च महाभोगं भुञ्जसु हियइच्छियं सुइरं ॥१५॥
संगामे लद्धजयं, पुत्तय ! एत्थागयं तुमं दट्ठुं । कणयकलसेसु पूयं, जिणाण अहयं[२] करीहामि ॥१६॥
तेलोक्कमङ्गला वि हु, सुरअसुरनमंसिया भयविमुक्का । ते देन्तु मङ्गलं तुह, सत्तुग्घ ! जिणा जियभवोहा ॥१७॥
संसारदीहकरणो, महारिवू जेहि निज्जिओ मोहो । ते तिहुयणेक्कभाणू, अरहन्ता मङ्गलं देन्तु ॥१८॥
अट्ठविहेण विमुक्का, पुत्तय ! कम्मेण तिहुयणग्गम्मि[३] । चिट्ठन्ति सिद्धकज्जा, ते सिद्धा मङ्गलं देन्तु ॥१९॥

मन्दर-रवि-ससि-उयही-वसुहा-ऽणिल-धरणि-कमल-गयणसमा ।
निययं आयारधरा, आयरिया मङ्गलं देन्तु ॥२०॥

ससमय-परसमयविऊ, अणेगसत्थत्थधारणसमत्था । ते तुज्झ उवज्झाया, पुत्त ! सया मङ्गलं देन्तु ॥२१॥
बारसविहेण जुत्ता, तवेण साहेन्ति जे उ निव्वाणं । ते साहु[४] तुज्झ वच्छय !, साहेन्तु दुसाहयं कज्जं ॥२२॥
एवं दिन्नासीसो, जणणिं नमिऊण गयवरारूढो । निप्फिडइ पुरवरीए, सत्तुग्घो सयलबलसहिओ ॥२३॥
[५]जगडिज्जन्ततुरङ्गम-संघट्टुट्ठेन्तगयघडाडोवं । पाइक्क-रहसणाहं, महुराहुत्तं बलं चलियं ॥२४॥

निर्ध्याय पद्मो जल्पति छिद्रेण स खलु तदा राजा । शूलरहितः प्रमादी गृहीतव्यः प्रार्थनैषा ॥१२॥
यदाज्ञापयस्येवं भणित्वा जिनालयं समालीनः । शत्रुघ्नकुमारवरः संस्तौति जिनं सुकृतपूजाम् ॥१३॥
अथ स मज्जितजिमित आपृच्छति मातरं कृतप्रणामः । दृष्ट्वा सुतं देव्याघ्रात्युत्तमाङ्गे ॥१४॥
ददाति तत आशीषं जननी जय पुत्र ! रणमुखे शत्रुम् । राज्यं च महाभोगं भुङ्ग्धि हृदयेच्छितं सुचिरम् ॥१५॥
संग्रामे लब्धजयः पुत्र ! अत्रागतं त्वां दृष्ट्वा । कनककलशैः पूजां जिनानामहं करिष्यामि ॥१६॥
त्रैलोक्यमङ्गलाऽपि हु सुरासुरनता भयविमुक्ताः । ते ददतु मङ्गलं तव शत्रुघ्न ! जिना जितभवौघाः ॥१७॥
संसारदीर्घकरणो महारिपु र्यै र्निर्जितो मोहः । ते त्रिभुवनैकभानवोऽर्हन्तो मङ्गलं ददतु ॥१८॥
अष्टविधेन विमुक्ताः पुत्र ! कर्मेण त्रिभुवनाग्रे । तिष्ठन्ति सिद्धकार्यास्ते सिद्धा मङ्गलं ददतु ॥१९॥
मन्दर-रवि-शशि-उदधिवसुधाऽनिलधरणिकमलगगनसमाः । निजकमाचारधरा आचार्या मङ्गलं ददतु ॥२०॥
स्वसमयपरसमयविदवोऽनेकशास्त्रार्थधारणसमर्थाः । ते तवोपाध्यायाः पुत्र ! सदा मङ्गलं ददतु ॥२१॥
द्वादशविधेन युक्तास्तपसा कथयन्ति ये तु निर्वाणम् । ते साधवस्तव वत्सक ! साधयन्तु दुसाध्यं कार्यम् ॥२२॥
एवं दत्ताशीषो जननीं नत्वा गजवरारुढः । निष्फिटति पुरवर्याः शत्रुघ्नः सकलबलसहितः ॥२३॥
कलभतुरङ्गमसंघट्टोत्तिष्ठद्गजघटाटोपम् । पादातिरणसनाथं मथुराभिमुखं बलं चलितम् ॥२४॥

---

१. सो तुमं राया-प्रत्य० । २. करिस्सामि-प्रत्य० । ३. ग्गमिणं । चि०-प्रत्य० । ४. तुहं-प्रत्य० । ५. गडिगज्जंत०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लच्छीहरेण धणुवं, वज्जावत्तं सरा य अग्गिमुहा । सिग्घं समप्पियाइं, अन्नाइ वि तस्स सत्थाइं ॥२५॥
रामो कयन्तवयणं, तस्स उ सेणावइं समप्पेउं । लच्छीहरेण समयं, संसइयमणो नियत्तेइ ॥२६॥
सत्तुग्घो वि महप्पा, कमेण संपत्थिओ बलसमग्गो । महुरापुरीए दूरे, नइम्मि आवासिओ सिग्घं ॥२७॥
ववगयपरिस्समा ते, मन्तं काऊण मन्तिणो सव्वे । [1]कइगइसुयं पमाइं, भणन्ति निसुणेहि वयणऽम्हं ॥२८॥
जेण पुरा अइविरिओ, गन्धारो निज्जिओ रणमुहंमि । सो कह महू महप्पा, जिप्पिहिइ तुमे अबुद्धीणं ? ॥२९॥
तो भणइ कयन्तमुहो, महुराया जइ वि सूलकयपाणी । तह वि य सत्तुग्घेणं, जिप्पिहिइ रणे न संदेहो ॥३०॥
हत्थी करेण भञ्जइ, तुङ्गं पि य पायवं वियडसाहं । सीहो किं न वियारइ, पयलिगण्डत्थलं हत्थिं ॥३१॥
अह मन्तिजणाएसेण पत्थिया चारिया गया महुरं । वत्तं लद्धूण तओ, सामिसयासं पुणो पत्ता ॥३२॥
निसुणेहि देव वयणं, अत्थि हु महुरापुरीए पुव्वेणं । वरपायवसुसमिद्धं, कुबेरनामं वरुज्जाणं ॥३३॥
सहिओ य जयन्तीए, देवीए सयलपरियणसमग्गो । कीलइ तत्थुज्जाणे, इन्दो इव नन्दणे मुइओ ॥३४॥
तस्स पुण छट्ठदिवसो, वट्टइ वरकाणणे [2]पइट्ठस्स । मयणाउरस्स एवं परिवज्जियसेसकम्मस्स ॥३५॥
सयलं च साहणं पुरवराओ नीसरिय तस्स पासत्थं । जोयं सामन्तजुयं, सूलं पुण नयरिमज्झंमि ॥३६॥
जइ एरिसम्मि सामिय !, पत्थावे आणिओ पुरिं महुरं । नय गेण्हसि रयणीए, कह महुरायं पुणो जिणसि ? ॥३७॥

लक्ष्मीधरेण धनुकं वज्रावर्तं शराश्चाग्निमुखाः । शीघ्रं समर्पिता अन्यान्यपि तस्य शस्त्राणि ॥२५॥
रामः कृतान्तवदनं तस्य तु सेनापतिं समर्प्य । लक्ष्मीधरेण समकं शंसयितमना निवर्तयति ॥२६॥
शत्रुघ्नोऽपि महात्मा क्रमेण संप्रस्थितो बलसमग्रः । मथुरापूर्या दूरे नद्यामावासितः शीघ्रम् ॥२७॥
व्यपगतपरिश्रमास्ते मन्त्रं कृत्वा मन्त्रिणः सर्वे । कैकयीसुतं प्रमादिनं भणन्ति निश्रुणु वचनमस्माकम् ॥२८॥
येन पुराऽतिवीर्यो गन्धारो निर्जितो रणमुखे । स कथं मधुर्महात्मा जेष्यते त्वयाऽल्पबुद्धिना ? ॥२९॥
तदा भणति कृतान्तमुखो मधुराजा यद्यपि शूलकृतपाणिः । तथापि च शत्रुघ्नेन जेष्यते रणे न संदेहः ॥३०॥
हस्ती करेण भनक्ति तुङ्गमपि च पादपं विकटशाखम् । सिंहः किं न विदारयति प्रगलितगण्डस्थलं हस्तिनः ॥३१॥
अथ मन्त्रिजनादेशेन प्रस्थिताश्चारिका गता मथुराम् । वार्ता लब्ध्वा ततः स्वामिसकाशं पुनः प्राप्ताः ॥३२॥
निश्रुणु देवा वचनमस्ति खलु मथुरापुर्याः पूर्वेण । वरपादपसुसमृद्धं कुबेरं नाम वरोद्यानम् ॥३३॥
सहितश्च जयन्त्या देव्याः सकलपरिजनसमग्रः । क्रीडति तत्रोद्याने इन्द्र इव नन्दने मुदितः ॥३४॥
तस्य पुनः षष्टदिवसो वर्तते वरकानने प्रविष्टस्य । मदनातुरस्यैवं परिवर्जितशेषकर्मणः ॥३५॥
सकलं च साधनं पुरवरान्निसृत्य तस्य पार्श्वस्थम् । जातं सामन्तयुतं शूलं पुन र्नगरीमध्ये ॥३६॥
यद्येतादृशे स्वामिन् ! प्रस्तावे आनीतो पुरिं मथुराम् । न च गृह्णासि रजन्यां कथं मधुराट् पुन र्जयसि ? ॥३७॥

---

१. केगइ०-प्रत्य० । २. पविट्ठस्स-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारियवयणेण तओ, सत्तुग्घो साहणेण महएणं । काऊण दारभङ्गं, पविसइ महुरापुरिं रत्तिं ॥३८॥

सत्तुग्घो जयइ जए, दसरहपुत्तो[१] रणंमि विजियारी । बन्दिजणुग्घुट्ठरवो, वित्थरिओ पुरवरीमज्झे ॥३९॥

तं सोऊण जयरवं, नयरजणो भयपवेविरसरीरो । किं किं ति उल्लवन्तो, अइसुट्ठु समाउलो जाओ ॥४०॥

महुरापुरिं पविट्ठं, सत्तुग्घं जाणिऊण महुराया । उज्जाणाउ सरोसो, विणिग्गओ जह दसग्गीवो ॥४१॥

सूलरहिओ महू चिय, अलहन्तो पुरवरीपवेसं सो । सत्तुग्घकुमारेणं, निक्खमिउं वेढिओ सहसा ॥४२॥

अइरहसपसरियाणं, उभयबलाणं रणं समावडियं । गय-तुरय-जोह-रहवर-अन्नोन्नालग्गसंघट्टं ॥४३॥

जुज्जइ गओ गएणं, समयं रहिओ वि रहवरत्थेणं । तुरयविलग्गो वि भडो, आसारूढे[२] विवाडेइ ॥४४॥

सर-झसर-मोग्गरेहिं, अन्नोन्नावडियसत्थनिवहेहिं । उट्ठन्ति तक्खणं चिय, फुलिङ्गजालासहस्साइं ॥४५॥

एत्तो कयन्तवयणो, आढत्तो रिउबलं खयं नेउं । महुरायस्स सुएणं, रुद्धो लवणेण पविसन्तो ॥४६॥

लवणस्स कयन्तस्स य, दोण्हं वि जुज्झं रणे समावडियं ।
असि-कणय-चक्क-तोमर-विच्छड्डिज्जन्तघाओहं ॥४७॥

काऊण अन्नमन्नं, विरहं रणदप्पिया गयारूढा । पुणरवि य समब्भिडिया, जुज्झन्ति समच्छरुच्छाहा ॥४८॥

आयण्णपूरिएहिं, सरेहि लवणेण विउलवच्छयले । पहओ कयन्तवयणो, दढं पि भेत्तूण सन्नाहं ॥४९॥

काऊण चिरं जुज्झं, कयन्तवयणेण तत्थ सत्तीए । पहओ लवणकुमारो, पडिओ देवो व्व महिवट्ठे ॥५०॥

चारिकवचनेन ततः शत्रुघ्नः साधनेन महता । कृत्वा द्वारभङ्गं प्रविशति मथुरापुरिं रात्रिम् ॥३८॥

शत्रुघ्नो जयति जगति दशरथपुत्रो रणे विजितारिः । बन्दिजनोद्घुष्टरवो विस्तृतः पुरवरमध्ये ॥३९॥

तच्छ्रुत्वा जयरवं नगरजनो भयवेपमानशरीरः । किं किमित्युल्लपन्नतिसुष्ठु समाकूलो जातः ॥४०॥

मथुरापुरिं प्रविष्टं शत्रुघ्नं ज्ञात्वा मधुराजा । उद्यानात्सरोषो विनिर्गतो यथा दशग्रीवः ॥४१॥

शूलरहितो मधुरेवालभमानन्पुरवरीप्रवेशं सः । शत्रुघ्नकुमारेण निष्क्रम्य वेष्टितः सहसा ॥४२॥

अतिरभसप्रसरितानामुभयबलानां रणं समापतितम् । गज-तुरग-योध-रथवरान्योन्यालग्नसंघट्टम् ॥४३॥

युध्यते गजो गजेन समकं रथिकोऽपि रथवरस्थेन । तुरगविलग्नोऽपि भटोऽश्वारुढान् विपादयति ॥४४॥

सर-झसर-मुद्गरैरन्योन्यापतितशस्त्रनिवहैः । उत्तिष्ठन्ति तत्क्षणमेव स्फुर्लिङ्गज्वालासहस्राणि ॥४५॥

इतः कृतान्तवदन आरब्धो रिपुबलं क्षयं नेतुम् । मधुराज्ञः सुतेन रुद्धो लवणेन प्रविशन् ॥४६॥

लवणस्य कृतान्तस्य च द्वयोरपि युद्धं रणे समापतितम् । असि-कनक-चक्र-तोमर-विच्छर्दयत्घातौघम् ॥४७॥

कृत्वाऽन्योन्यं विरथं रणदर्पितौ गजारुढौः । पुनरपि च समभ्भिडितौ युध्येते समत्सरोत्साहौ ॥४८॥

आकर्णपूरितैः शरै र्लवणेन विपुलवक्षःस्थले । प्रहतः कृतान्तवदनो दृढमपि भित्वा सन्नाहम् ॥४९॥

कृत्वा चिरं युद्धं कृतान्तवदनेन तत्र शक्त्या । प्रहतो लवणकुमारः पतितो देव इव महीपृष्टे ॥५०॥

---

१. त्तो रणम्मि वि०-प्रत्य० । २. विवाडेइ--प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण सुयं पडियं, महू महासोग[1]कोहपज्जलिओ । सहसा समुट्ठिओ सो, अरिगहणे हुयवहो चेव ॥५१॥

दट्ठूण य एज्जन्तं, महुरापुरिसामियं तु सत्तुग्घो । आवडइ तस्स समरे, रणरसतण्हालुओ सिग्घं ॥५२॥

बाणेण तत्थ महुणा, केऊ सत्तुग्घसन्तिओ छिन्नो । तेण वि य तस्स तुरया, रहेण समयं चिय विलुत्ता ॥५३॥

तत्तो महू नरिन्दो, आरूढो गयवरं गिरिसरिच्छं । छाएऊण पवत्तो, सत्तुग्घं सरसहस्सेहिं ॥५४॥

सत्तुग्घेण वि सहसा, तं [2]सरनिवहं निवारिउं देहे । भिन्नो सो महुराया, गाढं चिय नियबाणेहिं ॥५५॥

आघुम्मियनयणजुओ, मणेण चिन्तेइ सूलरहिओ हं । पुण्णावसाणसमए, जाओ मरणस्स आसन्ने ॥५६॥

सुयसोगसल्लियङ्गो, तं चिय दट्ठूण दुज्जयं सत्तुं । मरणं च [3]समासन्नं, मुणिवरवयणं सरइ ताहे ॥५७॥

पडिबुद्धो भणइ तओ, असासए इह समत्थसंसारे । इन्दियवसाणुगेणं, धम्मो न कओ विमूढेणं ॥५८॥

मरणं नाऊण धुवं, कुसुमसमं जोव्वणं चला रिद्धी । अवसेण मए तइया, न कओ धम्मो पमाएणं ॥५९॥

पज्जलियम्मि य भवणे, कूवतलायस्स खणणमारम्भो । अहिणा दट्ठस्स जए, को कालो मन्त[4]जवगस्स ? ॥६०॥

जाव न मुञ्चामि लहुं, पाणेहिं एत्थ जीयसंदेहे । ताव इमं जिणवयणं, सरामि सोमं मणं काउं ॥६१॥

तम्हा पुरिसेण जए, अप्पहियं नियमेव कायव्वं । मरणंमि समावडिए, संपइ सुमरामि अरहन्तं ॥६२॥

इणमो अरहन्ताणं, सिद्धाण नमो सिवं उवगयाणं । आयरिय-उवज्झाणं, [5]नमो सया सव्वसाहूणं ॥६३॥

दृष्ट्वा सुतं पतितं मधुर्महाशोकक्रोधप्रज्वलितः । सहसा समुत्थितः सोऽरिगहने हुतवह इव ॥५१॥

दृष्ट्वा चायान्तं मधुरापुरिस्वामिनं तु शत्रुघ्नः । आपतति तस्य समरे रणरसतृष्णालुः शीघ्रम् ॥५२॥

बाणेन तत्र मधुना केतुः शत्रुघ्नसत्कश्छिन्नः । तेनापि च तस्य तुरगा रथेन समकमेव विलुप्ताः ॥५३॥

ततो मधुनरेन्द्र आरुढो गजवरं गिरिसदृशम् । छादयितुं प्रवृत्तः शत्रुघ्नं शरसहस्रैः ॥५४॥

शत्रुघ्नेनापि सहसा तं शरनिवहं निवार्य देहे । भिन्नः स मधुराजा गाढमेव निजबाणैः ॥५५॥

आघुर्णितनयनयुगो मनसा चिन्तयति शूलरहितोऽहम् । पुण्यावसानसमये जातो मरणस्यासन्ने ॥५६॥

सुतशोकशल्यिताङ्गस्तमेव दृष्ट्वा दुर्जयं शत्रुम् । मरणं च समासन्नं मुनिवरवचनं स्मरति तदा ॥५७॥

प्रतिबुद्धो भणति ततोऽशाश्वत इह समस्तसंसारे । इन्द्रियवशानुगेन धर्म्मो न कृतो विमूढेन ॥५८॥

मरणं ज्ञात्वा ध्रुवं कुसुमसमं यौवनं चला ऋद्धिः । अवशेन मया तदा न कृतो धर्मो प्रमादेन ॥५९॥

प्रज्वलिते च भवने कूपतडागस्य खननारम्भः । अहिना दष्टस्य जगति कः कालो मन्त्रजपकस्य ? ॥६०॥

यावन्न मुञ्चामि लघु प्राणैरत्र जीवसंदेहे । तावदिदं जिनवचनं स्मरामि सौम्यं मनः कृत्वा ॥६१॥

तस्मात्पुरुषेण जगत्यात्महितं नियमैव कर्तव्यम् । मरणे समापतिते संप्रति स्मराम्यर्हन्तम् ॥६२॥

एतेभ्योऽर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यो नमः शिवमुपगतेभ्यः । आचार्योपाध्यायोभ्यो नमो सदा सर्वसाधुभ्यः ॥६३॥

---

१. ०गकोवप०-प्रत्य० । २. सरणियरं-प्रत्य० । ३. समावण्णे-प्रत्य० । ४. ०जवणम्मि-मु० । ५. नमो णमो सव्व०-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[1]अरहन्ते सिद्धे वि य, साहू तह केवलीयधम्मो य । एए [2]हवन्तु नियय़ं, चत्तारि वि मङ्गलं मज्झं ॥६४॥
जावइया अरहन्ता, माणुसखित्तम्मि होन्ति जयनाहा । तिविहेण पणमिऊणं, ताणं सरणं पवन्नो हं ॥६५॥
हिंसा-ऽलिय-चोरिक्का, मेहुण्णपरिग्गहं तहा देहं । पच्चक्खामि य सव्वं, तिविहेणाहारपाणं च ॥६६॥
परमत्थे ण तणमओ, संथारो न [3]वि य फासुया भूमी । हियय़ं जस्स विसुद्धं, तस्साया हवइ संथारो ॥६७॥
एक्को जायइ जीवो, एक्को उप्पज्जए भमइ एक्को । सो चेव मरइ एक्को, एक्को च्चिय पावए सिद्धिं ॥६८॥
नाणम्मि दंसणम्मि य, तह य चरित्तम्मि सासओ अप्पा । अवसेसा दुब्भावा, वोसिरिया ते मए सव्वे ॥६९॥
एवं जावज्जीवं, सङ्गं वोसिरिय गयवरत्थो सो । पहरणजज्जरियतणू, आलुञ्चइ अत्तणो केसे ॥७०॥
जे तत्थ किन्नरादी, समागया पेच्छया रणं देवा । ते मुञ्चन्ति सहरिसं, तस्सुवरिं कुसुमवरवासं ॥७१॥
धम्मज्झाणोवगओ, कालं काऊण तइयकप्पम्मि । जाओ सुरो महप्पा, दिव्वङ्गयकुण्डलाभरणो ॥७२॥

एवं नरो जो वि हु बुद्धिमन्तो, करेइ धम्मं मरणावसाणे ।
वरच्छरासंगयलालियङ्गो, सो होइ देवो विमलाणुभा[4]वो ॥७३॥

॥ इइ पउमचरिए महुसुन्दरवहाभिहाणं नाम छासीइमं पव्वं समत्तं ॥

अर्हन्तः सिद्धा अपि च साधवस्तथा केवलिनश्च धर्मश्च । एते भवन्तु नित्यं चत्वारो ऽपि मङ्गलं मम ॥६४॥
यावन्तोऽर्हन्तो मनुष्यक्षेत्रे भवन्ति जगन्नाथाः । त्रिविधेन प्रणम्य तेषां शरणं प्रपन्नोऽहम् ॥६५॥
हिंसाऽलिकचौरिका मैथुनपरिग्रहं तथा देहम् । प्रत्याख्यामि च सर्वं त्रिविधेनाऽऽहारपानं च ॥६६॥
परमार्थे न तृणमयः संस्तारको नापि च प्रासुका भूमिः । हृदयं यस्य विशुद्धं तस्यात्मा भवति संस्तारकः ॥६७॥
एको जायते जीव एक उत्पद्यते भ्रमत्येकः । स एव म्रियत एक एव प्राप्नोति सिद्धिम् ॥६८॥
ज्ञाने दर्शने च तथा च चारित्रे शाश्वत आत्मा । अवशेषा दुर्भावा व्युत्सर्जितास्ते मया सर्वे ॥६९॥
एवं यावज्जीवं सङ्गं व्युत्सर्ज्य गजवरस्थः सः । प्रहारजर्जरिततनूरालुच्यात्मनः केशान् ॥७०॥
ये तत्र किन्नरादयः समागताः प्रेक्षका रणं देवाः । ते मुञ्चन्ति सहर्षं तस्योपरिं कुसुमवरवर्षाम् ॥७१॥
धर्मध्यानोपगतः कालं कृत्वा तृतीयकल्पे । जातः सुरो महात्मा दिव्याङ्गदकुण्डलाभरणः ॥७२॥

एवं नरो योऽपि खलु बुद्धिमान्करोति धर्मं मरणावसाने ।
वराप्सरःसंगतलालिताङ्गः स भवति देवो विमलानुभावः ॥७३॥

॥ इति पद्मचरिते मधुसुन्दरवधाभिधानं नाम षडशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. अरहन्तो सिद्धो-मु० । २. हवन्ति-मु० । ३. ण य सुहावहा भूमि-प्रत्य० । ४. ०भागी-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८७. महुराउवसग्गविहाणपव्वं

केगइसुएण सेणिय, पुण्णपभावेण सूलरयणं तं । अइखेयसमावन्नं, लज्जियविलियं हयप[१]भावं ॥१॥

तं सामियस्स पासं, गन्तूणं चमरनामधेयस्स । साहेइ सूलरयणं, महुनिवमरणं जहावत्तं ॥२॥

सोऊण मित्तमरणं, चमरो घणसोगकोहपज्जलिओ । वेरपडिउञ्चणट्ठे, महुराहिमुहो अह पयट्टो ॥३॥

अह तत्थ वेणुदाली, सुवण्णराया सुरं पलोएउं । पुच्छइ कहेहि कत्तो, गमणारम्भो तुमे रइओ ॥४॥

सो भणइ मज्झ मित्तो, जेण हओ रणमुहे मधू नामं । सजणस्स तस्स संपइ, मरणं आणेमि निक्खुत्तं ॥५॥

तं भणइ वेणुदाली, किं न सुओ संभवो विसल्लाए ? । अहिलससि जेण एवं, कज्जाकज्जं अयाणन्तो ॥६॥

अह सा अमोहविजया, सत्ती नारायणस्स देहत्था । फुसिया य विसल्लाए, पणासिया सुकयकम्माए ॥७॥

ताव य [२] भवन्ति एए, सुर-असुर-पिसाय-भूयमाईया । जाव ण [३] विनिच्छिएणं, लएइ जिणसासणे दिक्खं ॥८॥

मज्जा-ऽऽमिसरहियस्स उ, हत्थसयब्भन्तरेण दुस्सत्ता । न हवन्ति ताव जाव य, हवइ सरीरंमि नियमगुणो ॥९॥

रुद्दो वि य कालग्गी, चण्डो अइदारुणो सह पियाए । सन्तो पणट्ठविज्जो, किं न सुतो ते गओ निहणं ? ॥१०॥

वच्चसु गरुडिन्द ! तुमं, एयं चिय उज्झिऊण वावारं । अहयं तस्स कएणं, रिउभयजणणं ववहरामि ॥११॥

---

८७. मथुरोपसर्गविधानपर्वम्

कैकयीसुतेन श्रेणिक ! पुण्यप्रभावेन शूलरत्नं तद् । अतिखेदसमापन्नं लज्जितविलीनं हतप्रभावम् ॥१॥

तत्स्वामिनः पार्श्वं गत्वा चमरनामधेयस्य । कथयति शूलरत्नं मधुनृपमरणं यथावृत्तम् ॥२॥

श्रुत्वा मित्रमरणं चमरो घनशोकक्रोधप्रज्वलितः । वेरप्रतिकारणार्थे मथुराभिमुखोऽथ प्रवृत्तः ॥३॥

अथ तत्र वेणुदाली सुपर्णराजा सुरं प्रलोक्य । पृच्छति कथय कुतो गमनारम्भस्त्वया रचितः ॥४॥

स भणति मम मित्रो येन हतो रणमुखे मधुर्नाम । सजनस्य तस्य संप्रति मरणमानयामि निश्चितम् ॥५॥

तं भणति वेणुदाली किं न श्रुतः संभवो विशल्यायाः ? । अभिलषषि येनैवं कार्याकार्यमजानन् ॥६॥

अथ साऽमोधविजया शक्तिर्नारायणस्य देहस्था । स्पृष्टा च विशल्यया प्रणाशिता सुकृतकर्मया ॥७॥

तावच्च भवन्त्येते सुरासुर-पिशाच-भूतादयः । यावन्न विनिश्चयेन लान्ति जिनशासने दिक्षाम् ॥८॥

मद्याऽऽमीषरहितस्य तु हस्तशताभ्यन्तरेण दुःसत्त्वाः । न भवन्ति तावद्यावच्च भवति शरीरे नियमगुणः ॥९॥

रुद्रोऽपि च कालाग्निश्चण्डोऽतिदारुणः सह प्रियया । सन् प्रणष्टविद्यः किं न श्रुतस्त्वया गतो निधनम् ? ॥१०॥

व्रज गरुडेन्द्र ! त्वमेतदेवोज्झित्वा व्यापारम् । अहं तस्य कृतेन रिपुभयजननं व्यवहरामि ॥११॥

---

१. ०पयावं-प्रत्य० । २. भमंति-प्रत्य० । ३. य-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एव भणिओ पयट्टो, चमरो महुरापुरिं समणुपत्तो । पेच्छइ महूसवं सो, कीलन्तं जणवयं सव्वं ॥१२॥

चिन्तेऊण पवत्तो, अकयग्घो जणवओ इमो पावो । जो नियसामिमरणे, रमइ खलो सोगपरिमुक्को ॥१३॥

अच्छउ ताव रिवू सो, जेण महं घाइओ इहं मित्तो । नयरं देसेण समं, सव्वं पि इओ खयं नेमि ॥१४॥

निज्झाइऊण एवं, कोहाणलदीविओ चमरराया । लोगस्स तक्खणं चिय, उवसग्गं दूसहं कुणइ ॥१५॥

जो जत्थ सन्निविट्ठो, [1]सुइओ वा परियणेण सह मणुओ । तो तत्थ मओ सव्वो, नयरे देसे य रोगेणं ॥१६॥

दट्ठूण य उवसग्गं, ताहे कुलदेवयाए सत्तुग्घो । [2]पडिचोइओ य वच्चइ, साएयं साहणसमग्गो ॥१७॥

रिवुजयलद्धाइसयं, सत्तुग्घं पेच्छिऊण पउमाभो । लच्छीहरेण समयं, अहियं [3]अहिणन्दिओ तुट्ठो ॥१८॥

जणणी वि य परितुट्ठा, पुत्तं दट्ठूण जिणवरिन्दाणं । कञ्चणकलसेहि तओ, ण्हवणेण समं कुणइ पूयं ॥१९॥

एव नरा सुकएण भयाइं, नित्थरयन्ति जला-ऽणिलमाई ।
तेण इमं विमलं जिणधम्मं, गेण्हह संजमसुट्ठियभावा ॥२०॥

॥ इइ पउमचरिए महुराउवसग्गविहाणं नाम सत्तासीयं पव्वं समत्तं ॥

एवं भणितः प्रवृत्तश्चमरो मथुरापुरिं समनुप्राप्तः । पश्यति महोत्सवं स क्रीडन्तं जनपदं सर्वम् ॥१२॥

चिन्तयितुं प्रवृत्तोऽकृतघ्नो जनपदोऽयं पापः । यो निजस्वामिमरणे रमते खलः शोकपरिमुक्तः ॥१३॥

अस्तु तावद्रिपुः स येन मम घातित इह मित्रम् । नगरं देशेन समं सर्वमपीतः क्षयं नयामि ॥१४॥

निर्ध्यायैवं क्रोधानलदीपितश्चमरराजा । लोकस्य तत्क्षणमेवोपसर्गं दुःषहं करोति ॥१५॥

यो यत्र सन्निविष्टः सुप्तो वा परिजनेन सह मनुष्यः । स तत्र मृतः सर्व नगरे देशे च रोगेण ॥१६॥

दृष्ट्वा चोपसर्गं तदा कुलदेवतया शत्रुघ्नः । प्रतिचोदितश्च गच्छति साकेतं साधनसमग्रः ॥१७॥

रिपुजयलब्धातिशयं शत्रुघ्नं दृष्ट्वा पद्माभः । लक्ष्मीधरेण समकमधिकमभिनन्दितस्तुष्ट ॥१८॥

जनन्यपि च परितुष्य पुत्रं दृष्ट्वा जिनवरेन्द्राणाम् । कञ्चनकलशैस्ततः स्नपनेन समं करोति पूजाम् ॥१९॥

एवं नराः सुकृतेन भयानि निस्तरन्ति जलाऽनिलादिनि ।
तेनेमं विमलं जिनधर्मं गृहणीत संयमसुस्थितभावाः ॥२०॥

॥ इति पद्मचरिते मथुरोपसर्गविधानं नाम सप्ताशीतितमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. सहिओ-मु० । २. पडिवोहिओ-मु० । ३. आणंदिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८८. सत्तुग्घ-कयंतमुहभवाणुकित्तणपव्वं

अह मगहपुराहिवई, पुच्छइ गणनायगं कयपणमो। कज्जेण केण महुरा, विमग्गिया केगइसुएणं ॥१॥

[1]सुरपुरसमाउ इहइं, बहुयाओ अत्थि रायहाणीओ। सत्तुग्घस्स न ताओ, इट्ठाओ जह पुरी महुरा ॥२॥

तो भणइ मुणिवरिन्दो, सेणिय! सत्तुग्घराथपुत्तस्स। [2]बहुया भवा अतीया, महुराए तेण सा इट्ठा ॥३॥

इह संसारसमुद्दे, जीवो कम्माणिलाहओ [3]भरहे। महुरापुरीए जाओ, नामेणं जउणदेवो सो ॥४॥

धम्मरहिओ मओ सो, कोलो गड्डाए वायसो जाओ। अइयासुओ य [4]भमणे, दड्डो महिसो समुप्पन्नो ॥५॥

जलवाहो गवलो पुण, छव्वारा महिसओ समुप्पन्नो। कम्मस्स उवसमेणं, जाओ दारिद्दिओ मणुओ ॥६॥

नामेण कुलिसधारो, मुणिवरसेवापरायणो विप्पो। रूवाईसयजुत्तो, विवज्जिओ बालकम्मेहिं ॥७॥

तस्स पुरस्साहिवई, असङ्किओ नाम दूरदेसं सो। संपत्थिओ कयाई, तस्स उ ललिया महादेवी ॥८॥

वायायणट्ठिया सा, विप्पं दट्ठूण कामसरपहया। सद्दाविय चेडीए, चिट्ठइ एक्कासणनिविट्ठा ॥९॥

अह अन्नया निवो सो, [5]सयराहं आगओ निय यभवणं। पेच्छइ देवीए समं, तं चिय एक्कासणनिविट्ठं ॥१०॥

मायाविणीए तीए, गाढं चिय कन्दियं भवणमज्झे। संतासं च गओ सो, गहिओ य नरिन्दपुरिसेहिं ॥११॥

---

८८. शत्रुघ्न-कृतान्तमुखभवानुकीर्त्तनपर्वम्

अथ मगधपुराधिपतिः पृच्छति गणनायकं कृतप्रणामः। कार्येण केन मथुरा विमार्गिता कैकयीसुतेन ॥१॥

सुरपुरसमा इह बहवः सन्ति राजधान्यः। शत्रुघ्नस्य न ता इष्टा यथा पुरी मथुरा ॥२॥

तदा भणति मुनिवरेन्द्रः श्रेणिक! शत्रुघ्नराजपुत्रस्य। बहवो भवा अतीता मथुरायां तेन सेष्टा ॥३॥

इह संसारसमुद्रे जीवः कर्मानिलाहतो भरते। मथुरापुर्यां जातो नाम्ना यमुनदेवः सः ॥४॥

धर्मरहितो मृतः स कोलो गर्तायां वायसो जातः। अर्जिकासुतश्च भ्रमणे दग्धो महिषः समुत्पन्नः ॥५॥

जलवाहो गवलः पुन षड्वारा महिषः समुत्पन्नः। कर्मण उपशमेन जातो दारिद्रो मनुष्यः ॥६॥

नाम्ना कुलिशधारो मुनिवरसेवापरायणो विप्रः। रुपातिशययुक्तो विवर्जितो बालकर्मभिः ॥७॥

तस्य पुरस्याधिपतिरशङ्कितो नाम दुरदेशं सः। संप्रस्थितः कदाचित्तस्य तु ललितामहादेवी ॥८॥

वातायनस्थिता सा विप्रं दृष्ट्वा कामशरप्रहता। शब्दाय्य चेट्या तिष्ठत्येकासननिविष्टा ॥९॥

अथान्यदा नृपःस शीघ्रमागतो निजकभवम्। पश्यति देव्या समं तमेवेकासननिविष्टम् ॥१०॥

मायाविन्या तया गाढमेव क्रन्दितं भवनमध्ये। संत्रासं च गतः स गृहीतश्च नरेन्द्रपुरुषैः ॥११॥

---

१. सुपुरिससमागमाओ, व०-प्रत्य०। २. बहवो भ०-प्रत्य०। ३. भमइ। म०-प्रत्य०। ४. भवणे-प्रत्य०। ५. ०राहसमागओ-मु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आणत्तं नरवइणा इमस्स अट्ठङ्गनिग्गहं कुणह । नयरस्स बहिं दिट्ठो, मुणिणा कल्लाणनामेणं ॥१२॥

भणिओ जइ पव्वज्जं, गेण्हसि तो ते अहं मुयावेमि । तं चिय पडिवन्नो सो, मुक्को पुरिसेहि पव्वइओ ॥१३॥

काऊण तवं घोरं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो । [1]देवीहि संपरिवुडो, कीलइ रइसागरोगाढो ॥१४॥

नामेण चन्दभद्दो, राया महुराहिवो पणयसत्तू । तस्स धरा वरभज्जा, तिण्णि य एक्कोयरा तीए ॥१५॥

सूरो य जउणदत्तो, देवो य तइज्जओ समुप्पन्नो । [2]भाणुप्पह-उग्गु-क्का-मुहा य तिण्णेव पुत्ता से ॥१६॥

विइया य तस्स भज्जा, कणयाभा नाम चन्दभद्दस्स । अह सो चविऊण सुरो, तीए अयलो सुओ जाओ ॥१७॥

अवरो त्थ अङ्कनामो, धम्मं अणुमोइऊण अइरूवो । जाओ य अङ्गियाए, कमेण पुत्तो तहिं काले ॥१८॥

सावत्थिनिवासी सो, अविणयकारी जणस्स अइवेसो । निद्धाडिओ य तो सो, कमेण अइदुक्खिओ भमइ ॥१९॥

अह सो अयलकुमारो, इट्ठो पियरस्स तिण्णि वाराओ । [3]उग्गुक्कमुहन्तेहिं, घाइज्जन्तो च्चिय पणट्ठो ॥२०॥

पुहइं परिहिण्डन्तो, तिलयवणे कण्टएण विद्धो सो । किणमाणो च्चिय दिट्ठो, अङ्केण[4] ऽयलो य वलियङ्गो ॥२१॥

मोत्तूण दारुभारं, अङ्केण उ कण्टओ खणद्धेणं । आयड्ढिओ सुसत्थो, अयलो तं भणइ निसुणेहि ॥२२॥

जइ नाम सुणसि कत्थइ, अयलं नामेण पुहइविक्खायं । गन्तव्वं चेव तुमे, तस्स सयासं निरुत्तेणं ॥२३॥

भणिऊण[5] एवमेयं, सावत्थि पत्थिओ तओ अङ्को । अयलो वि य कोसम्बिं, कमेण पत्तो वरुज्जाणं ॥२४॥

आज्ञाप्तं नरपतिनैतस्याष्टाङ्गनिग्रहं कुरुत । नगरस्य बाह्यं दृष्टो मुनिना कल्याणनाम्ना ॥१२॥

भणित यदि प्रव्रज्यां गृह्णासि ततस्त्वामहं मोचयामि । तदेव प्रतिपन्नः स मुक्तः पुरुषैः प्रव्रजितः ॥१३॥

कृत्वा तपः घोरं कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः । देविभिः संपरिवृत्तः क्रीडति रतिसागरावगाढः ॥१४॥

नाम्ना चन्द्रभद्रो राजा मथुराधिपः प्रणतशत्रुः । तस्य धरा वरभार्या त्रयश्चैकोदरास्तस्याः ॥१५॥

सुरश्च यमुनदत्तो देवश्च तृतीयः समुत्पन्नः । भानुप्रभोग्रोल्कामुखाश्च त्रयोरेव पुत्रास्तस्य ॥१६॥

द्वितीया तस्य भार्या कनकाभा नाम चन्द्रभद्रस्य । अथ स च्युत्वा सुरस्तस्या अचलः सुतो जातः ॥१७॥

अपरोऽत्राङ्कनाम धर्ममनुमोद्यातिरुपः । जातश्चाङ्गिकायाः क्रमेण पुत्रस्तत्र काले ॥१८॥

श्रावस्तिनिवासी सोऽविनयकारी जनस्यातिद्वेष्यः । निर्घाटितश्च तदा स क्रमेणातिदुःखितो भ्रमति ॥१९॥

अथ सोऽचलकुमार इष्टः पितुस्त्रिणि वाराः । उग्रोल्कामुखन्तैः घातयन्नेव प्रणष्टः ॥२०॥

पृथिवीं परिहिण्डमानस्तिलकवने कण्टकेन विद्धः सः । क्लिश्यमान एव दृष्टोऽङ्केनाचलश्च वलिताङ्गः ॥२१॥

मुक्त्वा दारुभारमङ्केन तु कण्टकः क्षणार्धेन । आकृष्टः सुश्वस्तोऽचलस्तं भणति निश्रुणु ॥२२॥

यदि नाम श्रुणोसि कुत्रचिदचलं नाम्ना पृथिवीविख्यातम् । गन्तव्यमेव त्वया तस्य सकाशं निश्चयेन ॥२३॥

भणित्वेवमेतच्छ्रावस्तिं प्रस्थितस्तदाङ्कः । अचलोऽपि च कौशाम्बिं क्रमेण प्राप्तो वरोद्यानम् ॥२४॥

---

१. देवेहिं-प्रत्य० । २. साणु०-मु० । ३. उग्ग-ऽक्कमुहंतेहि,-मु० । ४. ०ण य नेत्तचलियंगो-प्रत्य० । ५. ण वयणमेयं,-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो तत्थ इन्ददत्तं, नरवसभं गरुलियागयं दट्ठुं । तोसेइ धणुव्वेए[१], विसिहायरियं च दोजीहं ॥२५॥
दिन्ना य मित्तदत्ता, अयलस्स निवेण अत्तणो धूया । लोगम्मि अवज्झाओ, भण्णइ रज्जं च पत्तो सो ॥२६॥
अङ्गाइया य देसा, जिणिऊणं सयलसाहणसमग्गो । पियरस्स विग्गहेणं, अयलो महुरं समणुपत्तो ॥२७॥
ते चन्दभद्दपुत्ता, समयं चिय पत्थिवेहि नियएहिं । अत्थेण सुविउलेणं, [२]भिन्ना अयलेण ते सव्वे ॥२८॥
नाऊण चन्दभद्दो, भिन्ने सव्वे वि अत्तणो भिच्चे । पेसेइ सन्धिकज्जे, साला तस्सेव[३] वसु-दत्ता ॥२९॥
ते पेच्छिऊण अयलं, पच्चहियाणंति पुव्वचिन्धेहिं । अइलज्जिया नियत्ता, कहेन्ति ते चन्दभद्दस्स ॥३०॥
पुत्तेहि समं भिच्चा, कया य [४]आदिट्ठसेवया सव्वे । मायावित्तेहि समं, अयलस्स समागमो जाओ ॥३१॥
पुत्तस्स चन्दभद्दो, परितुट्ठो कुणइ संगमाणन्दं । जाओ रज्जाहिवई, अयलो सुकयाणुभावेणं ॥३२॥
अयलेण अन्नया सो, दिट्ठो नडरङ्गमज्झयारत्थो । परियाणिओ य अङ्को, पडिहारनरेसु हम्मन्तो ॥३३॥
दिन्ना य जम्मभूमी, सावत्थी तस्स अयलनरवइणा । दव्वं च सुप्पभूयं, नाणालंकारमादीयं ॥३४॥
दोन्नि वि ते उज्जाणं, कीलणहेउं गया सपरिवारा । दट्ठूण समुद्दमुणिं, तस्स सयासम्मि निक्खन्ता ॥३५॥
दंसणनाणचरित्ते, अप्पाणं भाविऊण कालगया । दोन्नि वि सुरवहुकलिए, देवा कमलुत्तरे जाया ॥३६॥
भोगे भोत्तूण चुओ, अयलसुरो केगईए गब्भंमि । जाओ दसरहपुत्तो, सत्तुग्घो पुह[५]इविक्खाओ ॥३७॥

स तत्रेन्द्रदत्तं नरवृषभं [६]गरुलिकागतं दृष्ट्वा । तोषयति धनुर्वेदे विशिखाचार्यं च द्विजिह्वम् ॥२५॥
दत्ता च मित्रदत्ताऽचलस्य नृपेनात्मनो दुहिता । लोक उपाध्यायो भण्यते राज्यं च प्राप्तः सः ॥२६॥
अङ्गादींश्च देशाञ्जित्वा सकलसाधनसमग्रः । पितुर्विग्रहेणाचलो मथुरां समनुप्राप्तः ॥२७॥
ते चन्द्रभद्रपुत्राः समकमेव पार्थिवै र्निजकैः । अस्त्रेण सुविपुलेन भिन्ना अचलेन ते सर्वे ॥२८॥
ज्ञात्वा चन्द्रभद्रो भिन्नान्सर्वानपि आत्मनो भृत्यान् । प्रेषयति सन्धिकार्ये शालकांस्तस्यैव वसुदत्तान् ॥२९॥
तेदृष्ट्वाऽचलं प्रत्यभिजानन्ति पूर्वचिह्नैः । अतिलज्जिता निवृत्ताः कथयन्ति ते चन्द्रभद्रस्य ॥३०॥
पुत्रैः समं भृत्याः कृताश्चादिष्टसेवकाः सर्वे । मातृपितृभ्यां सममचलस्य समागमो जातः ॥३१॥
पुत्रस्य चन्द्रभद्रः परितुष्टः करोति संगमानन्दम् । जातो राज्याधिपतिरचलः सुकृतानुभावेन ॥३२॥
अचलेनान्यदा स दृष्टो नटरङ्गमध्यस्थः । परिजानित श्चाङ्कः प्रतिहारनरैर्हन्यमानः ॥३३॥
दत्ताश्च जन्मभूमिः श्रावस्तिस्तस्याचलनरपतिना । द्रव्यं च सुप्रभूतं नानालङ्कारादिम् ॥३४॥
द्वावपि तावुद्यानं क्रीडनहेतुं गतौ सपरिवारौ । दृष्ट्वा समुद्रमुनिं तस्य सकाशे निष्क्रान्तौ ॥३५॥
दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मानं भावयित्वा कालगतौ । द्वावपि सुरवधुकलिते देवौ कमलोत्तरे जातौ ॥३६॥
भोगान्भुक्त्वा च्युतोऽचलुसुरः कैकय्याः गर्भे । जातो दशरथपुत्रः शत्रुघ्नः पृथिवीविख्यातः ॥३७॥

---

१. ०ए, सिंहायरियं च दो जोहं-प्रत्य० । २. ०न्ना सव्वे वि अयलेणं-प्रत्य० । ३. ०व सद्दंता-प्रत्य० । ४. अद्दिट्ठ०-प्रत्य० । ५. देसविक्खाओ-प्रत्य० । ६. शस्त्राभ्यासस्थलम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेणिय ! सो णेयभवा, आसि च्चिय पुरवरीए महुराए । सत्तुग्घो कुणइ रइं, मोत्तूणं सेसनयरीओ ॥३८॥
गेहस्स तरुवरस्स य, छायाए जस्स एक्कमवि दियहं । परिवसइ तत्थ जायइ, जीवस्स रई सहावेणं ॥३९॥
किं पुण जत्थ बहुभवे, जीवेणं संगई कया ठाणे । जायइ तत्थ अईवा, सेणिय ! पीई ठिई एसा ॥४०॥
अह सो अङ्कसुरवरो, तत्तो आउक्खए चुयसमाणो । जाओ कयन्तवयणो, [1]सेणाहिवई हलहरस्स ॥४१॥
एसो ते परिकहिओ, सेणिय पुच्छन्तस्स विणएणं । सत्तुग्घभवसमूहो, कयन्तवयणेण सहियस्स ॥४२॥
[2]एयं परंपरभवाणुगयं सुणेउं, जो धम्मकज्जनिरओ न य होइ [3]लोए ।
सो पावकम्मपरिणामकयाव[4]रोहो, ठाणं सिवं सुविमलं न उवेइ मूढो ॥४३॥

॥ इइ पउमचरिए सत्तुग्घकयन्तमुहभवाणुकित्तणं नाम अट्ठासीयं पव्वं समत्तं ॥

श्रेणिक ! सोऽनेकभवानासीदेव पुरवर्यां मथुरायाम् । शत्रुघ्नः करोति रतिं मुक्त्वा शेषनगरीः ॥३८॥
गृहस्य तरुवरस्य च छायायां यस्यैकमपि दिवसम् । परिवसति तत्र जायते जीवस्य रतिः स्वभावेन ॥३९॥
किं पुन र्यत्र बहुभवान्जीवेन संगतिः कृता स्थाने । जायते तत्रातिवा श्रेणिक ! प्रीतिः स्थितिरेषा ॥४०॥
अथ सोऽङ्कसुरवरस्तत आयुःक्षये च्युतस्सन् । जातः कृतान्तवदनः सेनाधिपति र्हलधरस्य ॥४१॥
एष ते परिकथितः श्रेणिकः पृच्छतो विनयेन । शत्रुघ्नभवसमूहः कृतान्तवदनेन सहितस्य ॥४२॥
एतत्परंपरभवानुगतं श्रुत्वा यो धर्मकार्यनिरतो न च भवति लोके ।
स पापकर्मपरिणामकृतावरोधः स्थानं शिवं सुविमलं नोपैति मूढः ॥४३॥

॥ इति पद्मचरिते शत्रुघ्न-कृतान्तमुखभवानुकीर्तनं नामाष्टाशीतितमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. सेणाणीओ हल०-प्रत्य० । २. एवं-प्रत्य० । ३. लोगे-मु० । ४. ०वराहो-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

આચાર્યશ્રી ૐકારસૂરિ જ્ઞાન મંદિર ગ્રંથાવલી

પ્રભુવાણી પ્રસાર સ્થંભ (યોજના-૧,૧૧,૧૧૧)

૧. શ્રી સમસ્ત વાવ પથક શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ-ગુરુમૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા-સ્મૃતિ
૨. શેઠશ્રી ચંદુલાલ કકલચંદ પરીખ પરિવાર, વાવ
૩. શ્રી સિદ્ધગિરિ ચાતુર્માસ આરાધના (સં. ૨૦૫૭) દરમ્યાન થયેલ જ્ઞાનખાતાની આવકમાંથી.
હસ્તે : શેઠશ્રી ધુડાલાલ પુનમચંદભાઈ હેક્કડ પરિવાર, ડીસા, બનાસકાંઠા
૪. શ્રી ધર્મોત્તેજક પાઠશાળા, શ્રી ઝીંઝુવાડા જૈન સંઘ, ઝીંઝુવાડા
૫. શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ, સુઈગામ
૬. શ્રી વાંકડિયા વડગામ જૈન સંઘ, વાંકડિયા વડગામ
૭. શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ, ગરાંબડી
૮. શ્રી રાંદેરરોડ જૈન સંઘ-અડાજણ પાટીયા, રાંદેરરોડ, સુરત
૯. શ્રી ચિંતામણી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ પાર્લા (ઈસ્ટ), મુંબઈ
૧૦. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૧. શ્રી કૈલાસનગર જૈન સંઘ, કૈલાસનગર, સુરત
૧૨. શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ, સમુબા શ્રાવિકા આરાધના ભવન, સુરત જ્ઞાનખાતેથી
૧૩. શ્રી વાવ પથક જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, અમદાવાદ
૧૪. શ્રી વાવ જૈન સંઘ, વાવ, બનાસકાંઠા
૧૫. કુ. નેહલબેન કુમુદભાઈ (કટોસણ રોડ)ની દીક્ષા પ્રસંગે થયેલ આવકમાંથી
૧૬. શ્રી આદિનાથ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, નવસારી
૧૭. શ્રી ભીલડીયાજી પાર્શ્વનાથ જૈન દેરાસર પેઢી, ભીલડીયાજી
૧૮. શ્રી નવજીવન જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, મુંબઈ

પ્રભુવાણી પ્રસારક (યોજના-૬૧,૧૧૧)

૧. શ્રી દિપા શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, રાંદેરરોડ, સુરત
૨. શ્રી સીમંધરસ્વામી મહિલા મંડળ, પ્રતિષ્ઠા કોમ્પલેક્ષ, સુરત
૩. શ્રી શ્રેણીકપાર્ક જૈન શ્વે.મૂ. સંઘ, ન્યૂ રાંદેરરોડ, સુરત
૪. શ્રી પુણ્યપાવન જૈન સંઘ, ઈશિતા પાર્ક, સુરત
૫. શ્રી શ્રેયસ્કર આદિનાથ જૈન સંઘ, નીઝામપુરા, વડોદરા

પ્રભુવાણી પ્રસાર અનુમોદક (યોજના - ૩૧,૧૧૧)

૧. શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ, મોરવાડા
૨. શ્રી ઉમરા જૈન સંઘ, સુરત
૩. શ્રી શત્રુંજય ટાવર જૈન સંઘ, સુરત
૪. શ્રી ચૌમુખજી પાર્શ્વનાથ જૈન મંદિર ટ્રસ્ટ, શ્રી જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છ સંઘ ગઢસિવાના (રાજ.)
૫. શ્રીમતી તારાબેન ગગલદાસ વડેચા-ઉચોસણ
૬. શ્રી સુખસાગર અને મલ્હાર એપાર્ટમેન્ટ સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૭. રવિજ્યોત એપાર્ટમેન્ટ, સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૮. અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, પાંડવબંગલો, સુરત શ્રાવિકાઓ તરફથી
૯. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૦. શ્રીમતી વર્ષાબેન કર્ણાવત, પાલનપુર
૧૧. શ્રી શાંતિનિકેતન સરદારનગર જૈન સંઘ, સુરત
૧૨. શ્રી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ, ન્યુ રામારોડ, વડોદરા

પ્રભુવાણી પ્રસાર ભક્ત (યોજના - ૧૫,૧૧૧)

૧. શ્રી દેસલપુર (કંઠી) શ્રી પાર્શ્વચંદ્રગચ્છ ૨. શ્રી ધ્રાંગધ્રા શ્રી પાર્શ્વચંદ્રસૂરીશ્વરગચ્છ ૩. શ્રી અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, સુરત શ્રાવિકા ઉપાશ્રય

વાવ નગરે પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત ૐકારસૂરિ મહારાજાની ગુરૂ મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા સ્મૃતિ

૧.	રૂા.	૨,૧૧,૧૧૧	શ્રી વાવ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ
૨.	રૂા.	૧,૧૧,૧૧૧	શ્રી વાવ પથક શ્વે.મૂ. જૈન સંઘ, અમદાવાદ
૩.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ
૪.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી બેણપ જૈન સંઘ
૫.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ
૬.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ભરડવા જૈન સંઘ
૭.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી અસારા જૈન સંઘ
૮.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ
૯.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી માડકા જૈન સંઘ
૧૦.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી તીર્થગામ જૈન સંઘ
૧૧.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી કોરડા જૈન સંઘ
૧૨.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ઢીમા જૈન સંઘ
૧૩.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી માલસણ જૈન સંઘ
૧૪.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ
૧૫.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી વર્ધમાન શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ દરવાજા, સુરત
૧૬.	રૂા.	૧૧,૧૧૧	શ્રી વાસરડા જૈન સંઘ, સેવંતીલાલ મ. સંઘવી

•••

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

આ.શ્રીૐકારસૂરિ જ્ઞાનમંદિર ગ્રંથાવલિનાં પ્રકાશનો

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	લેખક
૧.	કર પડિક્કમણું ભાવશું	અભયશેખરસૂરિ
૨.	શ્રી શાન્તિનાથ ચરિત મહાકાવ્યમ્ ભાગ-૧	રમ્યરેણુ
૩.	શ્રી શાન્તિનાથ ચરિત મહાકાવ્યમ્ ભાગ-૨	રમ્યરેણુ
૪.	ચતુર્થ કર્મગ્રંથ ષડશીતિ	રમ્યરેણુ
૫.	નવાંગી ગુરુપૂજન	અભયશેખરસૂરિ
૬.	નવાંગી ગુરુપૂજન પ્રશ્નોત્તરી	અભયશેખરસૂરિ
૭.	યોગ દૃષ્ટિનાં અજવાળાં ભાગ-૩	પં. મુક્તિદર્શનવિજયજી
૮.	ધ્યાન અને જીવન ભાગ ૧-૨	પં.શ્રી પદ્મસેનવિજય ગણિવર
૯.	આતમજ્ઞાની શ્રમણ કહાવે	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૦.	સો-હી ભાવ નિગ્રંથ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૧.	મેરે અવગુણ ચિત્ત ન ધરો	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૨.	પ્રભાવક ચરિત્ર	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૧૩.	આપ હી આપ બુઝાય	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૪.	પ્રસંગ પ્રભા	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૧૫.	ન્યાય સંગ્રહ-સ્વોપજ્ઞ ન્યાયાર્થ મંજુષા બૃહદ્વૃત્તિ સહિત	મુ. રત્નવલ્લભ વિ.
૧૬.	પ્રભુનો પ્યારો સ્પર્શ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૭.	ઋષભ જિનેસર પ્રીતમ માહરો રે	આ. યશોવિજયસૂરિ
૧૮.	મહાયોગી આનંદઘન	વસંતલાલ કાન્તિલાલ ઈશ્વરલાલ
૧૯.	આનંદઘન આકાશવ્યાપી	
૨૦.	જૈન કાષ્ઠપટ ચિત્ર-ગુજરાતી	વાસુદેવ સ્માર્ત
૨૧.	જૈન કાષ્ઠપટ ચિત્ર-અંગ્રેજી	જગદીપ સ્માર્ત
૨૨.	પંચમ કર્મગ્રંથ	રમ્યરેણુ
૨૩.	શ્રી ઉપમિતિ કથોદ્ધાર	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૨૪.	શ્રી દાનોપદેશમાલા	રમ્યરેણુ
૨૫.	પ્રસંગ કલ્પલતા	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૨૬.	આત્માનુભૂતિ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૨૭.	પ્રમાણ નય તત્વાલોક (વિવેચન સાથે)	સા. મહાયશાશ્રીજી
૨૮.	જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ-૧	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૨૯.	જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ-૨	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૩૦.	જૈન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઈતિહાસ ભાગ-૩	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૩૧.	સુર સુંદરી ચરિયં	સા. મહાયશાશ્રીજી
૩૨.	પ્રસંગ વિલાસ	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૩૩.	હ્રીંકાર સ્તોત્ર સ્વાધ્યાય	હર્ષશીલાશ્રીજી / ક્ષમાશીલાશ્રીજી
૩૪.	પ્રસંગ સુવાસ	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૩૫.	યોગશાસ્ત્ર અષ્ટમ પ્રકાશનું સવિસ્તર વિવરણ ભાગ-૧	અમૃતલાલ કાલીદાસ દોશી
૩૬.	જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ (સચિત્ર)	મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ સં.આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૩૭.	પાઈઅ (પ્રાકૃત) ભાષાઓ અને સાહિત્ય	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	લેખક
૩૮.	સંક્ષિપ્ત મુક્તાવલી પ્રવેશિકા	પં. જગદીશભાઈ
૩૯.	પ્રભુના હસ્તાક્ષર	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૦.	ધ્યાન અને કાયોત્સર્ગ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૧.	પ્રસંગ અંજન	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૪૨.	કથા રત્નસાગર	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૪૩.	પ્રવચન અંજન જો સદ્ગુરુ કરે	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૪.	ધ્યાન અને કાયોત્સર્ગ (બીજી આવૃત્તિ)	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૫.	એકાંતનો વૈભવ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૬.	ચોપન મહાપુરુષોના ચરિત્ર	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૪૭.	પરમ તારા માર્ગે	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૮.	સાધનાપથ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૪૯.	રસો વૈ સહઃ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૫૦.	પ્રસંગ સિદ્ધિ (હિન્દી)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૧.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૧)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૨.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૨)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૩.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૩)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૪.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૪)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૫.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૫)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૬.	વ્યવહાર સૂત્ર (ભાગ-૬)	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૭.	પ્રસંગરંગ	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૫૮.	પ્રગટ્યો પૂરન રાગ	આ. યશોવિજયસૂરિ
૫૯.	વિવિધ ગચ્છો કા સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૬૦.	વાત્સલ્યનો ઘૂઘવતો સાગર	આ. યશોવિજયસૂરિ
૬૧.	ચતુર્વિંશતિ ચૈત્યવંદન	સા.શ્રી મહાયશાશ્રીજી
૬૨.	વિજયચંદ્ર કેવલીચરિત્ર	
૬૩.	અપ્રગટ પ્રાચીન ગુર્જર સાહિત્ય	સા. વિરાગરસાશ્રી / ડૉ. કવિન શાહ
૬૪.	પ્રસંગરંગ	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ
૬૫.	શ્વેતાંબર ગચ્છોકા સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ ભાગ-૧	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૬૬.	શ્વેતાંબર ગચ્છોકા સંક્ષિપ્ત ઈતિહાસ ભાગ-૨	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૬૭.	સમાધિ શતક ભાગ-૧	આ. યશોવિજયસૂરિ
૬૮.	સમાધિ શતક ભાગ-૨	આ. યશોવિજયસૂરિ
૬૯.	સમાધિ શતક ભાગ-૩	આ. યશોવિજયસૂરિ
૭૦.	સમાધિ શતક ભાગ-૪	
૭૨.	વીર નિર્વાણાત્તર	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૭૩.	બૃહદ્ગચ્છ કા ઈતિહાસ	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૭૪.	બૃહદ્ગચ્છીય લેખ સમુચ્ચય	ડૉ. શિવપ્રસાદ
૭૫.	પ્રસંગ સરિતા	આ. મુનિચંદ્રસૂરિ

•••

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

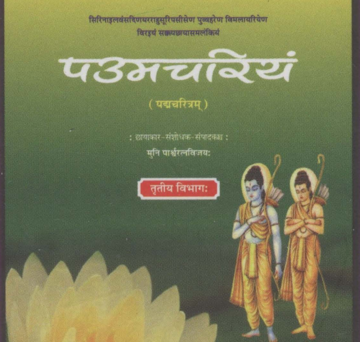

KIRIT GRAPHICS - 09898490091

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org